श्रीस्तवरत्ननिधिः

संग्राहकः

पुरुषोत्तमदासः

"श्रीकृष्णानन्दिनी" - हिन्दीभाषाटीकाकारः

काव्यवेदान्ततीर्थ [illegible] टीकाकार - महाकविः

श्रीवनमालिदासशास्त्री

प्रकाशकः

पुरुषोत्तमदासः

११७ गोपीनाथ घेरा

वृन्दावन (मथुरा), उ० प्र०

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ।

श्रीस्तवरत्ननिधिः

संग्राहकः

पुरुषोत्तमदासः

"श्रीकृष्णानन्दिनी" - हिन्दीभाषाटीकाकारः
काव्यवेदान्ततीर्थ - गोपालचम्पूटीकाकार - महाकविः
श्रीवनमालिदासशास्त्री

प्रकाशकः
कलियुगपावन - स्वभजन - विभजन - प्रयोजनावतार-
श्रीभगवत्कृष्णचैतन्यमहाप्रभोः परंपरायां नवमस्य
विश्वव्यापिश्रीचैतन्यश्रीगौडीयमठप्रतिष्ठापकस्य
श्रीगौडीयसंप्रदायैकसंरक्षकप्रवरस्य
नित्यलीलायां प्रविष्टस्य श्रीरूपानुगजगद्गुरुवरस्य
ॐ विष्णुपाद - परमहंस - १०८श्री-
श्रीमद्भक्तिसिद्धान्तसरस्वतीगोस्वामिप्रभुपादस्य
शिष्यः
पुरुषोत्तमदासः
११७ गोपीनाथ घेरा
वृन्दावन (मथुरा), उ० प्र०

—※—

३० विष्णु ४८५ गौराङ्गाब्द
मङ्गलवार, वासन्ती रासपूर्णिमा, वि० सं० २०२७
२१ अप्रैल १९७० ई० स०

प्रकाशक
पुरुषोत्तमदास
११७ गोपीनाथ घेरा
वृन्दावन (मथुरा), उ० प्र०

*

प्रथमावृत्ति: १००० प्रति

*

मूल्य रुपया ५.५०

*

*

मुद्रक
बनवारीलाल शर्मा
श्रीसर्वेश्वर प्रेस, वृन्दावन (मथुरा)

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः।

भूमिका

अनादिकाल से परिवर्तनशील संसार की रचयित्री भगवान् की माया स्वरूपतः अनिर्वचनीय है, तथापि उसके कार्यों के द्वारा ही उसका निरूपण होता है। आदिपुरुष परमात्मा जिस शक्ति से संपूर्ण प्राणियों के कारण बनते हैं, और उनके विषयभोग तथा मोक्ष की सिद्धि के लिये, अथवा अपने उपासकों की उत्कृष्ट सिद्धि के लिये, स्वनिर्मित पञ्चभूतों के द्वारा, देव-मनुष्य आदि अनेक प्रकार के शरीरों की सृष्टि करते हैं, इसी को माया कहते हैं। देहाभिमानी - जीव, अन्तर्यामी के द्वारा प्रकाशित इन्द्रियों के द्वारा, विषयों का भोग करता है, और पञ्चभूतों के द्वारा बनाये हुए इस शरीर को ही, अपना स्वरूप समझ कर, उसीके लालन-पालन में आसक्त हो जाता है, एवं उसी को सुख देने के लिये, शुभ-अशुभरूप अनेक कर्मों को करता रहता है। उन्हीं कर्मों के द्वारा, प्राप्त हुए सुख-दुःख को भोगता हुआ, संसार में भटकता रहता है, तथापि विवश होकर, जन्म-मृत्यु के प्रवाह में पड़ा रहता है, यही भगवान् की माया है।

इस माया के पार होने के विषय में राजा निमि ने भी, नवयोगेश्वरों से पूछा था कि, भगवन्! जो व्यक्ति अपने मन को वश में नहीं कर पाते हैं, ऐसों के लिये भगवान् की माया से पार होना बहुत ही कठिन है। आप कृपा करके यह बताइये कि, जो लोग शरीर आदि में ही आत्म-बुद्धि रखते हैं, तथा जिनकी समझ मोटी है, वे लोग भी इस माया से अनायास किस प्रकार तर सकते हैं?

माया से तरने का उपाय

प्रबुद्ध-नामक योगेश्वर बोले—राजन्! देखो, स्त्री-पुरुष-संबंध आदि बन्धनों में बँधे हुए, संसारीमनुष्य सुख की प्राप्ति और दुःख की निवृत्ति के लिये, बड़े-बड़े कर्म करते रहते हैं। जो पुरुष, माया के पार जाना चाहता है, उसको विचार करना चाहिये कि, उनके कर्मों का फल किस प्रकार विपरीत होता है? वे सुख के बदले दुःख पाते हैं, और दुःख-निवृत्ति के स्थानपर, दिनोंदिन दुःख बढ़ता ही जाता है। एक धन को ही लीजिये। देखो, इस से दिनपर दिन दुःख बढ़ता ही

है। इसको पाना भी कठिन है, और यदि किसी प्रकार मिल भी गया, तो आत्मा के लिये तो यह मृत्युस्वरूप ही है; क्योंकि जो इसकी उलझनों में पड़ जाता है, वह अपने आपको भूल जाता है। इसी प्रकार घर-पुत्र-स्वजन-संबंधी-पशु आदि भी अनित्य नाशवान् ही हैं। यदि कोई इन्हें जुटा भी ले, तो इन से क्या सुख-शान्ति मिल सकती है? इसी प्रकार जो मनुष्य, माया से पार जाना चाहता है, उसे यह भी समझ लेना चाहिये कि, मरने के बाद प्राप्त होनेवाले लोक-परलोक भी ऐसे ही नाशवान् हैं; क्योंकि इस-लोक की वस्तुओं के समान, वे-लोक भी कुछ सीमित कर्मों के सीमित फलमात्र हैं। वहाँ भी पृथ्वी के छोटे-छोटे राजाओं के समान बराबरवालों से होड़ अथवा लाग-डाँट रहती है। अधिक ऐश्वर्य एवं अधिक सुखवालों के प्रति छिद्रान्वेषण तथा ईर्षा-द्वेष का भाव बना ही रहता है। कम सुख एवं अपने से कम ऐश्वर्यवालों के प्रति घृणा रहती है, तथा कर्मों का फल पूरा हो जानेपर, वहाँ से भी गिरना पड़ता है; अतः स्वर्गादि लोकों में भी नाश का भय बना ही रहता है।

कल्याणेच्छुक के लिये सद्‌गुरु की आवश्यकता

"ज्यों गुरु त्यों गोविन्द, गुरु बिन गोविन्द किन लह्यो।
ज्यों मावस्या इन्दु, निगुरा पन्थ न पावई॥
फल टूट्यो जल में गिर्‌यो, खोजी मिटी न प्यास।
गुरु तज के गोविन्द भजै, निश्चय नरक निवास॥

इसलिए जो व्यक्ति अपने परमकल्याण का जिज्ञासु हो, उसे गुरुदेव की शरण लेनी चाहिये। गुरुदेव भी ऐसे हों, जो शब्दब्रह्म अर्थात् वेदों के पारदर्शी विद्वान् हों, जिससे वे शिष्य को ठीक-ठीक समझा सकें, और साथ ही वे परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्त्वज्ञानी भी हों, ताकि अपने अनुभव के द्वारा प्राप्त हुई, रहस्य की बातों को बता सकें, उनका चित्त शान्त हो, व्यवहार के प्रपञ्च में विशेष प्रवृत्त न हो। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उद्धव के प्रति कहा है कि "मदभिज्ञं गुरुं शान्तमुपासीतमदात्मकम्" भा० ११।१०।५ जिज्ञासुपुरुष के लिये, यम और नियमों के पालन से भी बढ़कर, आवश्यक पालनीय बात यह है कि, अपने उन गुरुदेव की उपासना अर्थात् सेवा करता रहे कि, जो गुरुदेव मेरे स्वरूप को सर्वतोभाव से जाननेवाले और शान्त हों, एवं जिनका मन-बुद्धि मेरे ही ध्यान में लगे रहते हों। "तदविज्ञानार्थं स

गुरुमेवाभिगच्छेत्" मुण्डक १।२।१२ अर्थात् भगवत्तत्त्व को जानने के लिये, वेदज्ञ एवं भगवन्निष्ठ गुरुदेव की शरण में समित्पाणि होकर, तात्पर्य—पत्र - पुष्पादि हाथ में ले कर उपस्थित होना चाहिये।

जिज्ञासु को चाहिये कि, वह अपने गुरुदेव को ही अपना परमप्रियतम आत्मा एवं इष्टदेव माने, निष्कपटभाव से उनकी सेवा करे, और उनके पास रहकर भागवतधर्मों की अर्थात् भगवान् को प्राप्त करानेवाले भक्तिभाव के साधनों की क्रियात्मक शिक्षा ग्रहण करे भा० ११।३।२२। ऐसा भावुकभक्त भगवान् की माया को अनायास ही पार कर जाता है।

गुरुकृपा से ही भगवत्कृपा

किन्तु जो दुर्बुद्धि, गुरुदेव से रहित है, अथवा गुरुदेव से दीक्षा ले कर भी, गुरुसेवा से वंचित रहता है, उसके ऊपर भगवान् भी रुष्ट हो जाते हैं। इस विषय में दृष्टान्त यही है कि—जो सूर्य, कमल को विकसित करता है; वही सूर्य, जल को त्याग कर दूर होनेवाले कमल को सुखा देता है, किन्तु पुष्ट नहीं करता। इस दृष्टान्त में जल-गुरुस्थानीय है, एवं सूर्य भगवत्-स्थानीय है। 'जयदाख्यान संहिता' में इसी भाव का वर्णन है—"नारायणोऽपि विकृतिं, याति गुरोः प्रच्युतस्य दुर्बुद्धेः। कमलं जलादपेतं, शोषयति रविर्न पोषयति ॥"

सत्संग कब प्राप्त होता है ?

परन्तु अनादिकाल से इस संसार में, अपने कर्मों के अनुसार, विभिन्न योनियों में भटकते हुए, जिस किसी जीव का, जिस जन्म में संसार से छूटने का समय आ जाता है, उस जीव को, उसी जन्म में, सत्सङ्ग प्राप्त हो जाता है। सत्सङ्ग प्राप्त होते ही, सन्तों के आश्रय एवं ब्रह्मादि स्तंबपर्यन्त, कार्य-कारणरूप जगत् के एकमात्र स्वामी श्रीकृष्ण में प्रीति उत्पन्न हो जाती है; अतः जिसको भाग्योदय से महापुरुषों का सत्सङ्ग मिल जाय, तो उसको समझ लेना चाहिये कि, अब मेरा संसार से पार होने का समय आ गया है। मुचुकुन्द ने भी इसी भाव की प्रार्थना कि है—"भवापवर्गो भ्रमतो यदा भवेज्जनस्य तर्ह्यच्युत ! सत्समागमः। सत्सङ्गमो यर्हि तदैव सद्गतौ परावरेशे त्वयि जायते मतिः ॥" भा० १०।५१।५४।

सत्सङ्ग की महिमा

अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को चाहिये कि, वह दुष्टजनों का सङ्ग छोड़कर, सज्जनों में ही स्नेह करे। भा० ११।२६।२६ में श्रीकृष्णचन्द्र ने उद्धव के प्रति कहा भी है—"ततो दुःसङ्गमुत्सृज्य सत्सु सज्जेत बुद्धिमान्।" और कहा भी है कि, "गङ्गा पापं शशी तापं दैन्यं कल्पतरुर्हरेत्। पापं तापं तथा दैन्यं सद्यः साधुसमागमः॥" गङ्गाजी पाप को, एवं चन्द्रमा सन्ताप को, तथा कल्पवृक्ष दीनता को हर लेता है, यह प्रसिद्ध है; किन्तु सच्चे साधुओं का समागम तो, पाप-ताप एवं दीनता आदि को तत्काल हर लेता है।

भगवान् भक्तपराधीन हैं

परन्तु सच्चे भक्तों का सङ्ग बड़े भाग्य से मिलता है; क्योंकि भगवान् की दुर्वासा के प्रति "अहं भक्तपराधीनः" भा० ९।४।६३ इस उक्ति के अनुसार, यह ज्ञात होता है कि, भगवान् भक्तों के पराधीन हैं। जिस जीव के ऊपर भक्तों की कृपा हो जाती है, उसके ऊपर परमकरुणामय भगवान् की कृपा तो अवश्य ही हो जाती है। इसलिए अपना कल्याण चाहनेवाले व्यक्ति को सदैव सद्भक्तों का सङ्ग ही करते रहना चाहिये।

मुझे सद्गुरुदेव की प्राप्ति किस प्रकार हुई ?

मेरा (प्रकाशक का) जन्म गुजरात में विक्रम संवत् १९७२ आश्विन शुक्ला-विजयादशमी रविवार तदनुसार १७ अक्तूबर १९१५ ई० स० में हुआ था, परन्तु कारणवश गुजरात को छोड़कर, मुझे भारत के कई प्रदेशों में घूमना पड़ा। पश्चात् "कोव्वुर" (पश्चिम गोदावरी, आन्ध्र प्रदेश) में निवास किया, वहाँपर श्रीरामानन्द गौडीय मठ में, मुझे भगवत् कथा सुनने का सुअवसर मिला था। उसके श्रवण से मुझे यह समझ में आया कि, श्रीराधाकृष्ण की लीलाकथा का श्रवण-नामसंकीर्तन एवं उनके श्रीचरणों का स्मरण करते हुए ही आयु व्यतीत करनी चाहिये। जीवमात्र के कल्याण का यही श्रेयस्कर सिद्धान्त है।

इसी में अटल होकर, मैं विक्रम संवत् १९९१ वैशाख कृष्णा-द्वितीया रविवार तदनुसार १ अप्रैल १९३४ ई० स० में श्रीरामानन्द गौडीय मठ, कोव्वुर में रहने लग गया। उसी दिन, श्रीहरि की इच्छा

से भ्रमण करते हुए, अंबलपुला (अलप्पी) केरलदेशनिवासी श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज भी (जिनकी आविर्भाव तिथि वि०सं० १९६२ श्रावण कृष्णा-द्वादशी शनिवार तदनुसार २९ जुलाई १९०५ ई०स० की है) आ गये। वे भी सद्गुरुदेव की खोज में थे। उस समय हम दोनों ने मिलकर भगवत्संबंधी चर्चा से महान् आनन्द का अनुभव किया; क्योंकि "समशीलानां मिलनं भवति परस्परसुखाय सर्वेषाम्" गोपालचम्पू: उत्तर, ११।३३ इस उक्ति के अनुसार, समान स्वभाववाले सभीजनों का परस्पर मिलन, परस्पर के सुख के लिये ही संपन्न हो जाता है; क्योंकि "जगति हि समशीलानामेव प्रायेण जायते मैत्री।" जगत् में प्राय समान स्वभाववाले जनों की मित्रता हो जाती है।

इस प्रकार थोड़े दिन बाद ही, वि० सं० १९९१ वैशाख कृष्णा-नवमी रविवार तदनुसार ८ अप्रैल १९३४ ई० स० में कलियुगपावन-स्वभजन-विभजन-प्रयोजनावतीर्ण-भगवान्श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु की परंपरा में नवम श्रीरूपानुगधर्मपालक एवं प्रचारक श्रीगौडीयवैष्णव-संप्रदाय के एकमात्र संरक्षक साधुशिरोमणि परमकृपालु पतितपावन **ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद** ने हम दोनों को, श्रीहरिनाममहामंत्र दे कर, अपनी कृपा से अभिषिक्त कर दिया। तदनन्तर जगन्नाथपुरी में श्रीपुरुषोत्तम मठ में वि० सं० १९९१ फाल्गुन कृष्णा-अष्टमी मङ्गलवार तदनुसार २६ फरवरी १९३५ ई० स० में दीक्षा भी दे दी।

इस प्रकार के महा-महावदान्य श्रीगुरुदेव ने मुझ जैसे दीन-हीन-पापपीन-साधनहीन-पराधीन-अधमव्यक्ति को भी शिक्षा-दीक्षा दे कर, भक्तिरूप-अञ्जन के द्वारा, हृदय के नेत्रों को खोल कर, मेरे जन्म-जन्मान्तरों के अज्ञानरूप-अन्धकार को दूर करके, अपने परमकोमल चरणकमलों का आश्रय दे कर, माता से भी अधिक वात्सल्यगुण से मेरा लालन-पालन करके, मुझे श्रीराधाकृष्ण की प्रेमभक्ति के मार्ग में जो अपनाया है, यह उनकी अहैतुकी अपार करुणा का ही निदर्शन है। ऐसे परमकृपालु श्रीगुरुदेव मुझे जन्म-जन्मान्तर में मिलते रहें, मेरी यही आन्तरिक अभिलाषा है।

गुरुसेवा का वैशिष्ट्य

गुरु-शिष्य का संबंध नित्य होता है। गुरुदेव के सन्तुष्ट होनेपर श्रीहरि एवं समस्त देवता, गुरुभक्त के ऊपर सन्तुष्ट रहते हैं "सुप्रसन्ने

गुरौ यस्मात् तृप्यन्ति सर्वदेवताः" ह.भ.वि. १६।७५८। "गुरोरनुग्रहेणैव पुमान् पूर्णः प्रशान्तये" भा० १०।८०।४३ अर्थात् मनुष्य, श्रीगुरुदेव की कृपा से ही शान्ति का अधिकारी होता है, और पूणता को प्राप्त कर लेता है। "भगवत्तुल्यत्वे तत्त्वोपदेष्टा गुरुदेव एव अतिपूजनीयः। गुरुदेवः संसारात् तारयति। भगवज्ज्ञानप्रदाता गुरुरतिशयेन शुश्रूषणीय" भा० १०।८०।३२-३४ टीका, अर्थात् भगवान् के समान, तत्त्व के उपदेष्टा गुरुदेव अतिशय पूजनीय हैं: क्योंकि गुरुदेव, संसार से पार करते हैं; अतः भगवत्संबंधी ज्ञान के दाता गुरुदेव की सेवाशुश्रूषा विशेष करनी चाहिये। "गुरुशुश्रूषणं नाम सर्वधर्मोत्तमोत्तमम्। तस्माद् धर्मात् परो धर्मः पवित्रं नैव विद्यते" ह० भ० वि० ४।३५५ अर्थात् श्रीगुरुसेवा-नामक जो धर्म है, वह सब धर्मों में अतिशय उत्तम है। जीव को पावन बनानेवाला उससे दूसरा और कोई भी धर्म नहीं है; क्योंकि श्रीनारदजी ने युधिष्ठिर के प्रति काम-क्रोधादि दोषों को दूर करने के लिये अनेक प्रकार के उपाय बतलाये; परन्तु अन्त में गुरुदेव की सेवा को ही मुख्य बताते हुए, यह कह दिया कि "एतत् सर्वं गुरौ भक्त्या पुरुषो ह्यञ्जसा जयेत्" भा० ७।१५।२५ मनुष्य, गुरुदेव की सेवा के द्वारा ही इन सब दोषों को अनायास जीत सकता है।

मार्मिक भगवत्कथा का स्वरूप

हमारे श्रीगुरुदेव (श्रील प्रभुपाद) के मुखारविन्द से निकली हुई श्रीहरिकथा मर्मस्पर्शी, चित्ताकर्षी एवं बहुत ही बलप्रद होती थी। उनके अमूल्य उपदेशों से श्रद्धालु श्रोताओं के हृद्‌गत सन्देहों का स्वतः समाधान हो जाता था, और भगवत्संबंध में सुदृढता हो जाती थी। इस प्रकार के निरपेक्ष भगवत् तत्त्वोपदेष्टा महापुरुष जगत् में विरले ही होते हैं। **उनकी (श्रील प्रभुपाद की) आन्तरिक यही अभिलाषा थी कि—"श्रीकृष्ण का भजन करके सभी जीव सदा के लिये सुखी बन जायँ। अनेक प्रकार के कीर्तनों में श्रीकृष्णनामसंकीर्तन ही उनका मुख्य उद्देश्य था; क्योंकि श्रीकृष्णनामसंकीर्तन प्रेमरूप-संपत्ति देने में सर्वोत्तम है।"** तात्पर्य—सर्ववेदान्त प्रतिपाद्य श्रीकृष्ण ही परमतत्त्व हैं, एवं सब की गति सर्वाधार सर्वशक्तिमान् सकल दिव्यगुणनिधान तथा सौन्दर्य माधुर्य के आश्रय हैं। इतना होनेपर भी जीवमात्र के परमसुहृद हैं, और स्नेही जीवमात्र को अपने गले से लगाने के लिये, हाथ पसार कर देखते रहते हैं; अतः ऐसे दयालु प्रभु श्रीकृष्ण को छोड़कर, जीव कौन का भजन करेगा ?"

वैष्णव-चरित्र सर्वदा पवित्र

श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज का जीवन बड़ा आदर्शमय था, आप प्राणीमात्र से मित्रता एवं विनय का व्यवहार करते थे, सभी के परमहितैषी एवं कृपालु-बान्धवस्वरूप थे, सर्व प्रकार से पवित्र थे, कष्ट सहकर भी अपना वचन निर्वाहित करते थे, यदृच्छालाभ में ही सन्तुष्ट रहते थे, सर्वदा सर्वतोभाव से निश्चिन्त रहकर सत्यभाषी-दृढनिश्चयी-निडर-अटल-उत्साही थे, तथा कोमलचित्तवाले भजनानन्दी व्यक्तिमात्र को छाती से लगाकर प्रोत्साहन देते थे, श्रीगुरुदेव की सेवा में एवं श्रीकृष्ण के पवित्र नाम-रूप-गुण-लीला आदि के कथन में परस्पर सन्तोष देते हुए सदैव निमग्न रहते थे, सत्सङ्ग-नामसंकीर्तन-भक्तिवर्धक शास्त्रों का अनुशीलन एवं भगवत्प्रीत्यर्थ सत्कार्यों में ही लालसा रखते थे, "मैं कर्ता हूँ" इस प्रकार का अभिमान उनके हृदय में किञ्चित् भी नहीं था, सब कुछ श्रीकृष्णद्वारा किया हुआ ही मानते थे, सत्सङ्ग से प्राप्त सद्बुद्धि के सुअवसर को कभी भी नहीं खोते थे; मान-अपमान, हानि-लाभ, सुख-दुःख, निन्दा-स्तुति आदि में समान रहते थे, और जन्म-मरण की चिन्ता को छोड़कर, मन-वाणी से केवल श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका (श्रीराधिका)-गोविन्ददेव के मनन तथा कथन में ही लगे रहते थे, और कहा करते थे कि "सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चान्धजडमूकता। यन्मुहूर्तं क्षणं वापि वासुदेवो न चिन्त्यते ॥" जिस घड़ी या क्षण में श्रीकृष्ण का चिन्तन नहीं किया जाता, यह सब से बड़ी हानि है, एवं सब से बड़ी त्रुटि है, तथा सब से बड़ा अन्धापन-जड़ता और गूँगापन है; और यदि हम श्रीकृष्ण के नामसंकीर्तन में संलग्न हो जायँ तो हमारा हृदय निर्मलज्योति से जगमगा उठेगा, सभी दिशाएँ उसी ज्योति से भरी हुई दिखाई देंगी, उस समय हमारे आनन्द की सीमा न रहेगी।

श्रीकृष्णनामसंकीर्तन का महत्व

क्योंकि 'श्रीकृष्णनामसंकीर्तन'—प्राणीमात्र के समस्त पापों को विनष्ट कर देता है, संकीर्तन करनेवाले व्यक्ति के वंश एवं संगियों को पवित्र कर देता है, सर्व प्रकार की व्याधियों का विनाश कर देता है, सर्व प्रकार के दुःखों को शमन करता है, कलिकाल की समस्त बाधाओं को हर लेता है, नारकीय-जीवों का भी उद्धार करता है, प्रारब्धकर्मों के भोग को खण्डन करता है,

सब प्रकार के अपराधों का भंञ्जन करता है, यज्ञादि सब कार्यों की त्रुटि एवं न्यूनता को पूर्ण करता है, वेदपाठ से भी श्रेष्ठ है; क्योंकि यह सब वेदों का सार है, सब तीर्थों से भी उत्तम है; क्योंकि सब तीर्थों का फल इस 'नामसंकीर्तन' से न्यून है, यह समस्त सत्कर्मों से उत्तम है; क्योंकि समस्त सत्कर्म इसके आगे व्यर्थ हैं, प्राणीमात्र को सभी प्रकार के अभीष्ट भोग सुख प्रदान करता है, श्रीकृष्ण के समान ही सर्वशक्तिमान् है, संसारीमनुष्यों को विमल आनन्द प्रदान करता है, अधममनुष्यों को भी पूजनीय बनाता है, उपायहीन व्यक्तियों को सद्गति प्रदान करता है, किसी प्रकार के विधि-निषेध के अधीन नहीं है; यह सब जगह, सब समय, सब मनुष्यों के द्वारा किया जा सकता है; मुक्ति की इच्छावालों को मुक्ति देता है, वैकुण्ठधाम की प्राप्ति कराता है, **श्रीकृष्ण में प्रीति उत्पन्न कराता है, श्रीकृष्ण को वश में करा देता है, नित्य परमपुरुषार्थ प्रेमस्वरूप है, यह अपने आश्रितों को प्रेमदान करता है,** भक्ति के चौंसठ अङ्गों में सब से श्रेष्ठ है। अतः श्रीकृष्णनाम के प्रति मेरी तो यही प्रार्थना है कि—

"प्रेमरूपं प्राणरूपं जीवनं भूषणं परम्।
भक्तानां श्रीकृष्णनाम कृपया मे प्रसीदतु ॥"

भक्तों का प्रेमरूप-प्राणरूप-जीवनरूप-एवं विशिष्टभूषणरूप श्रीकृष्ण का नाम, कृपया मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाय।

अन्तसमय का सच्चासाथी कौन ?

और देखो, मनुष्य जब असाध्य व्याधियों से घिरकर, पराधीन होकर मरणशय्यापर सोता है, उस समय योग-यज्ञ-व्रत-तप-तीर्थ-स्नान-ध्यान-पाठ-पूजा-देवदर्शन आदि करने की या किसी भी नियम के पालन की शक्ति उसमें नहीं रह जाती है। योगादि साधन यद्यपि उत्तम हैं, तथापि उस समय सामर्थ्य न होने के कारण उसके लिये सभी निरुपयोगी हो जाते हैं; क्योंकि उस भयंकर समय में सर्वथा दीन-हीन एवं सर्व प्रकार से अशक्त बने हुए जीव का केवल श्रीकृष्णनाम ही अवलंबनरूप हो सकता है। **जीव के अन्तसमय का सच्चासाथी श्रीकृष्ण का नाम ही हे;** क्योंकि त्रिविध-तापों से जले-भुने जीवों को शान्ति देनेवाला है, दुःख में पड़े हुए जीवों के लिये वही अटल-अखण्ड एवं आत्यन्तिक सुख का स्थान है, महाघोर से घोर कर्म करनेवाले पापियों को पावन बनानेवाला है, माया के अन्धकारमय

भूलभुलैया में दिव्यज्योतिरूप बनकर सच्चामार्ग दिखानेवाला है, विष से भरे हुए संसार में अमृत के समान है, जन्म-जन्मान्तर से विषयरूप-विष का पान करनेवाले जीवों के लिये परमास्वाद्य निर्विकार पेयपदार्थ है, मीठे से भी मीठा है, मधुर से भी परममधुर है। जिसने एकवार भी उसका स्वाद ले लिया, उसके लिये अन्य सारे स्वाद फीके-रसहीन-तुच्छ लगने लगते हैं। भवसागर में डूबते हुए प्राणी के लिये नाम ही नौका है। भक्तिमार्ग के प्रवासी का वह सच्चामित्र है। जीव को श्रीकृष्ण की सेवा में पहुँचाने के लिये वह महान् गुरु है। अन्तःकरण में रमनेवाली मलिनवासनाओं का नाश करने के लिये दिव्यऔषधी है। भक्तों का दिव्यभूषण है, और ऋषियों का भी परमधन है। **श्रीकृष्णनामसंकीर्तन से श्रीकृष्ण के चरणकमलों में प्रेम उत्पन्न होना ही मुख्यफल है।** कहा भी है कि "लप्स्यसे कृष्णपादाब्जं कृष्णनाम-प्रभावतः ॥" "फलं कृष्णपदे प्रेम नाम्न एवोपजायते ॥" "कृष्णनाम्नः फलं प्रेमा सर्वशास्त्रै निगद्यते ॥" "नाम्न एव फलात् कृष्णपदे प्रेमोप-जायने ॥" "सर्वकल्याणकृत् कृष्णप्रेमोल्लासोऽथ संभवेत् ॥" "संकीर्तन-प्रभावेण पाप-संसार-नाशनम्। चित्तशुद्धिस्तथा सर्वभक्तिसाधन-सङ्गमः ॥ कृष्णप्रेमोद्गमः प्रेमामृतस्यास्वादनं ततः। कृष्णप्राप्तिरथो सेवामृताब्धौ मज्जनं सदा ॥"

श्रीकृष्णनाम की खेती ही सार्थक है। इसका किसान महान् सुखी है; क्योंकि इस खेती में अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईति की भीति नहीं है। श्रीकृष्णनाम हीं सर्वोत्तम सनातन मूलमंत्र है, शान्ति का परममनोहर भवन है, जिसमें चतुरपथिक ही विश्राम करते हैं, उनको किसी प्रकार का भय नहीं रहता है; क्योंकि यह भवन अशोक-अभय और प्रेमामृत का आधार है। संसार के मायाजाल में फँसकर मनुष्य 'नर्तकी' बनकर नाच रहा है, यदि इससे बचना है तो 'नर्तकी' का उलटा 'कीर्तन' करना होगा, अर्थात् **नामसंकीर्तन करने से ही जीव माया के जाल से बच पायेगा, और श्रीकृष्ण के चरणकमलों में प्रेम प्राप्त करेगा।**

The Divine Name (श्रीभगवन्नामपरक) ग्रन्थ-निर्माण

श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज ने, श्रीगुरुदेव (श्रील प्रभुपाद) की कृपा से १६ मार्च १६५४ ई० स० में "The Divine Name"-नामक एक इंग्लिश की पुस्तक बनाकर प्रकाशित की थी। यह पुस्तक

भारत में एवं विदेशों में भी विशेष प्रशंसित हुई। इस पुस्तक की रचनाशैली ऐसे मधुरभाव से परिपूर्ण है कि पढ़नेवाले भक्तों के हृदय भाव से उमड़ पड़ते हैं, रसिकव्यक्ति भक्तिरससमुद्र में गोता लगा कर आनन्दित हो जाते हैं, भगवन्नाम के प्रेमीव्यक्ति तो प्रेम में पागल हो जाते हैं। ग्रन्थ की भाषा यद्यपि इंग्लिश में है, तथापि आपकी लेखनी बड़ी ही उज्ज्वल है, भाषा का भी महान् लालित्य है। श्रीभगवन्नाम-परक ऐसा अपूर्व एवं अलौकिक ग्रन्थ अवतक इंग्लिशभाषा में तो क्या, भारत की किसी भी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ है। इस ग्रन्थ का अनुवाद भारत की कई भाषाओं में हो चुका है।

प्रेमीजनों का सर्वदा एकसाथ रहना असंभव

श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज जो कि हमारे गुरुभाई थे, दोनों ने मिलकर प्राय एक ही साथ रहकर भक्तिभावपूर्वक तैंतीस वर्ष व्यतीत कर दिये; परन्तु नदी के प्रवाह में एकसाथ बहते हुए तिनके जिस प्रकार सदा एकसाथ नहीं रह सकते, इसी प्रकार सगे-संबंधी एवं प्रेमियों का भी एकस्थानपर रहना नहीं वन पाता है; क्योंकि प्राणीमात्र के प्रारब्धकर्म तो अलग-अलग ही हैं, वे ही सब को मिलाते बिछुडाते रहते हैं। और खेलने के खिलौनों का संयोग एवं वियोग, जिस प्रकार खिलाड़ीव्यक्ति की इच्छा से ही होता है, उसी प्रकार मनुष्यमात्र का संयोग-वियोग भी कृष्ण की इच्छा से ही होता रहता है। जब इस शरीर से भी बिछुड़ना पड़ता है, तब स्त्री-पुत्र-धन आदि से बिछुड़ना पड़ेगा, इस विषय में तो कहना ही क्या है ? ऐसी स्थिति में वि. सं. २०२४ भाद्र कृष्णा-तृतीया बुधवार, २३ अगस्त १९६७ ई. स. प्रातःकाल ७.४० मिनट के समय वृन्दावन में श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज से मेरा भी वियोग हो गया।

"श्रीस्तवरत्ननिधिः"-ग्रन्थनिर्माण प्रयोजन

श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज के हृदय में एक प्रवल इच्छा थी कि, श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों के प्राचीन एवं अर्वाचीन स्तोत्रों का एक ग्रन्थ, हिन्दीभाषा के अनुवाद के सहित, यदि प्रकाशित हो जाय, तो साधारणजनता को भी, श्रीहरि-गुरु-वैष्णवों का स्वरूप-ज्ञान अनायास हो जायगा; परन्तु उनकी यह इच्छा पूरी न हो पायी, तो भी अपने देहावसान के समय मुझ (प्रकाशक) को बहुत-सी बातों का निर्देश करत हुए यह आदेश दिया कि, भैया पुरुषोत्तमदासजी ! देखो, "तुम

मेरी इस शुभकामना को अवश्य ही पूरी कर देना।" मैंने सहर्ष अनुमोदन कर दिया; अतः उन महानुभाव की लोकोपकारिणी अभिलाषा को साङ्गोपाङ्ग पूर्ण करने के लिये मैंने 'श्रीपद्यावली', 'श्रीभक्तिग्रन्थमाला', एवं 'श्रीगोपालचम्पू:' आदि ग्रन्थों के सुप्रसिद्ध भाषाटीकाकार, तथा 'श्रीसख्यसुधाकर', 'श्रीकृष्णानन्दमहाकाव्य', 'श्रीहरिप्रेष्ठमहाकाव्य', 'श्रीवनमालिप्रार्थनाशतक', 'श्रीराधारमण-शतक', 'श्रीभक्तनाममालिका' आदि संस्कृत के अनेक मौलिकग्रन्थों के रचयिता महाकवि श्रीवनमालिदास शास्त्रीजी महाराज से "जो कि मेरे सहृदय बन्धुवर हैं तथा बाल्यकालीन आचारनिष्ठ विरक्तसाधु हैं" भाषाटीका करने की प्रार्थना की। इन्होंने भी सहर्ष अङ्गीकृति दे कर, मेरे द्वारा निर्दिष्ट सभी स्तोत्रों की भावप्रदर्शनपूर्वक 'श्रीकृष्णानन्दिनी'-नामक हिन्दी टीका लिखकर, सभी स्तोत्रों का 'श्रीस्तवरत्ननिधि:'— यह नामकरण करके, अपनी सहृदयता का परिचय दिया। मैं उनका चिरकृतज्ञ हूँ, क्योंकि उनके हार्दिक सहयोग से ही 'श्रीस्तवरत्ननिधि:' का प्रकाशन हुआ है।

वैष्णवी-काव्यरचना की विशेषता

इस ग्रन्थ में जो संस्कृत के स्तोत्र हैं, वे सब श्रीब्रह्मा-श्रीसत्यव्रतमुनि - श्रीजयदेव - श्रीस्वरूपदामोदर - श्रीरूप- श्रीसनातन-श्रीजीव- श्रीरघुनाथदास गोस्वामी- श्रीवासुदेवसार्वभौम- श्रीकृष्णदास कविराज-श्रीवृन्दावनदास ठाकुर-श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती-श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती-श्रीनिवासाचार्य-श्रीभक्तिविनोद ठाकुर-श्रीवनमालिदास शास्त्री इत्यादि गौडीयवैष्णव महानुभावों के द्वारा विरचित हैं, तथा बङ्गभाषा में रचित जो पद हैं वे श्रीकृष्णदास-श्रीगोविन्ददास-श्रीचण्डिदास-श्रीजगदानन्ददास - श्रीज्ञानदास - श्रीदेवकीनन्दन - श्रीनयनानन्द-श्रीनरहरिदास-श्रीनरोत्तम ठाकुर-श्रीप्रेमानन्द-श्रीभक्तिविनोद ठाकुर-श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी ठाकुर - श्रीमाधवदास-श्रीयदुनन्दन ठाकुर- श्रीवासुदेव घोष इत्यादि के द्वारा विरचित हैं।

गौडीयवैष्णवों की काव्यरचना एवं स्तोत्रों की रचना ने भगवत्प्रेम के विषय में जो उच्चस्थान प्राप्त किया है, वह स्थान जगत्भर के किसी कवि की कविता ने नहीं प्राप्त किया है; क्योंकि गौडीयवैष्णवों की प्रेमभरी कविता में पदों का लालित्य, भाषा की कोमलता, कामगन्धहीनता, उज्ज्वलप्रेम की विचित्रता, एवं

माधुर्यपूर्वक अलौकिक भावसंपत्ति की विशेषता आदि का जैसा आश्चर्यमय वर्णन है, वैसा अन्यत्र नहीं दिखाई देता। इन सब की लेखनी से करोड़ों रसलिप्सु साधकजन, प्रेमामृत का पान कर, त्रिविध-तापमयी ज्वाला से सन्तप्त अपने हृदय को शान्त करते आये हैं, शान्त कर रहे हैं, एवं आगे के भक्त भी शान्त करते रहेंगे।

अत: ऐसे भक्तों की सेवा के लिये ही गौडीयवैष्णवों के स्तोत्रों का सङ्कलन "श्रीस्तवरत्ननिधिः" के रूप में किया गया है। इस ग्रन्थ का पठन-पाठन करनेवाले परमार्थ-पथ के पथिकों का चित्त, भक्ति-भक्त-भगवन्त-गुरु आदि की महिमा के माधुर्य में, अवश्य ही चमत्कृत हो जायगा, तथा असंभावना विपरीतभावना आदि अज्ञानरूप-अन्धकार से रहित होकर, भक्तिभावना के सत्सिद्धान्त में सुप्रतिष्ठित हो जायगा।

श्रीराघवचैतन्यदासजी महाराज के अतिशय कृपापात्र, भक्तिनिष्ठ, सरस हृदय, सरल प्रकृतिवाले मद्रासनिवासी श्री के० गोपालदास ("पॉण्डी विल्ला", ४६ गोलावरम् अग्रहारम् रोड, मद्रास—२१) ने अपने श्रीगुरुदेव की कीर्तिलता को चिर विकसित करने के लिये, इस ग्रन्थ के प्रकाशन की सेवार्थ पाँच सौ रुपयों की धनराशि सहर्ष समर्पित की है; अत: वे धन्यवाद के पात्र हैं, एवं श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्विका-गिरिधारी की कृपा के भाजन हैं।

गौडीयवैष्णवों के श्रीचरणों में मेरी तो यही करबद्ध प्रार्थना है कि, मेरा मन आपके सत्सिद्धान्त में सदैव सुप्रतिष्ठित रहे।

आददानस्तृणं दन्तैरिदं याचे पुनः पुनः।
श्रीलप्रभुपदांभोजधूलिः स्यां जन्म-जन्मनि॥

११७ गोपीनाथ घेरा
वृन्दावन (मथुरा), उ० प्र०
२१ अप्रैल १९७० ई० स०

श्रीगुरुदेव-कृपाकांक्षी
पुरुषोत्तमदास

श्रीस्तवरत्ननिधि–विषयसूची ।

विषयः	पृष्ठाङ्कः

—*—

श्रीस्तवरत्ननिधिमध्ये विद्यमानानां हिन्दीभाषा-बङ्गभाषा-निबद्धपद्यानां सूचीपत्रम् ।

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ।

श्रीस्तवरत्ननिधिः ।

ग्रन्थ-प्रारंभे मंगलाचरणम् ।

श्रीमद्गुरुदेव-वन्दना ।

श्रीकृष्णनामामृतवर्षिवक्त्र, -चन्द्रप्रभाध्वस्ततमोभराय ।
गौराङ्गदेवानुचराय तस्मै, नमो नमः श्रीलगुरूत्तमाय ॥

नामश्रेष्ठं मनुमपि शचीपुत्रमत्र स्वरूपं
रूपं तस्याग्रजमुरुपुरीं माथुरीं गोष्ठवाटीम् ।
राधाकुण्डं गिरिवरमहो राधिका-माधवाशां
प्राप्तो यस्य प्रथितकृपया श्रीगुरुं तं नतोऽस्मि ॥

श्रीमद्वैष्णव-वन्दना ।

आलोकामृतदानतो भवमहाबन्धं नृणां छिन्दतः
स्पर्शात् पादसरोजशौचपयसां तापत्रयं भिन्दतः ।
आलापाद् व्रजनागरस्य पदयोः प्रेमाणमातन्वतो
वन्दे भागवतानिमाननुलवं मूर्ध्ना निपत्य क्षितौ ॥

तेभ्यो नमोऽस्तु भववारिधि-जीर्णपङ्क-
संमग्नमोक्षण-विचक्षण-पादुकेभ्यः ।
कृष्णेति वर्णयुगलश्रवणेन येषा-
मानन्दथुर्भवति नर्तित-रोमवृन्दः ॥

श्रीगौराङ्गमहाप्रभु-वन्दना ।

माधुर्यैर्मधुभिः सुगन्धि भजनस्वर्णाम्बुजानां वनं
कारुण्यामृतनिर्झरैरुपचितः सत्प्रेमहेमाचलः ।
भक्ताम्भोधरधोरणीविजयिनी निष्कंपशंपावलि-
र्देवो नः कुलदैवतं विजयतां चैतन्यकृष्णो हरिः ॥

सौन्दर्ये कामकोटिः सकलजनसमाह्लादने चन्द्रकोटि-
र्वात्सल्ये मातृकोटिस्त्रिदशविटपितोऽप्यद्भुतौदार्यकोटिः ॥
गांभीर्येऽम्भोधिकोटिर्मधुरिमणि सुधाक्षीरमाध्वीककोटि-
गौरो देवः स जीयात् प्रणयरसपदे दर्शिताश्चर्यकोटिः ॥

श्रीकृष्ण-वन्दना ।

नमो नलिननेत्राय वेणुवाद्यविनोदिने ।
राधाधरसुधापानशालिने वनमालिने ॥

श्रवसोः कुवलयमक्ष्णोरञ्जनमुरसो महेन्द्रमणिदाम ।
वृन्दावनरमणीनां मण्डनमखिलं हरिर्जयति ॥

श्रीराधा-वन्दना ।

प्रेमोल्लासैकसीमा परमरसचमत्कारवैचित्र्यसीमा
सौन्दर्यस्यैकसीमा किमपि नववयोरूप-लावण्यसीमा ।
लीलामाधुर्यसीमा निजजनपरमौदार्य-वात्सल्यसीमा
सा राधा सौख्यसीमा जयति रतिकलाकेलिमाधुर्यसीमा ॥

राधानामैव कार्यं ह्यनुदिनमिलितं साधनाधीशकोटि-
स्त्याज्या नीराज्य राधापदकमलसुधां सत्पुमर्थाग्रकोटिः ।
राधापादाब्जलीलाभुवि जयति सदाऽमन्दमन्दारकोटिः
श्रीराधा-किङ्करीणां लुठति चरणयोरद्भुता सिद्धिकोटिः ॥

श्रीगौर-कृष्ण-तत्परिकर-वन्दना ।

नाभाकृष्टरसज्ञः शीलेनोद्दीपयन् सदानन्दम् ।
निजरूपोत्सवदायी सनातनात्मा प्रभुर्जयति ॥

श्रीभगवन्नाम-वन्दना ।

जयति जयति नामानन्दरूपं मुरारे-
र्विरमितनिजधर्मध्यानपूजादियत्नम् ।
कथमपि सकृदात्तं मुक्तिदं प्राणिनां यत्
परमममृतमेकं जीवनं भूषणं मे ॥

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः ।

सपरिकर-श्रीहरि-गुरु-वैष्णव-वन्दनम् ।

वन्देऽहं श्रीगुरोः श्रीयुतपदकमलं श्रीगुरून् वैष्णवांश्च
श्रीरूपं साग्रजातं सहगण-रघुनाथान्वितं तं सजीवम् ।
साद्वैतं सावधूतं परिजनसहितं कृष्णचैतन्यदेवं
श्रीराधाकृष्णपादान् सहगण-ललिताश्रीविशाखान्वितांश्च ॥१॥

श्रीलप्रभुपाद-प्रणतिः ।

नम ॐ विष्णुपादाय कृष्णप्रेष्ठाय भूतले ।
श्रीमते भक्तिसिद्धान्त -सरस्वतीतिनामिने ॥
श्रीवार्षभानवीदेवीदयिताय कृपाब्धये ।
कृष्णसम्बन्धविज्ञानदायिने प्रभवे नमः ॥
माधुर्योज्ज्वलप्रेमाढ्य -श्रीरूपानुगभक्तिद ! ।
श्रीगौरकरुणाशक्तिविग्रहाय नमोऽस्तु ते ॥
नमस्ते गौरवाणीश्रीमूर्तये दीनतारिणे ।
रूपानुगविरुद्धाऽपसिद्धान्त-ध्वान्तहारिणे ॥२॥

मैं, अपने श्रीदीक्षागुरुदेव के शोभायमान चरणकमलों की वन्दना करता हूँ, एवं शिक्षागुरुओं की, तथा वैष्णवों की वन्दना करता हूँ; तथा श्रीसनातन गोस्वामी सहित परिकर सहित श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथभट्ट गोस्वामी, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी से युक्त एवं श्रीजीव गोस्वामी के सहित अनुभव में लाये हुए श्रीरूप गोस्वामी की वन्दना करता हूँ। श्रीअद्वैत आचार्य के सहित, एवं श्रीनित्यानन्द प्रभु के सहित परिकर सहित श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु की वन्दना करता हूँ, और अपने गण के सहित ललिता-विशाखा आदि सखियों से युक्त श्रीराधाकृष्ण के पदारविन्दों की वन्दना करता हूँ ।।१।।

भूतल में अवतीर्ण एवं श्रीकृष्ण के अतिशय प्रिय, ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी-नामक प्रभुपाद के लिये हमारा नमस्कार है ।

और अकारण करुणावरुणालय-स्वरूप एवं वृषभानुनन्दिनी श्रीमती राधिकादेवी के प्रियभक्त, तथा श्रीकृष्ण के सम्बन्ध के विज्ञान को देनेवाले प्रभुपाद के लिये हमारा नमस्कार है ।

श्रीलगौरकिशोर-प्रणतिः ।

नमो गौरकिशोराय साक्षाद्वैराग्यमूर्त्तये ।
विप्रलंभरसांभोधे ! पादाम्बुजाय ते नमः ॥३॥

श्रीलभक्तिविनोद-प्रणतिः ।

नमो भक्तिविनोदाय सच्चिदानन्द-नामिने ।
गौरशक्तिस्वरूपाय रूपानुगवराय ते ॥४॥

श्रीलजगन्नाथ-प्रणतिः ।

गौराविर्भावभूमेस्त्वं निर्देष्टा सज्जनप्रियः ।
वैष्णवसार्वभौम -श्रीजगन्नाथाय ते नमः ॥५॥

मधुररसाश्रित-उज्ज्वलप्रेम से युक्त श्रीरूप गोस्वामी की अनुगत भक्ति को देनेवाले, प्रभुपाद ! आपके लिये हमारा नमस्कार है; क्योंकि आप श्रीगौराङ्गमहाप्रभु की कृपाशक्ति के विग्रहस्वरूप हो,

एवं आप श्रीगौराङ्गदेव की वाणी के शोभायमान साकार रूप हो, दीनजनों का उद्धार करनेवाले हो, तथा श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत भक्तों के विरुद्ध जो अपसिद्धान्तरूप-अन्धकार है, उसको हरनेवाले हो; एवंगुणविशिष्ट शिष्टाग्रगण्य आपके लिये हमारा कोटिशः प्रणाम है ।।२।।

वैराग्यरस के साक्षात् मूर्तिस्वरूप ॐविष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्गौरकिशोरदास बाबाजी महाराज के लिये हमारा नमस्कार है । हे विप्रलंभरस के समुद्रस्वरूप प्रभो ! आपके श्रीचरणारविन्दों में हमारा प्रणाम है ।।३।।

ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमत् सच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर नामवाले एवं श्रीगौराङ्गदेव की शक्तिस्वरूप तथा श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत भक्तों में श्रेष्ठ, आपके लिये हमारा कोटिशः प्रणाम है ।।४।।

ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्वैष्णव-सार्वभौम श्रील जगन्नाथदास बाबाजी महाराज आपके लिये हमारा प्रणाम है । आप श्रीगौराङ्गदेव के प्रादुर्भाव की भूमि नवद्वीपान्तर्गत श्रीअन्तर्द्वीप "श्रीमायापुर"-धाम का निर्देश करनेवाले हो, सज्जनमात्र के प्रिय हो, एवं वैष्णवों के सार्वभौम हो ।।५।।

वैष्णव-प्रणामः ।

वाञ्छाकल्पतरुभ्यश्च कृपासिन्धुभ्य एव च ।
पतितानां पावनेभ्यो वैष्णवेभ्यो नमो नमः ॥६॥

श्रीगौराङ्गमहाप्रभु-प्रणामः ।

नमो महावदान्याय कृष्णप्रेमप्रदाय ते ।
कृष्णाय कृष्णचैतन्यनाम्ने गौरत्विषे नमः ॥७॥

श्रीपञ्चतत्त्व-प्रणामः ।

पञ्चतत्त्वात्मकं कृष्णं भक्तरूपस्वरूपकम् ।
भक्तावतारं भक्ताख्यं नमामि भक्तशक्तिकम् ॥८॥

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभुनित्यानन्द ।
श्रीअद्वैत गदाधर श्रीवासादिगौरभक्तवृन्द ॥९॥

अपने आश्रितजनों की अभिलाषा पूर्ति के लिये कल्पवृक्षस्वरूप एवं कृपा के सिन्धुस्वरूप, तथा पतितजनों को पावन बनानेवाले वैष्णवों के लिये हमारा बारम्वार नमस्कार है ।।६।।

हे श्रीगौराङ्गमहाप्रभो ! आपके लिये हमारा कोटिशः प्रणाम है; क्योंकि आप अनर्पितचरी व्रजसंबंधिनी प्रेमलक्षणा भक्ति के दाता होने के कारण महावदान्य हो, अतः श्रीकृष्णसंबंधी प्रेम को देनेवाले हो, साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप हो, एवं श्रीकृष्णचैतन्य नामवाले हो, तथा गौरकान्तिवाले हो (इस श्लोक में श्रीगौरसुन्दर के नाम-रूप-गुण-परिकर एवं उनकी लीला का वैशिष्ट्य भी वर्णित है । श्रीगौरसुन्दर का नाम—श्रीकृष्णचैतन्य है, उनका रूप—गौरकान्तिवाला है, उनका गुण—महावदान्य है, उनके परिकर का वैशिष्ट्य श्रीकृष्णस्वरूपान्तर्गत पार्षदवृन्द, अर्थात् स्वरूप-रूप-रामराय आदि एवं उनके अनुगत संप्रदाय है, उनकी लीला—श्रीकृष्णप्रेम को देनेवाली है) ।।७।।

मैं, पञ्चतत्त्वस्वरूप श्रीकृष्ण को नमस्कार करता हूँ । प्र०—वे पञ्चतत्त्व कौन से हैं ? उ०—१. भक्तरूप स्वयं श्रीकृष्णचैतन्य, २. भक्तस्वरूप श्रीनित्यानन्द, ३. भक्तावतार श्रीअद्वैताचार्य, ४. भक्त-नामक श्रीवास पंडित आदि, एवं ५. भक्तशक्तिवाले श्रीगदाधर पंडित आदि कहे जाते हैं । प्रमाणं गौरगणोद्देशदीपिकायाम् यथा—"भक्तरूपो गौरचन्द्रो यतोऽसौ नन्दनन्दनः । भक्तस्वरूपो नित्यानन्दो व्रजे यः

महामंत्रः ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥१०॥

श्रीकृष्ण-प्रणामः ।

हे कृष्ण ! करुणासिन्धो ! दीनबन्धो ! जगत्पते ! ।
गोपेश ! गोपिकाकान्त ! राधाकान्त ! नमोऽस्तु ते ॥११॥

श्रीराधा-प्रणामः ।

तप्तकाञ्चनगौराङ्गि ! राधे ! वृन्दावनेश्वरि ! ।
वृषभानुसुते ! देवि ! प्रणमामि हरिप्रिये ! ॥१२॥

श्रीसंबंधाधिदेव-प्रणामः ।

जयतां सूरतौ पङ्गोर्मम मन्दमतेर्गती ।
मत्सर्वस्वपदांभोजौ राधामदनमोहनौ ॥१३॥

श्रीहलायुधः । भक्तावतार आचार्योऽद्वैतो यः श्रीसदाशिवः । भक्ताख्याः श्रीनिवासाद्या यतस्ते भक्तरूपिणः । भक्तशक्तिद्विजाग्रगण्यः श्रीगदाधर-पण्डितः ।" ।।८-९।।

इस "महामन्त्र" की विस्तृत व्याख्या आगे मिलेगी ।।१०।।

हे करुणासिन्धो ! हे दीनवन्धो ! हे जगत्पते ! हे गोपेश ! हे गोपीकान्त ! हे राधावल्लभ ! श्रीकृष्ण ! प्रभो ! आपके लिये मेरा कोटिशः प्रणाम है ।।११।।

हे तप्तकाञ्चनगौराङ्गि ! हे वृन्दावनेश्वरि ! हे वृषभानुनन्दिनि ! हे हरिप्रिये ! देवि ! श्रीमती राधिके ! मैं आपको बारंवार प्रणाम करता हूँ ।।१२।।

श्रीराधा-मदनमोहन की जय हो, अर्थात् वे दोनों सर्वदा सर्वोत्कर्ष से विद्यमान रहें; क्योंकि वे दोनों परमदयालु हैं, मुझ पंगु अर्थात् दूसरे स्थान में जाने की शक्ति से रहित, एवं मन्दमति अर्थात् मन्दबुद्धि के भी, अज्ञानी एवं वृद्ध होने के नाते, जो गती अर्थात् रक्षक हैं,तथा जिन दोनोंके चरणकमल मेरे सर्वस्वस्वरूप हैं; यह ग्रन्थकार की दीनता का प्रकाशक अर्थ हुआ । उनकी दीनता को न सहनेवाले भक्तजन, इस प्रकार की व्याख्या करते हैं, यथा—मैं पंगु हूँ, अर्थात्

श्रीअभिधेयाधिदेव-प्रणामः ।

दीव्यद्वृन्दारण्यकल्पद्रुमाधः, श्रीमद्रत्नागारसिंहासनस्थौ ।
श्रीमद्राधा-श्रीलगोविन्ददेवौ,प्रेष्ठालीभिः सेव्यमानौ स्मरामि ॥१४॥

श्रीप्रयोजनाधिदेव-प्रणामः ।

श्रीमान् रासरसारंभी वंशीवटतटस्थितः ।
कर्षन् वेणुस्वनैर्गोपीर्गोपीनाथः श्रियेऽस्तु नः ॥१५॥

श्रीतुलसी-प्रणामः ।

वृन्दायै तुलसीदेव्यै प्रियायै केशवस्य च ।
कृष्णभक्तिप्रदे देवि ! सत्यवत्यै नमो नमः ॥१६॥

श्रीराधा-मदनमोहन की जोड़ी के निकट से अन्यत्र जाने के लिये समर्थ नहीं हूँ, भावार्थ—मैं उनको छोड़ नहीं सकता हूँ, तात्पर्य—अनन्य शरणागत हूँ, और मन्दमति हूँ अर्थात् ज्ञान आदि साधन में मेरी प्रवृत्ति नहीं है। मैं तो एकान्त में बैठकर श्रीराधा-मदनमोहन का अनुशीलन करना चाहता हूँ ।।१३।।

परमशोभामय श्रीवृन्दावन में कल्पवृक्ष के नीचे, परमसुन्दर रत्नों के द्वारा बने हुए भवन में, मणिमय सिंहासनपर विराजमान, एवं अपनी अतिशय प्रिय श्रीललिता-विशाखा आदि सखियों के द्वारा प्रतिक्षण जिनकी सेवा होती रहती है; मैं, उन श्रीमती राधिका एवं श्रीमान् गोविन्ददेव का स्मरण करता हूँ ।।१४।।

वे श्रीराधागोपीनाथ हमारी कुशलता के लिये विद्यमान रहें कि, जो राससंबंधी रस का आरंभ करनेवाले हैं, अतएव वंशीवट के मूलदेश में स्थित हैं, अतएव अपनी वंशीध्वनि के द्वारा अनेक गोपियों को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं ।।१५।।

वृन्दा एवं सत्यवती-नामक तुलसीदेवी के लिये मेरा बारंबार प्रणाम है, तथा श्रीकृष्ण की प्रियतमा तुलसीदेवी के लिये मेरा बारंबार प्रणाम है। हे कृष्णभक्ति को देनेवाली तुलसीदेवि ! आपके लिये मेरा बारंबार प्रणाम है ।।१६।।

—※—

श्रीगुरुदेवाय नमः ।

श्रीगुरुदेवाष्टकम् ।

संसारदावानललीढलोक, -त्राणाय कारुण्यघनाघनत्वम् ।
प्राप्तस्य कल्याणगुणार्णवस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥१॥
महाप्रभोः कीर्तननृत्यगीत, -वादित्रमाद्यन्मनसो रसेन ।
रोमाञ्चकम्पाश्रुतरङ्गभाजो, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥२॥
श्रीविग्रहाराधननित्यनाना, -शृङ्गारतन्मन्दिरमार्जनादौ ।
युक्तस्य भक्तांश्च नियुञ्जतोऽपि, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥३॥
चतुर्विधश्रीभगवत्प्रसाद, -स्वाद्वन्नतृप्तान् हरिभक्तसङ्घान् ।
कृत्वैव तृप्तिं भजतः सदैव, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥४॥
श्रीराधिकामाधवयोरपार, -माधुर्यलीलागुणरूपनाम्नाम् ।
प्रतिक्षणाऽऽस्वादनलोलुपस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥५॥

संसाररूप दावानल से सन्तप्त जनमात्र की रक्षा करने के लिये, दया के भाव से बरसालु-मेघ के भाव को प्राप्त होनेवाले, एवं कल्याण-गुणगणार्णवस्वरूप श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।।१।।

महाप्रभु श्रीकृष्णचैतन्यदेव के नामसंकीर्तन, नृत्य, एवं गाने-बजाने से प्रेमोन्मत्त मानसिक-रस के द्वारा उत्पन्न रोमाञ्च, कम्प, अश्रु आदिकों की तरंगों का सेवन करनेवाले श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।।२।।

अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण के श्रीविग्रह का आराधन, एवं नित्यप्रति अनेक प्रकार का शृङ्गार करना, एवं उनके मन्दिर को झाड़ना, बुहारना, धोना आदि नित्यकैङ्कर्य में स्वयं लगे रहनेवाले, तथा अधिकारी भक्तों को पूर्वोक्त सेवाओं में नियुक्त करनेवाले श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।।३।।

श्रीकृष्णभक्तवृन्दों को चर्व्य-चोष्य-लेह्य-पेय इन चारों प्रकार के श्रीभगवत्प्रसादमय सुस्वादु अन्न के द्वारा सदैव परितृप्त करके, स्वयं तृप्त होनेवाले श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।।४।।

अपने इष्टदेव श्रीराधाकृष्ण के अपार माधुर्य, अपार लीलाएँ, अपार गुण, अपार रूप, एवं अनन्त नामावलियों के प्रतिक्षण आस्वादन करने में लालायित रहनेवाले श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।।५।।

निकुञ्जयूनो रतिकेलिसिद्ध्यै, या यालिभिर्युक्तिरपेक्षणीया।
तत्रातिदाक्ष्यादतिवल्लभस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥६॥
साक्षाद्धरित्वेन समस्तशास्त्रै, -रुक्तस्तथा भाव्यत एव सद्भिः।
किन्तु प्रभोर्यः प्रिय एव तस्य, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥७॥
यस्य प्रसादाद् भगवत्प्रसादो, यस्याऽप्रसादान्न गतिः कुतोऽपि।
ध्यायंस्तुवंस्तस्य यशस्त्रिसन्ध्यं, वन्दे गुरोः श्रीचरणारविन्दम् ॥८॥
श्रीमद्गुरोरष्टकमेतदुच्चै, -र्ब्राह्मे मुहूर्ते पठति प्रयत्नात्।
यस्तेन वृन्दावननाथसाक्षात्, सेवैव लभ्या जनुषोऽन्त एव ॥९॥

इति श्रीरूपगोस्वामिविनिर्मित-सत्साहित्य-सारसङ्कलन-सरसहंसेन रसिकवंशावतंसेन श्रीरूपगोस्वामिद्वितीयावतारेण प्राप्तव्य-वृन्दावनचक्रवर्तिना श्रीविश्वनाथचक्रवर्तिना विरचितायां स्तवामृतलहर्यां श्रीगुरुदेवाष्टकं संपूर्णम्।

निकुञ्जविहार-परायण श्रीराधाकृष्णरूप-युवक, युगलजोड़ी की रमणक्रीडा की सिद्धि के लिये, श्रीललिता-विशाखा आदि सखियों के द्वारा जो जो युक्ति अपेक्षित है, उस युक्ति में अनन्त चातुर्य के कारण अपने इष्टदेव के अतिशय प्यारे श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की मैं वन्दना करता हूँ ।।६।।

श्रीगुरुदेव का स्वरूप समस्त शास्त्रों के द्वारा साक्षात् श्रीहरि का स्वरूप ही बतलाया जाता है, तथा सज्जनों के द्वारा अनुभव में भी उसी प्रकार से लाया जाता है; किन्तु जो अपने प्रभु के अतिशय प्यारे हैं, उन्हीं श्रीगुरुदेवके शोभायमान चरणारविन्दकी मैं वन्दना करता हूँ ।।७

जिनकी प्रसन्नता से ही भगवान् की प्रसन्नता उपलब्ध होती है, एवं जिनकी अप्रसन्नता से कहीं भी सद्गति नहीं होती है, उन्हीं श्रीगुरुदेव का तीनों सन्ध्याओं में ध्यान करता हुआ, एवं उनकी यश की स्तुति करता हुआ; मैं, पूर्वोक्त गुणगणविशिष्ट उन्हीं श्रीगुरुदेव के शोभायमान चरणारविन्द की वन्दना करता हूँ ।।८।।

जो व्यक्ति ब्राह्ममुहूर्त (भा० १०।७०।४; "रात्रेश्च पश्चिमे यामे मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते" रात के पिछले पहर के अन्तिम दो दण्ड अर्थात् सूर्योदय से ४८ मिनट पहले) में इस श्रीगुरुदेवाष्टक को प्रयत्नपूर्वक ऊँचेस्वर सेताललयपूर्वक पढ़ता है, वह व्यक्ति अपने देहावसान के बाद वृन्दावनाधीश्वर की साक्षात् सेवा को प्राप्त कर लेगा ।।९।।

—*—

श्रीप्रभुपादाय नमः ।

श्रीप्रभुपादस्मरणस्तोत्रम् ।

समुद्भूतिर्भक्तेरपि खलु विनोदात् समभवद्
यदीया संपूज्या सुमतिरिव माता भगवती ।
स्वयं यः सौन्दर्याश्रिततनुरभूद् वैष्णववरः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१॥

जगन्नाथक्षेत्रे जननसमये यस्य निटिले
बभावूर्ध्वं पुण्ड्रं विमलमुपवीतं च वपुषि ।
प्रसादान्ता संज्ञा भवति विमला यस्य च पुरा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥२॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिनका प्रादुर्भाव श्रीभक्तिमहारानी के विलास से (विक्रमाब्द १९३०, माघ कृष्णा पंचमी; २५ माघ १२८० बंगाब्द; ६ फरवरी १८७४ ई० स०, शुक्रवार में) हुआ था, अथवा श्रीसच्चिदानन्द भक्तिविनोद ठाकुर से हुआ था, एवं जिनकी परम-पूजनीया माता, सुन्दर बुद्धिवाली ध्रुव की माता सुनीतिदेवी की तरह श्रीभगवतीदेवी थीं,तथा जो श्रीप्रभुपाद (ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद) स्वयं सौन्दर्य-द्वारा पूजित श्रीविग्रहवाले, अर्थात् परममनोहर शरीरवाले परम-वैष्णव थे ।।१।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जगन्नाथपुरी में जिनके प्रादुर्भाव के समय जिनके मस्तकपर ऊर्ध्वपुण्ड्र सुशोभित था, एवं जिनके श्रीविग्रह में निर्मल यज्ञोपवीत का चिह्न शोभा पा रहा था, तथा पहले अर्थात् बाल्यावस्था में जिनका नाम श्रीविमलाप्रसाद था, कारण श्रीजगन्नाथदेव की पराशक्ति श्रीविमलादेवी के नामानुसार ही इनका नाम श्रीविमला-प्रसाद रखा गया था, तथा जन्म से छः महीने बाद रथयात्रा के समय श्रीजगन्नाथदेव के महाप्रसाद द्वारा ही इनका अन्नप्राशन-संस्कार संपन्न हुआ था ।।२।।

जगन्नाथस्यांघ्र्योर्ग्रहणमनु तत्कण्ठपदतो
गृहीत्वा तन्मालां लघुनिजकराभ्यां शिशुतया ।
शिशुत्वेऽपि स्वीयं सहजमनुरागं गदति यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥३॥

प्रमाणैः शास्त्राणां सदसि वदतिस्माऽल्पवयसि
द्विजेभ्यः श्रेष्ठा भो जगति नितरां वैष्णवजनाः ।
विशुद्धां भक्तिं यः स्वयमवति वक्ति स्म च पुरा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥४॥

द्विजानां भक्तानां भवति च कियान् भेद इति सत्-
सुसिद्धान्तेनाढ्यं रचयति पुरा पुस्तकमपि ।
सदाचाराऽऽचार्याऽऽचरणकथकं ग्रन्थमपि यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥५॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने रथयात्रा में श्रीजगन्नाथदेव के चरणों का स्पर्श करने के अनन्तर, उनके कण्ठ से बाल्यसुलभ चपलता से, अपने छोटे-छोटे करकमलों के द्वारा, उनकी प्रसादीमाला ग्रहण करके, बाल्यावस्था में भी अपने स्वाभाविक भगवदनुराग को स्पष्ट ही कह दिया था, यह उनकी शिशुरुचि-परीक्षा की विशेषता थी ।।३।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने थोड़ी-सी अवस्था में ही विद्वानों की सभा में, शास्त्रों के प्रमाणों के द्वारा यह कह दिया था कि "हे सभासदो ! देखो, भक्तिविहीन सर्वगुणसंपन्न ब्राह्मणों की अपेक्षा संसार में वैष्णवजन ही सर्वश्रेष्ठ हैं । प्रमाणं यथा—"विप्राद् द्विषड्गुणयुता-दरविन्दनाभपादारविन्दविमुखाच्छ्वपचं वरिष्ठम्······ भा० ७।९।१०" इत्यादि, एवं जो अन्याभिलाषिताशून्य, ज्ञान-कर्म से अनावृत, अनुकूलतापूर्वक श्रीकृष्ण का अनुशीलनरूप विशुद्ध भक्ति की स्वयं रक्षा करते थे, तथा उसी भक्ति का प्रवचन करते थे ।।४।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने "ब्राह्मणों का एवं विशुद्धभक्तों का पारस्परिक कितना भेद है ?" इस प्रकार के सुन्दर सिद्धान्त से युक्त "ब्राह्मण-वैष्णव तारतम्य"—नामक ग्रन्थ की रचना की थी; तथा सदाचार, आचार्य और उनके आचरण को बतलानेवाला "आचार

निजाचार्यत्वं यः प्रथयति सदाचारनिवहैः
शचीसूनोस्तुल्यं मधुरहरिसंकीर्तनमपि ।
गुरोः सेवां मुख्यां निगदति पुरा कृष्णगतये
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥६॥

महामंत्रस्याऽनुष्ठितिपरिसमाप्तौ सितहरिः
प्रचारार्थं यस्मै स्वयमुपदिदेश स्वपनके ।
तथा शक्तेः संचारणमपि ददौ यस्य वपुषि
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥७॥

विलुप्ता तीर्थानां पुनरपि च कीर्तिः प्रकटिता
प्रसिद्धक्षेत्राणां भ्रमणमपि येन प्रकटितम् ।
हरेर्धाम्नां नाम्नां सवसकलमाहात्म्यमपि च
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥८॥

एवं आचार्य"—नामक ग्रन्थ भी बनाया था, अतः स्वयं आचरणशील होने के कारण आपकी जीवनयात्रा परमआदर्शस्वरूप थी ।।५।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जो अपने आचार्यत्व को सदाचारसमुदाय के द्वारा विस्तारित करते थे, एवं जो परममधुर श्रीहरिनामसंकीर्तन को शचीनन्दन श्रीचैतन्यदेव की तरह प्रकाशित करते थे, तथा सरलतापूर्वक श्रीकृष्ण की प्राप्ति के लिये अपने श्रीगुरुदेव की सेवा को ही मुख्य साधन बतलाते थे ।।६।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिनके सौ-करोड़ "हरे कृष्ण" इत्यादि महामंत्र के जपरूप अनुष्ठान की समाप्ति के बाद होनेवाले स्वप्न में, श्रीगौरहरि ने परिकरसहित प्रगट होकर, जिनके लिये श्रीहरिनाम-प्रचारार्थ स्वयं उपदेश दिया था कि "तुम श्रीहरिनाम का प्रचार करो, हम तुम्हें साथ देंगे, तुम अपने को अकेला समझकर उत्साहरहित न होना, हमारा पूर्ण सहयोग तुम्हें सदैव मिलता रहेगा" इत्यादि, तथा जिनके श्रीविग्रह में भक्ति के प्रचार की शक्ति का संचार भी श्रीगौरहरि ने दे दिया था ।।७।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने तीर्थों की विलुप्तप्राय कीर्ति फिर से प्रगट कर दिखाई, एवं व्रजमण्डल-नवद्वीपधाम आदि प्रसिद्ध क्षेत्रों की

तथा जन्माद्यस्यप्रथमतरपद्यस्य मधुरा
कृता त्रिंशद्व्याख्या विवृतिरपरा भागवतभाक् ।
तथा ज्योतिर्वित्सु प्रथमतमज्योतिर्विदपि यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥९॥

तथा पंचोपास्तेरपि खलु हरेर्भक्तिरधिका
सदा कार्या रूपाऽनुगतिपरलोकैस्तदुदिता ।
इतीमं सिद्धान्तं प्रकटमपि चक्रे जगति यः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१०॥

भुवि भ्रामं भ्रामं परिभवति यो नास्तिकचयं
कथाद्वारा नित्यं सुखयतितरामास्तिकचयम् ।
हरेस्तत्त्वज्ञो यो भवति नितरामेव च पुरा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥११॥

परिक्रमा भी प्रगट कर दिखाई, तथा श्रीहरि के धाम, नाम, एवं समस्त उत्सवों का माहात्म्य भी जिन्होंने स्पष्ट करके दिखला दिया ।।८।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने श्रीमद्भागवत के "जन्माद्यस्य" इत्यादि प्राथमिक श्लोक की तीस प्रकार की व्याख्या की थी, जो परममधुर है, एवं समस्त श्रीमद्भागवत का सेवन करनेवालीं अन्य भी अनेक प्रकार की व्याख्याएँ लिखीं, जो इस प्रकार हैं:—श्रीमद्भागवत के 'अन्वय' का नाम "गौरकिशोरान्वय" है; 'अनुवाद' का नाम "स्वानन्दकुञ्जानुवाद" है; 'तथ्य' का नाम "अनन्तगोपालतथ्य" है; तथा 'विवृति' का नाम "सिन्धुवैभवविवृति" है । तथा जो ज्योतिष-शास्त्र के तत्त्ववेत्ताओं में सर्वश्रेष्ठ ज्योतिषशास्त्र तत्त्ववेत्ता थे ।।९।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने "पंचदेवोपासना की अपेक्षा श्रीहरि की भक्ति ही अधिक श्रेष्ठ है, अतः श्रीरूप गोस्वामी के अनुगामी लोगों को श्रीरूप गोस्वामी के द्वारा 'श्रीभक्तिरसामृतसिन्धुः' में कही गई विशुद्धभक्ति ही सदा करनी चाहिये", इस प्रकार का सिद्धान्त जगत् में प्रगट करके दिखला दिया ।।१०।।

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने समस्त भूमण्डलपर घूम-घूमकर

भुवि भ्रामं भ्रामं श्रुतिशरचयैर्नास्तिकमृगाः
कृताः पापारण्यान्नरकभयदाद् धर्मवनगाः ।
न यत्राऽऽस्ते भीतिः शमनमृगयुत्यक्तशरजा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१२॥

श्रुतीनां पत्री नास्तिकमदविनाशाय लिखिता
तथा भक्तिग्रन्थेष्वपि बहुषु टीका विलिखिताः ।
तथा येन श्रीभागवत-सुविमर्शो विरचितः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१३॥

सदा स्वादं स्वादं सितहरिकथाकीर्तमरसं
प्रियैर्भक्तैः रात्रिन्दिवमपि च यो नैव बुबुधे ।
तथा वै यस्याऽजागरुरखिलशास्त्राणि हृदये
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१४॥

शास्त्रों के वास्तविक सिद्धान्त को बताकर, नास्तिकसमुदाय को पराजित कर दिया, तथा अपनी मधुरकथा के द्वारा आस्तिकसमुदाय को नित्य सुखी वना दिया; अतएव जो सर्वश्रेष्ठ श्रीकृष्णतत्त्ववेत्ता थे, एवं श्रीहरिकथाकीर्तन-परायण रहना ही जिनका दृढव्रत था ॥११॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने भक्ति के मार्ग का अवलम्वन करके, पृथ्वीपर घूम-घूमकर, वेदरूपी-वाणों के समुदाय के द्वारा, नास्तिकरूपी मृगों को नरकसंबंधी यातनाओं का भय देनेवाले, पापरूप—वन से निकाल कर, भागवतधर्मरूपी—वन में विचरण करनेवाला बना दिया कि, जिस भागवतधर्मरूप—वन में, यमराजरूप—व्याध के द्वारा छोड़े हुए बाणों से उत्पन्न हुआ किञ्चित् भी भय नहीं है ॥१२॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिन्होंने नास्तिकों का मद मर्दन करने के लिये 'प्रतीप प्रियनाथ के प्रश्नों का प्रत्युत्तर'—नामक पत्रिका लिखि, तथा भक्तिसिद्धान्त-प्रतिपादक अनेक ग्रन्थोंपर अनेक प्रकार की टीकाएँ लिखीं, तथा श्रीमद्भागवत के ऊपर अपने सुन्दर विचार प्रगट किये ॥१३॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जो अपने प्यारेभक्तों के साथ श्रीगौरहरि के कथाकीर्तन का सदैव आस्वादन करते करते, रात-दिन के विभाग को

सदों विष्णोःपादप्रतिमपवनो यः समुदितः
स्वरूप-श्रीरूपानुग-विमलसिद्धान्तसरणिः ।
तथा श्रीराधाया दयितदयितः प्रेमजलधिः
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१५॥

हरेश्चैतन्यस्य प्रबलकृपया पूरिततनु-
स्तथा धीराऽधीराश्रित-निरभिमानो भवति यः ।
हरेर्गौराङ्गस्य स्मरणगुणतो जातजडिमा
स आचार्यत्वेन स्फुरतु प्रभुपादो मम पुरः ॥१६॥

स्मृतेः स्तोत्रं चैतत् प्रथितप्रभुपादस्य विमलं
शरीरी यो नित्यं पठति मुदितो भावसहितः ।
गुरौ तस्य प्रीतिर्भवति विमला भावविपुला
तथा श्रीमद्राधारमण-करुणा - भाजनमपि ॥१७॥

भी भूल जाते थे, और जिनके हृदयरूप-सरोवर में संपूर्ण शास्त्ररूप–कमल सदैव खिले रहते थे ॥१४॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जो "ॐ विष्णुपाद" इस उपाधि के समान अथवा श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों के समान सदैव परमपावन कहे जाते हैं, एवं जो श्रीस्वरूप गोस्वामी तथा श्रीरूप गोस्वामी के अनुगत निर्मल सिद्धान्त के मार्गस्वरूप कहे जाते हैं, तथा जो श्रीराधाकृष्ण के परमप्रिय और भगवत्संबंधी प्रेम के समुद्ररूप कहे जाते हैं ॥१५॥

प्रातःस्मरणीय वे श्रीप्रभुपाद मेरे सामने आचार्य के रूप से सदैव स्फूर्ति पाते रहें कि, जिनका श्रीविग्रह, श्रीकृष्ण तथा श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव की प्रबल कृपा से परिपूर्ण रहता था, तथा जो धीर एवं अधीरजनों के द्वारा आश्रित होकर भी निरभिमान विद्यमान रहते थे, और श्रीकृष्ण एवं श्रीगौराङ्गमहाप्रभु के स्मरणरूपी-गुण से निस्तब्ध-प्राय बने रहते थे ॥१६॥

इस प्रकार अनेक गुणविशिष्ट शिष्टवर्य विख्यातकीर्ति, श्रीप्रभुपाद के इस निर्मल स्मृतिस्तोत्र का, जो सज्जन भावपूर्वक हर्षित होकर प्रतिदिन पाठ करेगा, उसकी अपने श्रीगुरुदेव में विमल एवं भावपूर्ण प्रीति हो जायगी, तथा वह पाठक-सज्जन श्रीराधाकृष्ण की अहैतुकी करुणा का पात्र भी बन जायगा । इस स्तोत्र में "शिखरिणी"—नामक छन्द हैं ॥१७॥

श्रीभक्तिसिद्धान्तसरस्वतीति, -नाम्नां हरेर्नामप्रचारकाणाम् ।
स्तोत्रं स्मृतेः संलिखति स्म भक्त्या, महाकविः श्रीवनमालिदासः ॥१८

इति श्रीगोपालचम्पूटीकाकारेण-महाकविना-श्रीवनमालिदासशास्त्रिणा-विरचितं श्रीप्रभुपाद (ॐ विष्णुपाद-परमहंस-१०८श्री-श्रीमद्भक्तिसिद्धान्तसरस्वती-गोस्वामि-प्रभुपाद)-स्मरणस्तोत्रं संपूर्णम् ।

—*—

श्रीमते परमगुरुदेवाय नमः ।

श्रीपरमगुरुदेवाष्टकम् ।

श्रीगौरधामाश्रितशुद्धभक्तं, रूपानुगाद्यं निरवद्यरूपम् ।
वैराग्यधर्मोज्ज्वलविग्रहं तं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ॥१॥

असत्प्रसङ्गं परिहाय नित्यं, गौराङ्गसेवाव्रतमग्नचित्तम् ।
गौड-व्रजाभेद-विशिष्टप्रज्ञं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ॥२॥

श्रीधाममायापुरदिव्य-गूढ, -माहात्म्यगीतोन्मुखरं वरेण्यम् ।
धन्यं महाभागवताग्रगण्यं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ॥३॥

श्रीहरिनाम-प्रचारक ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्-भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद-नामक महानुभाव का यह स्मरणस्तोत्र श्रीगोपालचम्पू—टीकाकार महाकवि श्रीवनमालिदास शास्त्री ने अपनी आन्तरिक भक्तिपूर्वक लिखा है ॥१८॥

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जो श्रीगौरधाम का आश्रय करनेवाले विशुद्धभक्त थे, श्रीरूप गोस्वामी के अनुगामियों में प्रधान थे, एवं जिनका रूप प्रशंसनीय था, तथा जिनका श्रीविग्रह उत्कट वैराग्यधर्म से समुज्ज्वल था ॥१॥

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जिनका चित्त असत्प्रसङ्गों को छोड़कर, नित्य श्रीगौराङ्गदेव की सेवारूप-व्रत में ही निमग्न रहता था, एवं जो गौडमण्डल एवं व्रजमण्डल में विशिष्ट अभेदबुद्धि से युक्त थे ॥२॥

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जो श्रीधाम-मायापुर (श्रीगौराङ्गमहाप्रभु की जन्मभूमि) के दिव्य एवं गूढमाहात्म्य के गायन में विशिष्ट वक्ता थे, अतः भक्तों के

पूतावधूतव्रजशीर्षरत्नं, श्रीराधिकाकृष्णनिगूढभक्तम् ।
सदा व्रजावेश-सरागचेष्टं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ।।४।।
शोकास्पदातीतप्रभावरम्यं, मूढैरवेद्यं प्रणताभिगम्यम् ।
नित्यानुभूताच्युत-सद्विलासं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ।।५।।
कापट्यधर्मान्वित-चण्डदण्ड, -विधायकं सज्जनसङ्गरङ्गम् ।
श्रीकृष्णचैतन्यपदाब्जभृंगं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ।।६।।
दामोदरोत्थानदिने प्रधाने, क्षेत्रे पवित्रे कुलियाभिधाने ।
प्रपञ्चलीला-परिहारवन्तं, वन्दे प्रभुं गौरकिशोरसंज्ञम् ।।७।।
तव हि "दयितदासे" सत्यसूर्यप्रकाशे
जगति दुरितनाशे प्रोद्यते चिद्विलासे ।
वयमनुगतभृत्याः पादपद्मं प्रपन्ना
अनुदिनमनुकंपां प्रार्थयामो नगण्याः ।।८।।

इति श्रीपरमगुरुदेवाष्टकं संपूर्णम् ।

वर्णन करने योग्य थे, तथा जो परमप्रशंसनीय एवं भगवद्भक्तों के अग्रगण्य थे ।।३।।

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जो परमपवित्र अवधूतकुल के शिरोमणि थे, श्रीराधा-कृष्ण के गुप्तभक्त थे, तथा सदैव व्रज के आवेश के कारण रागानुगा-भक्ति की चेष्टा में ही लगे रहते थे ।।४।।

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जो लोकोत्तर प्रभाव से रमणीय थे, अतएव मूढजन जिनके स्वरूप को नहीं जान पाते थे, एवं जो शरणागतभक्तों के लिये सर्वतोभाव से प्राप्य थे, तथा जो श्रीकृष्ण के सुन्दर रासविलास आदि का नित्य अनुभव करते रहते थे ।।५।।

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जो कपटमय-धर्म से युक्त व्यक्तियों को प्रचण्ड दण्ड देनेवाले थे, एवं सज्जनों के सङ्ग में ही रँगे रहते थे, तथा श्रीकृष्ण-चैतन्यपदारविन्दों के अनुरक्त–भृङ्ग थे ।।६।।

मैं, परमप्रसिद्ध उन श्रीगौरकिशोर-नामक प्रभु की वन्दना करता हूँ कि, जिन्होंने श्रीहरि की देवोत्थानी-एकादशी के दिन (३० कार्तिक १३२२ बङ्गाब्द, १६ नवम्बर १९१५ ई० स०) कुलिया (कोलद्वीप अथवा वर्तमान शहर नवद्वीप)–नामक प्रधान एवं पवित्रक्षेत्र में अपनी प्रपञ्चलीला का परित्याग किया था ।।७।।

श्रीषड्गोस्वामिभ्यो नमः ।

श्रीषड्गोस्वाम्यष्टकम् ।

कृष्णोत्कीर्तन-गान-नर्तन-परौ प्रेमामृताम्भोनिधी
धीराऽधीरजन-प्रियौ प्रियकरौ निर्मत्सरौ पूजितौ ।
श्रीचैतन्य-कृपाभरौ भुवि भुवो भारावहन्तारकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥१॥

नानाशास्त्र-विचारणैक-निपुणौ सद्धर्म-संस्थापकौ
लोकानां हितकारिणौ त्रिभुवने मान्यौ शरण्याकरौ ।
राधाकृष्ण-पदारविन्द-भजनानन्देन मत्तालिकौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥२॥

हे परमगुरुदेव ! हम सब भक्त तो यद्यपि किसी गिनती में आने लायक नहीं हैं, तो भी आपके प्रधानशिष्य उन श्रीवार्षभानवी-दयितदास (ॐ विष्णुपाद परमहंस १०८श्री श्रीमद्भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी प्रभुपाद) के अनुगत सेवक हैं कि, जो श्रीप्रभुपाद सत्यवस्तु के प्रकाश के लिये सूर्य के समान हैं, एवं संसार में जो पापनाशक एवं चिद्विलास में ही तत्पर हैं; अतः आपके चरणारविन्दों के शरणागत हैं; प्रतिदिन आपकी अनुकम्पा की ही प्रार्थना करते रहते हैं ।।८।।

मैं, श्रीरूप, सनातन, रघुनाथभट्ट, रघुनाथदास, श्रीजीव एवं गोपालभट्ट नामक इन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो श्रीकृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीलाओं के कीर्तन, गायन, एवं नृत्यपरायण थे; प्रेमामृत के समुद्रस्वरूप थे, विद्वान् एवं अविद्वान्रूप सर्वसाधारण जनमात्र के प्रिय थे, तथा सभी के प्रियकार्य करनेवाले थे, मात्सर्यरहित एवं सर्वलोक पूजित थे, श्रीचैतन्यदेव की अतिशय कृपा से युक्त थे, भूतल में भक्ति का विस्तार करके भूमि का भार उतारनेवाले थे ।।१।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो अनेक शास्त्रों के गूढतात्पर्य विचार करने में परमनिपुण थे, भक्तिरूप-परमधर्म के संस्थापक थे, जनमात्र के परमहितैषी थे, तीनों लोकों में माननीय थे, शरणागतवत्सल थे, एवं श्रीराधाकृष्ण के पदारविन्द के भजनरूप आनन्द से मत्तमधुप के समान थे ।।२।।

श्रीगौराङ्ग–गुणानुवर्णन-विधौ श्रद्धा–समृद्धयन्वितौ
पापोत्ताप–निकृन्तनौ तनुभृतां गोविन्द–गानामृतैः ।
आनन्दाम्बुधि–वर्धनैक–निपुणौ कैवल्य–निस्तारकौ
वन्दे रूप–सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव–गोपालकौ ॥३॥

त्यक्त्वा तूर्णमशेष-मण्डलपति-श्रेणीं सदा तुच्छवत्
भूत्वा दीन-गणेशकौ करुणया कौपीन-कन्थाश्रितौ ।
गोपीभाव–रसामृताब्धि-लहरी–कल्लोल–मग्नौ मुहु-
र्वन्दे रूप–सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव–गोपालकौ ॥४॥

कूजत्–कोकिल–हंस–सारस–गणाकीर्णे मयूराकुले
नानारत्न–निबद्ध–मूल–विटप–श्रीयुक्त–वृन्दावने ।
राधाकृष्णमहर्निशं प्रभजतौ जीवार्थदौ यौ मुदा
वन्दे रूप–सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव–गोपालकौ ॥५॥

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो श्रीगौराङ्गदेव के गुणानुवाद की विधि में श्रद्धारूप-सम्पत्ति से युक्त थे, श्रीकृष्ण के गुणगानरूप-अमृत की वृष्टि के द्वारा प्राणीमात्र के पाप-ताप को दूर करनेवाले थे, तथा आनन्दरूप-समुद्र को बढ़ाने में परमकुशल थे, भक्ति का रहस्य समझा कर, मुक्ति की भी मुक्ति करनेवाले थे ।।३।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की बारंबार वन्दना करता हूँ कि, जो समस्त मण्डलों के आधिपत्य की श्रेणी को, लोकोत्तर वैराग्य से शीघ्र ही तुच्छ की तरह सदा के लिये छोड़कर, कृपापूर्वक अतिशय दीन होकर, कौपीन एवं कंथा (गूदड़ी) को धारण करनेवाले थे, तथा गोपीभावरूप रसामृतसागर की तरंगों में आनन्दपूर्वक निमग्न रहते थे ।।४।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो कलरव करनेवाले कोकिल-हंस-सारस आदि पक्षिओं की श्रेणी से व्याप्त, एवं मयूरों के केकारव से आकुल, तथा अनेक प्रकार के रत्नों से निबद्ध मूलवाले वृक्षों के द्वारा शोभायमान श्रीवृन्दावन में, रातदिन श्रीराधाकृष्ण का भजन करते रहते थे, तथा जीवमात्र के लिये हर्षपूर्वक भक्तिरूप परमपुरुषार्थ देनेवाले थे ।।५।।

संख्यापूर्वक-नामगाननतिभिः कालावसानीकृतौ
निद्राहार-विहारकादि-विजितौ चात्यन्त-दीनौ च यौ ।
राधाकृष्ण - गुणस्मृतेर्मधुरिमानन्देन सम्मोहितौ
वन्दे रूप - सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥६॥

राधाकुण्ड-तटे कलिन्द-तनया-तीरे च वंशीवटे
प्रेमोन्माद-वशादशेष-दशया ग्रस्तौ प्रमत्तौ सदा ।
गायन्तौ च कदा हरेर्गुणवरं भावाभिभूतौ मुदा
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥७॥

हे राधे ! व्रजदेविके ! च ललिते ! हे नन्दसूनो ! कुतः
श्रीगोवर्धन-कल्पपादप-तले कालिन्दिवन्ये कुतः ।
घोषन्ताविति सर्वतो व्रजपुरे खेदैर्महाविह्वलौ
वन्दे रूप-सनातनौ रघुयुगौ श्रीजीव-गोपालकौ ॥८॥

इति श्रीगौडीयवैष्णवसद्साहित्यसंरक्षकेन - विशुद्धभक्तिप्रचारकेण-
श्री-श्रीनिवासाचार्येण विरचितं श्रीषड्गोस्वामिगुणलेशसूचकाष्टकं
संपूर्णम् ।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो अपने समय को संख्यापूर्वक नाम-जाप, नामसंकीर्तन, एवं संख्यापूर्वक प्रणाम आदि के द्वारा व्यतीत करते थे; जिन्होंने निद्रा-आहार-विहार आदिपर विजय पा ली थी, एवं जो अपने को अत्यन्त दीन मानते थे, तथा श्रीराधाकृष्ण के गुणों की स्मृति से प्राप्त माधुर्यमय आनन्द के द्वारा विमुग्ध रहते थे ।।६।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो प्रेमोन्माद के वशीभूत होकर, विरह की समस्त दशाओं के द्वारा ग्रस्त होकर, प्रमादी की भाँति, कभी राधाकुण्ड के तटपर, कभी यमुना के तटपर, एवं कभी वंशीवटपर सदैव घूमते रहते थे; और कभी-कभी श्रीहरि के गुणश्रेष्ठों को हर्षपूर्वक गाते हुए भाव में विभोर रहते थे ।।७।।

मैं, श्रीरूप-सनातनादि उन छः गोस्वामियों की वन्दना करता हूँ कि, जो "हे व्रज की पूजनीय देवि ! राधिके ! आप कहाँ हो ? हे ललिते ! आप कहाँ हो ? हे व्रजराजकुमार ! आप कहाँ हो ?

श्रीनित्यानन्दचन्द्राय नमः ।

श्रीनित्यानन्दाष्टकम् ।

शरच्चन्द्र-भ्रान्तिं स्फुरदमल-कान्तिं गजगतिं
हरि-प्रेमोन्मत्तं धृत-परम-सत्त्वं स्मितमुखम् ।
सदा घूर्णन्नेत्रं कर-कलित-वेत्रं कलिभिदं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥१॥

रसानामागारं स्वजनगण-सर्वस्वमतुलं
तदीयैक-प्राणप्रतिम-वसुधा-जाह्नव-पतिम् ।
सदा प्रेमोन्मादं परमविदितं मन्द-मनसां
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥२॥

श्रीगोवर्धन के कल्पवृक्षों के नीचे बैठे हो, अथवा कालिन्दी के कमनीय कूलपर विराजमान वनसमूह में भ्रमण कर रहे हो क्या ?" इस प्रकार पुकारते हुए विरहजनित पीडाओं से महान् विह्वल होकर, व्रजमण्डल में चारों ओर भ्रमण करते रहते थे। इस अष्टक में "शार्दूलविक्रीडित" नामक छन्द हैं ।।८।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, जिनका मुखमण्डल शरत्-कालीन चन्द्रमा की शोभा को तिरस्कृत कर देता है, जिनकी निर्मलकान्ति स्फूर्ति पा रही है, जिनकी गति मत्तगजेन्द्र के समान है, जो श्रीकृष्णप्रेम में सदैव उन्मत्त बने रहते हैं, जो विशुद्ध सत्त्वमय श्रीविग्रह को धारण करनेवाले हैं, जिनका श्रीमुख मन्दमुस्क्यान से युक्त है, एवं जिनके दोनों नेत्र श्रीहरिप्रेम से सदा घूमते रहते हैं, जिनके हस्तकमल में वेत्र शोभा पा रहा है, और जो नामसंकीर्तन के द्वारा कलिकाल का भेदन करनेवाले हैं ।।१।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, जो सभी रसों के आधार हैं, अपने भक्तजनों के सर्वस्व हैं, अनुपमेय हैं; अपने प्राणों के समान प्रियतमा वसुधा एवं जाह्नवादेवी के पति हैं, श्रीकृष्णप्रेम में जो सदैव उन्मत्त बने रहते हैं, एवं जो केवल मन्दबुद्धिवाले व्यक्तियों के द्वारा अज्ञात हैं ।।२।।

शचीसूनु-प्रेष्ठं निखिल-जगदिष्टं सुखमयं
कलौ मज्जज्जीवोद्धरण-करणोद्दाम-करुणम् ।
हरेराख्यानाद्वा भव-जलधि-गर्वोन्नति-हरं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥३॥

अये भ्रातर्नृणां कलि-कलुषिणां किन्नु भविता
तथा प्रायश्चित्तं रचय यदनायासत इमे ।
व्रजन्ति त्वामित्थं सह भगवता मंत्रयति यो
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥४॥

यथेष्टं रे भ्रातः! कुरु हरिहरि-ध्वानमनिशं
ततो वः संसाराम्बुधि-तरण-दायो मयि लगेत् ।
इदं बाहु-स्फोटैरटति रटयन् यः प्रतिगृहं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥५॥

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, श्रीशचीनन्दन के अतिशय प्यारे हैं, समस्त जगत् के इष्ट हैं, सुखमय स्वरूप हैं, कलियुग में डूबते हुए जीवों का उद्धार करने के लिये अपार करुणा से युक्त हैं, और श्रीहरिनाम-संकीर्तन के द्वारा संसार-सागर के अहंकार की उन्नति को हरनेवाले हैं ।।३।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, एवं भगवान् श्रीकृष्ण-चैतन्यदेव के साथ इस प्रकार का विचार करते रहते हैं कि, "हे भैया गौराङ्ग ! कलिकाल से कलुषित जीवों की क्या गति होगी, तथा कौनसा प्रायश्चित्त होगा ? उसकी रचना कीजिये कि, जिससे ये कलिकाल के जीव अनायास ही आपको प्राप्त कर लें" ।।४।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप-वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, तथा जो गौड़देश में प्रत्येक घर के दरवाजेपर अपनी भुजाओं को फैलाकर, "हे भैयाओ ! तुम सब मिलकर स्वेच्छापूर्वक निरन्तर श्रीहरिनाम की ध्वनि करते रहो, ऐसा करने से तुम सबका संसार-सागर से तरने का 'कर' मेरे ऊपर लग जायगा" इस प्रकार उच्चारण करते हुए घूमते रहते हैं ।।५।।

बलात् संसाराम्भोनिधि-हरण-कुम्भोद्भवमहो
सतां श्रेयः-सिन्धून्नति-कुमुद-बन्धुं समुदितम् ।
खलश्रेणी-स्फूर्जत्तिमिर-हर-सूर्य-प्रभमहं
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥६॥

नटन्तं गायन्तं हरिमनुवदन्तं पथि पथि
व्रजन्तं पश्यन्तं स्वमपि न दयन्तं जनगणम् ।
प्रकुर्वन्तं सन्तं सकरुण-दृगन्तं प्रकलनाद्
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥७॥

सुबिभ्राणं भ्रातुः कर-सरसिजं कोमलतरं
मिथो वक्त्रालोकोच्छलित-परमानन्दहृदयम् ।
भ्रमन्तं माधुर्यैरहह ! मदयन्तं पुरजनान्
भजे नित्यानन्दं भजन-तरु-कन्दं निरवधि ॥८॥

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप–वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, एवं जो हठपूर्वक संसार-सागर का शोषण करने के लिये अगस्त्यस्वरूप हैं, तथा सज्जनों के कल्याणरूप–समुद्र की उन्नति के लिये प्रगट पूर्णचन्द्रस्वरूप हैं, और खलश्रेणी के स्फूर्ति पाते हुए अज्ञानरूपी-अन्धकार को हरने के लिये सूर्यस्वरूप हैं ।।६।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप–वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, एवं जो गौड़देश के प्रत्येक मार्ग में नाचते गाते "हरि बोल", "हरि बोल" की ध्वनि करते हुए भ्रमण करते रहते हैं, तथा अपने ऊपर दया न करनेवाले जनसमुदाय को भी प्रेमपूर्वक देखकर, करुणायुक्त कटाक्षवाले बनाते रहते हैं ।।७।।

मैं, उन श्रीनित्यानन्द प्रभु का निरन्तर भजन करता हूँ कि, जो श्रीकृष्णभक्तिरूप–वृक्ष के मूलस्वरूप हैं, तथा जो अपने भैया श्रीगौराङ्गमहाप्रभु के परमकोमल करकमल को धारण करनेवाले हैं, तथा परस्पर श्रीमुख के दर्शन से जिनके हृदय का परमानन्द उछल रहा है, और जो अपने माधुर्य से पुरवासीजनों को हर्षित करते हुए भ्रमण करते रहते हैं ।।८।।

रसानामाधारं रसिक - वर - सद्वैष्णव - धनं
रसागारं सारं पतित-तततारं स्मरणतः ।
परं नित्यानन्दाष्टकमिदमपूर्वं पठति य-
स्तदंघ्रिद्वन्द्वाब्जं स्फुरतु नितरां तस्य हृदये ॥८॥

इति श्रीचैतन्यलीलाव्यासेन श्रीचैतन्यभागवतकारेण
श्रीवृन्दावनदासठक्कुरमहाशयेन विरचितं
श्रीनित्यानन्दाष्टकं संपूर्णम् ।

—*—

श्रीमते अद्वैताचार्याय नमः ।

श्रीअद्वैताष्टकम् ।

गङ्गातीरे तत्पयोभिस्तुलस्याः, पत्रैः पुष्पैः प्रेमहुङ्कार-घोषैः ।
प्राकट्यार्थं गौरमाराधयद् यः, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥१॥

श्रीनित्यानन्द प्रभु के इस अपूर्व अष्टक का जो व्यक्ति प्रेमपूर्वक पाठ करता है, उसके हृदय में श्रीनित्यानन्द प्रभु के दोनों चरणकमल अत्यन्त स्फूर्ति पाते रहें, यह अष्टककार का आशीर्वाद है; क्योंकि यह श्रीनित्यानन्दाष्टक रसों का आधार है, रसिकवर-वैष्णवश्रेष्ठों का धनस्वरूप है, भक्तों के लिये भक्तिरसों का सारस्वरूप आगार है । इस अष्टक में "शिखरिणी"—नामक छन्द हैं ॥८॥

जिनकी लोकोत्तर प्रार्थना से श्रीचैतन्यमहाप्रभु का अवतार हुआ, एवं अड़तालीस वर्ष लीला करने के बाद, जिनके ईशारे से ही महाप्रभु अन्तर्हित हुए, उन्हीं श्रीअद्वैताचार्य की प्रार्थना करते हुए श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य, भक्तमण्डलीमें विराजमान श्रीअद्वैताचार्य के सामने ही कहते हैं कि—

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की शरण में जाता हूँ कि, जिन्होंने श्रीगौराङ्गदेव के प्राकट्य के लिये गङ्गा के तीरपर, गङ्गाजल-तुलसीदल-पुष्प एवं प्रेमभरे हुंकारमय शब्दों के द्वारा श्रीकृष्णाभिन्नतनु श्रीगौराङ्गदेव की आराधना की थी ॥१॥

यद्धुङ्कारैः प्रेमसिन्धोर्विकारै, -राकृष्टः सन् गौर-गोलोकनाथः ।
आविर्भूतः श्रीनवद्वीप-मध्ये, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥२॥

ब्रह्मादीनां दुर्लभप्रेमपूरै, -रादीनं यः प्लावयामास लोकम् ।
आविर्भाव्य श्रीलचैतन्यचन्द्रं, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥३॥

श्रीचैतन्यः सर्वशक्तिप्रपूर्णो, यस्यैवाज्ञामात्रतोऽन्तर्दधेऽपि ।
दुर्विज्ञेयं यस्य कारुण्यकृत्यं, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥४॥

सृष्टिस्थित्यन्तं विधातुं प्रवृत्ताः, यस्यांशांशाः ब्रह्मविष्ण्वीश्वराख्याः ।
येनाभिन्नं तं महाविष्णुरूपं, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥५॥

कस्मिंश्चिद् यः श्रूयते चाश्रयत्वात्, शंभोरित्थं शांभवन्नाम धाम ।
सर्वाराध्यं भक्तिमात्रैक-साध्यं, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥६॥

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की शरणमें जाता हूँ कि, प्रेमसिन्धु के विकारस्वरूप जिनके हुंकारों के द्वारा आकृष्ट होकर, गौराङ्ग रूपवाले गोलोकनाथ श्रीकृष्ण, नवद्वीपान्तर्गत श्रीअन्तर्दीप "श्रीमायापुर" में प्रगट हुए थे ।।२।।

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की शरण में जाता हूँ कि, जिन्होंने अपने लोकोत्तर प्रेम के द्वारा श्रीचैतन्यचन्द्र को प्रगट करके, ब्रह्मादि देवताओं के लिये भी दुर्लभ प्रेमप्रवाहों के द्वारा, दीनजनपर्यन्त सभी लोगों को आप्लावित कर दिया ।।३।।

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की आराधना करता हूँ कि, सर्वशक्ति-परिपूर्ण श्रीकृष्णचैतन्यदेव भी जिनकी आज्ञामात्र से अन्तर्हित हो गये, अतः जिनकी अकारणकरुणा का कार्य साधारणजनों के लिये दुर्ज्ञेय है ।।४।।

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की आराधना करता हूँ कि, संसार की उत्पत्ति, रक्षा, एवं लय करने के लिये प्रवृत्त हुए, ब्रह्मा-विष्णु-शिव-नामक देव भी जिनके अंशोंके अंश हैं, वे ही महाविष्णुरूप जिनसे अभिन्न कहे जाते हैं ।।५।।

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की शरण में जाता हूँ कि, जो किसी शास्त्र में शङ्कर के आश्रय होने के नाते, शङ्कर-नामक तेज कहे जाते हैं, एवं जो सभीजनों के आराध्य हैं, तथा केवल भक्तिमात्र से साध्य हैं ।।६।।

सीता-नाम्नी प्रेयसी प्रेमपूर्णा, पुत्रो यस्याप्यच्युतानन्द-नामा ।
श्रीचैतन्य-प्रेमपूर-प्रपूर्णः, श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥७॥

नित्यानन्दाद्वैततोऽद्वैत-नामा
भक्त्याख्यानाद् यः सदाचार्य-नामा ।
शश्वच्चेतः-सञ्चरद्गौरधामा
श्रीलाद्वैताचार्यमेतं प्रपद्ये ॥८॥

प्रातः प्रीतः प्रत्यहं संपठेद् यः
सीतानाथस्याष्टकं शुद्ध-बुद्धिः ।
सोऽयं सम्यक् तस्य पादारविन्दे
विन्दन् भक्तिं तत्-प्रियत्वं प्रयाति ॥९॥

इति श्रीषड्दर्शनकानन-पञ्चाननेन लब्धमहाप्रभु-षड्भुजदर्शनेन महाप्रभुकृपयैव मायावादपराङ्मुखेन तत एव ज्ञातभक्तिसिद्धान्तेन विचक्षण-सार्वभौमेन श्रीवासुदेवसार्वभौमभट्टाचार्येण विरचितं श्रीअद्वैताष्टकं संपूर्णम् ।

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की शरण में जाता हूँ कि, जिनकी सीता-नामवाली प्रियतमा पत्नी, प्रभु के प्रेम से परिपूर्ण हैं, एवं अच्युतानन्द-नामवाला जिनका पुत्र भी, श्रीचैतन्यदेव के प्रेमप्रवाह से परिपूर्ण है ।।७।।

मैं, इन श्रीमान् अद्वैताचार्य की शरण में जाता हूँ कि, श्रीनित्यानन्दप्रभु से अभिन्न होने के कारण ही जिनका नाम अद्वैताचार्य है, एवं भक्ति का विशिष्ट व्याख्यान करने के कारण जो सदाचार्य के नाम से कहे जाते हैं, तथा श्रीगौराङ्गमहाप्रभु का प्रभाव जिनके चित्तप्राङ्गण में निरन्तर विचरण करता रहता है ।।८।।

शुद्धबुद्धिवाला जो व्यक्ति, सीतानाथ श्रीअद्वैताचार्य के इस अष्टक का प्रतिदिन प्रातःकाल प्रसन्नतापूर्वक पाठ करता है, वह व्यक्ति श्रीअद्वैताचार्य के चरणारविन्द में अच्छी प्रकार से भक्ति का लाभ करता हुआ, उनकी प्रियता को प्राप्त कर लेता है। इस अष्टक में "शालिनी"—नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

श्रीगदाधरपंडिताय नमः ।

श्रीगदाधराष्टकम् ।

स्वभक्तियोग-लासिनं सदा व्रजे विहारिणं
हरि-प्रिया-गणाग्रगं शचीसुत-प्रियेश्वरम् ।
सराध-कृष्णसेवन-प्रकाशकं महाशयं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥१॥

नवोज्ज्वलादि-भावना-विधान-कर्म-पारगं
विचित्र-गौरभक्तिसिन्धु-रङ्गभङ्ग-लासिनम् ।
सुराग-मार्गदर्शकं व्रजादि-वास-दायकं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥२॥

शचीसुतांघ्रिसारभक्तवृन्द-वन्द्य-गौरवं
गौरभाव-चित्तपद्म-मध्य-कृष्ण-वल्लभम् ।
मुकुन्द-गौररूपिणं स्वभाव-धर्म-दायकं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥३॥

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जो अपने भक्तियोग से ही प्रसन्न या शोभायमान रहते हैं, सदा व्रज में ही विहार करनेवाले हैं, श्रीराधिका के परिकरगण के अग्रगण्य हैं, श्रीशचीनन्दन के विशिष्टप्रिय हैं, श्रीराधिका के सहित श्रीकृष्ण की सेवा के प्रकाशक हैं, एवं जिनका आन्तरिक अभिप्राय महान् है ।।१।।

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जो शृङ्गार आदि नवरसों की भावना के विधायक कर्म में पारङ्गत हैं, एवं श्रीगौराङ्गदेव की भक्तिरूप विचित्र सिन्धु के रङ्गमय तरङ्गों में विलास करनेवाले हैं, सुन्दर रागानुगा भक्तिमार्ग के प्रदर्शक हैं, एवं व्रज आदि में निवास के देनेवाले हैं ।।२।।

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जिनका गौरव श्रीमन्महाप्रभु के श्रीचरणों के श्रेष्ठभक्त-वृन्दों के भी वन्दनीय है, एवं गौरभाव से युक्त जिनके चित्तरूप-कमल में श्रीराधिका विराजती रहती हैं, तथा श्रीकृष्ण एवं श्रीकृष्णचैतन्यदेव के निरूपण करनेवाले हैं, और अपने आन्तरिकभाव के धर्म को देनेवाले हैं ।।३।।

निकुञ्ज-सेवनादिक-प्रकाशनैक-कारणं
सदा सखीरति-प्रदं महारस-स्वरूपकम् ।
सदाश्रितांघ्रि-पंकजं शरीरि-सद्गुरुं वरं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥४॥

महाप्रभोर्महारस-प्रकाशनांकुरं प्रियं
सदा महारसांकुर-प्रकाशनादि-वासनम् ।
महाप्रभोर्व्रजाङ्गनादि-भाव-मोदकारकं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥५॥

द्विजेन्द्रवृन्द-वन्द्य-पादयुग्म-भक्तिवर्धकं
निजेषु राधिकात्मता-वपुः - प्रकाशनाग्रहम् ।
अशेष-भक्तिशास्त्र-शिक्षयोज्ज्वलामृत-प्रदं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥६॥

मुदा निजप्रियादिक-स्वपादपद्म-सीधुभि–
र्महारसार्णवामृत-प्रदेष्ट-गौरभक्तिदम् ।
सदाष्ट-सात्त्विकान्वितं निजेष्ट-भक्तिदायकं
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥७॥

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जो निकुञ्जसेवा आदि रहस्य प्रकाशन के प्रधानकारण-स्वरूप हैं, एवं सदैव सखियों के अनुराग को देनेवाले हैं, एवं महारस के निजी स्वरूप हैं, अतएव सज्जन जिनके चरणों के आश्रय लेते रहते हैं, और देहधारियों के श्रेष्ठसद्गुरु-स्वरूप हैं ।।४।।

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जो श्रीमन्महाप्रभु के महारस प्रकाशन के अंकुरस्वरूप हैं, अतः सबके प्रिय हैं, एवं जिनकी वासना महारस के अंकुर प्रकाशन आदि में ही सदा लगी रहती है, तथा श्रीमन्महाप्रभु के गोपीभाव में सब को हर्षित करनेवाले हैं ।।५।।

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जो श्रेष्ठब्राह्मणगणों के वन्दनीय चरणयुगल में भक्ति को बढ़ानेवाले हैं, एवं अपने अन्तरङ्गभक्तों के निकट श्रीराधिका में तदाकार हुए, अपने शरीर के प्रकाशन के आग्रह से युक्त हैं, तथा समस्त भक्तिशास्त्रों की शिक्षा के द्वारा मधुररसामृत को देनेवाले हैं ।।६

यदीय-रीतिराग-रङ्गभङ्ग-दिग्ध-मानसो
नरोऽपि याति तूर्णमेव नार्यभाव-भाजनम् ।
तमुज्ज्वलाक्त-चित्तमेतु चित्तमत्तषट्पदो
भजाम्यहं गदाधरं सुपण्डितं गुरुं प्रभुम् ॥८॥

महारसामृत-प्रदं सदा गदाधराष्टकं
पठेत्तु यः सुभक्तितो व्रजाङ्गनागणोत्सवम् ।
शचीतनूज-पादपद्म-भक्तिरत्न-योग्यतां
लभेत राधिका-गदाधरांघ्रिपद्म-सेवया ॥९॥

इति श्रीकृष्णरसतत्त्वज्ञेन प्रेममयविग्रहेण महाप्रमोद्वितीयस्वरूपेण सत्काव्य-सिद्धान्तसुवर्णपरिक्षायां निकषायितेन कषायरहितेन श्रीस्वरूपदामोदरेण विरचितं श्रीगदाधराष्टकं संपूर्णम् ।

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जो श्रीराधिका आदि के निजी पादपद्मों की अमृतश्रेणी के द्वारा, महारसार्णव के अमृत को देनेवाले अपने इष्टदेव श्रीगौराङ्ग-महाप्रभु की भक्ति को हर्षपूर्वक देनेवाले हैं, एवं अष्टसात्त्विकभावों से सदैव युक्त रहते हैं, तथा अपने इष्टदेव की भक्ति को देनेवाले हैं ।।७।।

मैं, पूज्यपाद प्रभुवर पंडितवर्य उन श्रीगदाधरजी का भजन करता हूँ कि, जिनकी रीतिराग की रङ्गभरी तरंगों से व्याप्त मनवाला मानव भी, श्रेष्ठभाव की पात्रता को शीघ्र नहीं प्राप्त कर पाता, अतः मेरा चित्तरूप मत्तभ्रमर तो उज्ज्वलरस से व्याप्त चित्तवाले, उन श्रीगदाधर पंडित में ही जाता रहे ।।८।।

जो व्यक्ति गोपीगणों के उत्सवस्वरूप, एवं महारसामृत को देनेवाले इस गदाधराष्टक का श्रेष्ठभक्तिपूर्वक सदा पाठ करेगा, तो वह व्यक्ति राधिका के अवतारस्वरूप श्रीगदाधर पंडित के पादपद्मों की सेवा से, श्रीशचीनन्दन के पादपद्मों की भक्तिरूप-रत्न की योग्यता को प्राप्त कर लेगा । इस अष्टक में "पञ्चचामर"—नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

श्रीश्रीवासपंडिताय नमः ।

श्रीश्रीवासाष्टकम् ।

आश्रयामि श्रीश्रीवासं तमाद्यं पण्डितं मुदा ।
शुक्लाम्बरधरं गौरं गौरभक्ति - प्रदायकम् ॥१॥
श्रीगौरस्य नवद्वीप - लीला - संकीर्तन - सम्पदि ।
यः प्रधानतया ख्यातः स श्रीवासो गतिर्मम ॥२॥
श्रीगौरकीर्तनानन्दे पुत्रशोकोऽपि नास्पृशत् ।
यं श्रीवासं भक्तराजं तं नमामि पुनःपुनः ॥३॥
आदौ वासस्तु श्रीहट्टे भागीरथ्यास्तटे ततः ।
कुमारहट्टे यस्यासीत् स मे गौरगतिर्गतिः ॥४॥
श्रीरामः श्रीपतिश्चैव श्रीनिधिश्चेति सत्तमाः ।
श्रीवास-भ्रातरो ज्ञेयाः श्रीवासं नौमि तद्वरम् ॥५॥
पुरा नारद-रूपेण हरिनाम-सुधा-झरैः ।
यो जगत् प्लावयामास स श्रीवासोऽधुना गतिः ॥६॥

मैं, शुक्लवस्त्र धारण करनेवाले, गौरवर्णवाले, श्रीगौराङ्गदेव की भक्ति को देनेवाले, प्रधानपंडित श्रीवास का हर्षपूर्वक आश्रय लेता हूँ ॥१॥

श्रीगौराङ्गदेव की नवद्वीपसंबंधी लीलासंकीर्तनरूप-सम्पत्ति में जो प्रधानरूप से विख्यात हैं, वे श्रीवास पंडित ही मेरी गति हैं ॥२॥

श्रीगौराङ्गदेव के कीर्तनरूप-आनन्द में जिनको अपने पुत्र का शोक भी स्पर्श नहीं कर पाया, उन भक्तराज श्रीवास पंडित को मैं बारंबार प्रणाम करता हूँ ॥३॥

श्रीगौराङ्गमहाप्रभु ही जिनकी गति हैं, वे श्रीवास पंडित ही मेरी गति हैं कि, जिनका पहले श्रीहट्ट-नामक ग्राम में, उसके बाद गंगातटपर, एवं उसके वाद कुमारहट्ट-नामक ग्राम में निवास था ॥४॥

श्रीराम, श्रीपति, एवं श्रीनिधि—ये सज्जनश्रेष्ठ तीनोंजन श्रीवास पंडित के भाई जानने चाहिये; अतः इन तीनों में श्रेष्ठतम श्रीवास पंडित को मैं प्रणाम करता हूँ ॥५॥

पहले नारद के रूप से हरिनामामृत के झरनों के द्वारा जिन्होंने जगत् को आप्लावित कर दिया था, अव वे श्रीवास पंडित ही मेरी गति हैं ॥६॥

यत्पत्नी मालिनीदेवी श्रीगौराङ्गमतोषयत् ।
स्वहस्तपक्व-भक्ताद्यैः स श्रीवासो गतिर्मम ॥७॥
पतिवद्गौराङ्गगतिर्मालिनी गौडविश्रुता ।
तत्पादपद्म-सविधे प्रणतिर्मे सहस्रशः ॥८॥
श्रीचैतन्य-प्रियतमं वन्दे श्रीवासपण्डितम् ।
यत्कारुण्य-कटाक्षेण श्रीचैतन्ये रतिर्भवेत् ॥९॥

इति श्रीश्रीवासाष्टकं सम्पूर्णम् ।

—*—

श्रीचैतन्यचन्द्राय नमः ।

श्रीचैतन्याष्टकम् (१) ।

सदोपास्यः श्रीमान् धृत–मनुज–कायैः प्रणयितां
वहद्भिर्गीर्वाणैर्गिरिश–परमेष्ठिप्रभृतिभिः ।
स्वभक्तेभ्यः शुद्धां निज–भजन–मुद्रामुपदिशन्
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥१॥

वे श्रीवास पंडित ही मेरे प्राप्य हैं कि, जिनकी पत्नी मालिनी-देवी ने, अपने हाथ से वनाये हुए पक्वान्न आदि के द्वारा, श्रीगौराङ्गदेव को प्रसन्न कर लिया था ।।७।।

गौड़देश में प्रसिद्ध जो मालिनीदेवी अपने पतिदेव की तरह, श्रीगौराङ्गदेव को ही अपने प्राप्य समझती थीं, उन मालिनीदेवी के पादपद्मों के निकट मेरे हजारों प्रणाम हैं ।।८।।

मैं, श्रीचैतन्यदेव के प्रियतम पार्षद उन श्रीवास पंडित को प्रणाम करता हूँ कि, जिनके कृपाकटाक्ष से श्रीचैतन्यमहाप्रभु में प्रीति हो जाती है । इस अष्टक में "अनुष्टुप्"–नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

श्रीवृन्दावन में विद्यमान श्रीरूप गोस्वामी, श्रीपुरुषोत्तमक्षेत्र में विराजमान श्रीचैतन्यमहाप्रभु को "कृष्णवर्णं" इत्यादि भा० ११।५।३२ शास्त्र के द्वारा एवं उन्हीं (श्रीचैतन्यदेव) के अनुग्रह के द्वारा उनको साक्षात् भगवद् रूप से अनुभव में लाकर, तत्त्वरूप से वर्णन करते हुए, उनके दर्शन की आकांक्षा से, विरहविह्वल होकर कहते हैं कि—

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे नेत्रगोचर होंगे क्या ? जो कि मनुष्य का शरीर धारण करनेवाले, एवं अपने में प्रेमधारण करनेवाले शिव, ब्रह्मा आदि देवताओं के द्वारा सदैव उपासनीय हैं, एवं परमशोभायमान हैं; तथा श्रीस्वरूपदामोदर आदि अपने भक्तों के लिये अपने भजन की विशुद्ध मुद्रा (कर्मयोगादि से अनावृत अपने भजन की परिपाटी) का उपदेश देते हुए विराजमान हैं ।

यदि कहो कि, उनके निकट तो ब्रह्मा आदि देवता सेवा करते हुए नहीं दिखाई देते हैं । इसके उत्तर में कहते हैं कि, श्रीकृष्णावतार में तो ब्रह्मादि देवता उनकी साक्षात्‌रूप से उपासना करते थे; किन्तु इस अवतार में तो शंकर, श्रीअद्वैताचार्य के रूप से; एवं ब्रह्मा, नामाचार्य श्रीहरिदास के रूप से उपासना करते हैं । तात्पर्य— "कृष्णवर्णं त्विषाकृष्णं साङ्गोपाङ्गास्त्रपार्षदम् । यज्ञैः संकीर्तनप्रायैर्यजन्ति हि सुमेधसः ।।" भा० ११।५।३२ इस श्लोक में जो चतुर्थ युगावतार वर्णित है, वह श्रीकृष्णचैतन्य-महाप्रभुरूप ही है; क्योंकि श्रीहरिनाम-संकीर्तनप्रधान यज्ञ का असाधारण धर्म, उन्हीं में देखा जाता है । और असाधारण धर्मवाले लक्षण के द्वारा ही लक्ष्य का परिचय होता है । जैसे "जन्माद्यस्य यतः" इस ब्रह्मसूत्र में जगत् जन्मादि के कारण होने के नाते, उसका लक्ष्य ब्रह्म परिचित होता है, उसी प्रकार श्रीचैतन्यावतार भी, मनुष्य रूपधारी देवताओं के द्वारा सेवनीय है । बारंबार प्रगट न होनेवाले इस अवतार को "महान् प्रभुर्वै पुरुषः सत्त्वस्यैष प्रवर्तकः" यह श्रुति भी प्रकाशित करती है । इस प्रकार साक्षात् ईश्वर रूप से विनिश्चित श्रीचैतन्यदेव में, यदि किसी मन्दमति की आस्था नहीं दिखाई देती है, तो उस मन्दमति के ऊपर उन (श्रीचैतन्यदेव) की कृपा का अभाव ही जानना चाहिये; क्योंकि "यमेवैष वृणुते तेन लभ्यः", "तमक्रतुः पश्यति वीतशोकं धातुः प्रसादान्महिमानमीशम्" इत्यादि श्रुतियों तथा "अथापि ते देव ! पदांबुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव हि । जानाति तत्त्वं भगवन् महिम्नो न चान्य एकोऽपि चिरं विचिन्वन् ।।" भा० १०।१४।२९ इत्यादि स्मृतियों से, उनकी कृपा ही उनके दर्शन में हेतु है । यह भाव अन्वय–व्यतिरेक के द्वारा श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य आदि महानुभावों के ऊपर स्पष्ट ही देखा गया है, हाय ! ऐसा मेरा भी सौभाग्यपट कब खुलेगा ? ।।१।।

सुरेशानां दुर्गं गतिरतिशयेनोपनिषदां
मुनीनां सर्वस्वं प्रणतपटलीनां मधुरिमा।
विनिर्यासः प्रेम्णो निखिल–पशुपालाम्बुज–दृशां
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥२॥

स्वरूपं बिभ्राणो जगदतुलमद्वैत–दयितः
प्रपन्न–श्रीवासो जनित–परमानन्द–गरिमा।
हरिर्दीनोद्धारी गजपति–कृपोत्सेक–तरलः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥३॥

ये श्रीचैतन्यदेव, श्रीकृष्ण के अंशावताररूप चतुर्थ युग के अवतारस्वरूप नहीं हैं; क्योंकि "कृते शुक्लो धर्ममूर्ती रक्तस्त्रेतायुगे मतः। द्वापरे च कलौ चापि श्यामलाङ्गः प्रकीर्तितः॥" इस स्मृति प्रमाण से, वह चतुर्थ युगावतार तो श्यामवर्णवाला कहा गया है; किन्तु यह अवतार तो निजप्रेयसी श्रीमती राधिका के भाव एवं कान्ति के द्वारा, अपनी कान्ति को छिपाकर स्वयं श्रीकृष्णरूप ही प्रगट हुआ है। इस भाव को प्रदर्शित करते हुए श्रीरूप गोस्वामी दूसरे श्लोक में कहते हैं कि—

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे नेत्रों के सामने पदार्पण करेंगे क्या? जो ब्रह्मादि देवताओं के लिये भी "दुर्गं" अर्थात् निर्भयस्थान-स्वरूप हैं, एवं उपनिषदों के लिये भी "अतिशयगति" अर्थात् परमतत्त्व संचारस्वरूप अथवा प्राप्यस्वरूप हैं, एवं जो मुनियों के दोनों लोकों के धनस्वरूप हैं, एवं दासभक्तवृन्दों के दास्यभक्ति के माधुर्यरूप हैं, तथा समस्त व्रजाङ्गनाओं के श्रीकृष्णविषयक प्रेम के "विनिर्यासः" अर्थात् सारस्वरूप हैं" ॥२॥

अब तीसरे श्लोक में श्लेषालंकार के द्वारा साक्षात् कृष्ण रूप से वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या? जो संसार में अनुपम एवं स्वरूप, अर्थात् श्रीजीव गोस्वामी के पितृपाद तथा स्वरूपदामोदर-नामक अपने प्रियपार्षद को, अपनी कृपासुधा से परिपुष्ट करते रहते हैं, एवं अद्वैताचार्य के परमप्रिय हैं, एवं श्रीवास-नामक पंडित जिनके शरणागत हो गये हैं, एवं परमानन्दपुरी-नामक अपने काका-गुरु में जिनका गुरुभाव है, एवं सांसारिक अविद्या का

रसोद्दामा कामार्बुद–मधुर–धामोज्ज्वल–तनु-
यंतीनामुत्तंसस्तरणि – कर – विद्योति – वसनः ।
हिरण्यानां लक्ष्मीभरमभिभवन्नाङ्गिक–रुचा
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥४॥

अपहरण करने के कारण जो 'हरि' कहलाते हैं, तथा जो त्रिविधताप संतप्त दीनदुःखी जीवों का उद्धार करनेवाले हैं, और जो उत्कलदेश के अधिपति गजपति (प्रतापरुद्र)—नामक नृपति के ऊपर कृपामयी धारा से, अभिषेक करने के लिये चंचल हो रहे हैं। श्लेषपक्षे—"हरिः, अर्थात् सिंह होकर भी गजराज के ऊपर कृपाभिषेक करने में चञ्चल हैं" यहाँपर विरोधाभास-अलंकार है। इससे अद्भुत सिंहत्व व्यंजित होता है। कृष्णपक्ष में यह अर्थ है कि, सच्चिदानन्द-विग्रहवाले वे श्रीकृष्ण फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या ? जो संसार में "न तस्य प्रतिमास्ति" इत्यादि श्रुति के अनुसार अपने अतुल स्वरूप को, अर्थात् श्रीविग्रह को धारण करते हुए "एकोऽपि सन् वहुधा यो विभाति एकं सन्तं बहुधा दृश्यमानम्" इत्यादि श्रुति के अनुसार अनेक रूपवाले होकर भी, जिनको अपना अद्वितीय श्रीकृष्ण रूप ही प्रिय है, तात्पर्य—जो एकता को न त्यागकर, अनेक रूप धारण करनेवाले हैं, एवं जो "प्रपन्नायाः पादसेविन्याः श्रियो लक्ष्म्या निवासः समाश्रयः" अर्थात् जो अपनी शरण में आयी हुई, चरणसेविका लक्ष्मीदेवी के निवास-स्वरूप हैं, एवं "जनितः स्वजन्मना प्रादुर्भावितः परमानन्दगरिमा निःसीमातिशयः सुखराशिर्येन सः" अर्थात् जिन्होंने अपने प्रादुर्भाव के द्वारा, असीम अतिशय सुखसमूह प्रगट कर दिया है, तथा जो भक्तों के पापापहारी होने से 'हरि' हैं, दीनजनों का उद्धार करनेवाले हैं, तथा गजपति अर्थात् ग्राह से ग्रस्त, गजेन्द्र के ऊपर कृपामयी वृष्टि की सृष्टि करने में परम उतावले हो रहे हैं। इस श्लोक में शव्दार्थश्लेष का सम्मेलन है ॥३॥

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मेरे नेत्रों के सामने फिर भी पधारेंगे क्या ? जो कि भक्ति के परम मधुर रसों के आस्वादनजन्य सुखों से उन्मत्त रहते हैं, एवं जिनका श्रीविग्रह करोड़ों कामदेवों से भी मधुर मनोहर तेज से परमोज्ज्वल है, अर्थात् जो अतिमोहन मूर्तिवाले हैं; एवं जो संन्यासियों के मुकुटमणि हैं, एवं जिनके वस्त्र प्रातःकालीन सूर्य की किरणों के समान अरुणवर्णवाले हैं, तथा जो अपने श्रीविग्रह की

हरे कृष्णेत्युच्चैः स्फुरित–रसनो नामगणना-
कृत–ग्रन्थिश्रेणी - सुभग - कटिसूत्रोज्ज्वल-करः ।
विशालाक्षो दीर्घार्गल-युगल-खेलाञ्चित-भुजः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥५॥
पयोराशेस्तीरे स्फुरदुपवनाली - कलनया
मुहुर्वृन्दारण्य - स्मरण - जनित - प्रेम-विवशः ।
क्वचित् कृष्णावृत्ति-प्रचल-रसनो भक्ति-रसिकः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥६॥
रथारूढस्यारादधिपदवि नीलाचल - पते-
रदभ्र - प्रेमोर्मि - स्फुरित - नटनोल्लास-विवशः ।
सहर्षं गायद्भिः परिवृत - तनुर्वैष्णव - जनैः
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥७॥

कान्ति के द्वारा सुवर्णसमुदाय की अतिशय शोभा का तिरस्कार करते हुए विराजमान हैं ।।४।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मुझे फिर भी दर्शन देंगे क्या ? जिनकी जिह्वा "हरे कृष्ण" इत्यादि महामन्त्र के उच्चस्वर से उच्चारण करने के द्वारा नृत्य करती रहती है, अथवा जिनकी जिह्वारूपी रङ्गस्थलीपर "हरे कृष्ण" इत्यादि महामन्त्र सर्वोत्तमभाव से नट की तरह, स्वयं नृत्य करता रहता है; एवं जिनका वामहस्त, उच्चारित किये हुए नामों की गिनती के लिये की हुई ग्रन्थिश्रेणी से, सुन्दर कटिसूत्र के द्वारा सुशोभित है, एवं जिनके दोनों नेत्र कर्णपर्यन्त विशाल हैं, एवं जिनकी दोनों भुजाएँ जानुपर्यन्त लंबी हैं ।।५।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या ? जो कि श्रीजगन्नाथपुरी के निकटवर्ती समुद्र के तीरपर, स्फूर्ति पानेवाली उपवनश्रेणी को देखकर, वारंवार वृन्दावन के स्मरण से जनित प्रेम के अधीन बने रहते हैं, एवं जिनकी जिह्वा किसी स्थानपर, श्रीकृष्ण के नामों की आवृत्ति से प्रतिक्षण चलती रहती है; क्योंकि वे प्रेमलक्षणाभक्ति के परमरसिक हैं ।।६।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु मेरे नेत्रों के सामने फिर भी पधारेंगे क्या ? जो कि रथ में विराजमान श्रीजगन्नाथदेव के निकटवर्ती मार्ग में, अतिशय प्रेम की तरङ्गों से स्फूर्ति पानेवाले, नृत्य के उल्लास के अधीन हैं, अर्थात् श्रीजगन्नाथ की यात्रा में रथ के सामने प्रेम में

भुवं सिञ्चन्नश्रु - स्रुतिभिरभितः सान्द्र-पुलकैः
परीताङ्गो नीप-स्तबक-नव-किञ्जल्क-जयिभिः ।
घन-स्वेद-स्तोम - स्तिमित - तनुरुत्कीर्तन-सुखी
स चैतन्यः किं मे पुनरपि दृशोर्यास्यति पदम् ॥८॥
अधीते गौराङ्ग - स्मरण - पदवी - मङ्गलतरं
कृती यो विश्रम्भ - स्फुरदमलधीरष्टकमिदम् ।
परानन्दे सद्यस्तदमल - पदाम्भोज - युगले
परिस्फारा तस्य स्फुरतु नितरां प्रेमलहरी ॥९॥

इति श्रीमाधुर्यनन्दनकाननकोकिलेन श्रीहरिकीर्तनसुधारसनिर्यासलसल्लीला-स्वर्धुनीविहारिराजहंसेन श्रीभगवत्कृष्णचैतन्यपार्षदेन व्रजभूमिरहस्य-राधाकृष्णलीलारहस्यप्रकाशकेन चित्रकाव्यकर्मणा कविविश्वकर्मणा गौडेन्द्रसभामणिना विरक्तशिरोमणिना भक्तिरसपरिपूर्णमतिना वाह्येऽवधूताकृतिना श्रीरूपगोस्वामिना विरचितं श्रीचैतन्याष्टकं (१) संपूर्णम् ।

विभोर होकर, जो नृत्य करते रहते हैं, एवं हर्षपूर्वक नामसंकीर्तन करनेवाले वैष्णवजनों के द्वारा जो चारों ओर से धिरे हुए हैं ।।७।।

वे श्रीचैतन्यमहाप्रभु फिर भी मेरे दृष्टिगोचर होंगे क्या ? जो कि अपने नेत्रों की जलधाराओं के द्वारा, भूमि का अभिषेक करते रहते हैं, एवं कदम्ब के पुष्पगुच्छों की केसर को जीतनेवाले, अपने घने रोमांचों के द्वारा, जिनका श्रीअङ्ग सर्वतोभाव से व्याप्त रहता है, एवं जिनका श्रीविग्रह गाढे स्वेदसमुदाय से प्रायः गीला बना रहता है, एवं जो उत्कीर्तन में अर्थात् खड़े होकर, भुजा उठाकर, उद्दण्डकीर्तन करने में ही सुखी रहते हैं ।।८।।

इस अष्टक के पाठ के फल का निर्देश करते हुए श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

विश्वास से शोभायमान विशुद्ध बुद्धिवाला सौभाग्यशाली जो कोई व्यक्ति, श्रीचैतन्यदेव के स्मरणमय मार्ग में अतिशय मंगलदायक, इस "श्रीचैतन्याष्टक" का पाठ करता है, उसके हृदय में, श्रीचैतन्य-महाप्रभु के परमानन्दमय दोनों चरणारविन्दों में, विस्तीर्ण प्रेम की लहरी विशेष स्फूर्ति पाती रहे; यह अष्टककार का आशीर्वाद है । इस अष्टक में "शिखरिणी"—नामक छन्द हैं ।।९।।

—※—

श्रीचैतन्यचन्द्राय नमः।

श्रीचैतन्याष्टकम् (२)।

कलौ यं विद्वांसः स्फुटमभियजन्ते द्युतिभरा-
दकृष्णाङ्गं कृष्णं मखविधिभिरुत्कीर्तनमयैः।
उपास्यं च प्राहुर्यमखिल-चतुर्थाश्रमजुषां
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥१॥

चरित्रं तन्वानः प्रियमघवदाह्लादन-पदं
जयोद्घोषैः सम्यग्विरचित-शची-शोकहरणः।
उदञ्चन्मार्तण्ड-द्युतिहर-दुकूलाञ्चित-कटिः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥२॥

इस द्वितीय "श्रीचैतन्याष्टक" में श्रीजगन्नाथक्षेत्र से माता के दर्शन करने के लिये, पुनः गौड़देश में आये हुए श्रीचैतन्यदेव का वर्णन करते हुए श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

सच्चिदानन्द-विग्रहधारी वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, जिनको "कृष्णवर्णं" इत्यादि वाक्यार्थ के गूढतात्पर्य को जाननेवाले विज्ञजन, कलियुग में संकीर्तन-प्रधान यज्ञ की विधियों के द्वारा, स्पष्ट ही पूजित करते रहते हैं। यद्यपि वे इन्द्रनीलमणि के समान श्यामलवर्ण के से अङ्गोंवाले हैं, तथापि अपने इस अवतार के अङ्ग की, पीतवर्णवाली कान्ति की अधिकता से, श्यामवर्णवाले नहीं प्रतीत होते हैं; क्योंकि श्रीमद्भागवत के १०।८।१३ में श्रीगर्गाचार्य की "आसन् वर्णास्त्रयो ह्यस्य गृह्णतोऽनुयुगं तनूः। शुक्लो रक्तस्तथा पीत इदानीं कृष्णतां गतः॥" इस उक्ति में पारिशेष्य-प्रमाण से पीतकान्ति का ही लाभ होता है। और श्रीयुधिष्ठिर के प्रति "संन्यासकृच्छमः शान्तो निष्ठा शान्तिः परायणः" महाभारतीय अनुशासनपर्व दानधर्मपर्वे विष्णुसहस्रनामस्तोत्रे, अध्याय १४९, श्लोक ७५ इत्यादिरूप से उपदेश देनेवाले श्रीभीष्मजी जिनको (श्रीचैतन्यदेव को) संन्यासरूप चतुर्थ आश्रम का सेवन करनेवाले संन्यासीमात्र के पूजनीय बतलाते हैं। "कृष्णाङ्गं" इस शब्द का दूसरा यह अर्थ है कि, जिनके श्रीअङ्ग में गोपीचन्दन के द्वारा "कृष्ण" ये दोनों वर्ण लिखित विद्यमान हैं ॥१॥

सच्चिदानन्द-विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, जो शान्तिपुर में गली-गली, एवं घर-घर में,

अपारं कस्यापि प्रणयि-जन-वृन्दस्य कुतुकी
रसस्तोमं हृत्वा मधुरमुपभोक्तुं कमपि यः ।
रुचिं स्वामावव्रे द्युतिमिह तदीयां प्रकटयन्
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥३॥

श्रीहरिनाम का विस्तार करते हुए, पापीजनों के लिये भी, परमानन्ददायक पतितपावनरूप प्रियचरित्र का विस्तार करनेवाले हैं, एवं जो "पतितपावन श्रीकृष्ण की जय हो" इत्यादि जयघोषमय-शब्द के द्वारा अपने विरह से दुःखित, शचीमाता के शोक को भलीप्रकार अपहरण करनेवाले हैं, एवं जिनका कटिप्रदेश प्रचण्ड-मार्तण्ड की कान्ति को तिरस्कृत करनेवाले काषायवस्त्र से सुशोभित है। श्लेषपक्ष में यह अर्थ है कि—ये श्रीचैतन्यदेव, त्रेता में इन्द्र का कार्य सिद्ध करने के लिये वामन रूप से अवतीर्ण हो चुके हैं; यह भाव व्यंजित होता है; क्योंकि "स्वज्येष्ठत्वात् स्वभक्तत्वाच्च प्रियो मघवा शक्रस्तस्याह्लादनं पदं व्यवसायो यत्र तच्चरित्रं बलिच्छलनतद् बन्धनादिलक्षणं तन्वानः", अर्थात् बड़ा भाई एवं भक्त होने के नाते, इन्द्र जिनको प्रिय लगता था, उस इन्द्र के हर्षप्रद व्यवसाय से युक्त बलि का छलना, एवं उसका बाँधना आदि चरित्र का विस्तार करनेवाले हैं। बलि के बाँधने के बाद देवताओं के द्वारा किये गये जय-जयकारों के द्वारा, जिन्होंने शची (इन्द्राणी) के शोक का भलीप्रकार निराकरण कर दिया था ।।२।।

यदि कहो कि, चतुर्थ युगावतार तो "कृते शुक्लो धर्ममूर्तिः" इत्यादि स्मृति के अनुसार श्यामवर्णवाला कहा गया है; अतः चतुर्थ युगावतार इन श्रीचैतन्यदेव का गौरत्व किस प्रकार सिद्ध होता है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

सच्चिदानन्द-विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, जिन्होंने व्रजाङ्गनारूप अपने स्नेही भक्तसमुदाय के शृङ्गार, अपर पर्याय किसी अनिर्वचनीय मधुर-रससमूह को चुरा कर, अपने उपभोग में लाने के लिये, अर्थात् गोपीगणास्वादित शृङ्गाररस का स्वयं अनुभव करने के लिये, एवं गोपाङ्गनाओं की गौरकान्ति को प्रकाशित करते हुए, इस अवतार में अपनी श्यामकान्ति जिन्होंने छिपा ली थी; क्योंकि "दूसरा चोर भी, अपने रूप को छिपा कर ही चोरी करता है" यह बात प्रसिद्ध है। इनका गौरवर्ण "यदापश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिम्" इत्यादि श्रुति ने भी

अनाराध्यः प्रीत्या चिरमसुर–भाव–प्रणयिनां
प्रपन्नानां दैवीं प्रकृतिमधिदैवं त्रिजगति ।
अजस्रं यः श्रीमान् जयति सहजानन्द–मधुरः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥४॥

सूचित किया है । यदि कहो कि, इस प्रकार अपने आकार को छिपाने का आडंवर क्यों किया ? इसके उत्तर में कहते हैं कि, वे श्रीचैतन्यदेव वड़े कौतुकी हैं, अर्थात् गोपियों के भाव का आस्वादन करने में वे विशिष्ट विनोदी हैं । यद्यपि "कृते शुक्ल" इत्यादि स्मृति में प्रत्येक कलियुग का अवतार, श्यामलवर्ण का वताया गया है, तथापि वैवस्वत मन्वन्तर के अन्तर्गत अट्ठाइसवीं चतुर्युगी के कलियुग की सन्ध्या में, तो स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही, निजप्रेयसी श्रीराधिका की कान्ति एवं भाव के द्वारा, अपनी कान्ति एवं भाव को छिपाकर, श्रीचैतन्यदेव के रूप में अवतीर्ण हुए हैं, यह स्वीकार करना चाहिये । इसी अभिप्राय से श्रीमद्भागवत ७।९।३८ में "छन्नः कलौ यदभवस्त्रियुगोऽथ स त्वम्" इस प्रकार श्रीप्रह्लाद की उक्ति भी युक्तियुक्त प्रतीत होती है ।।३।।

इस प्रकार श्रीचैतन्यदेव के साक्षात् ईश्वर रूप से निर्णीत हो जानेपर भी, तत्तद् देशवासी कुछ ब्राह्मण, उनमें संन्यासी के भाव से प्रीति करनेवाले होकर भी, उनको साक्षात् ईश्वर रूप से क्यों नहीं मानते थे ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

सच्चिदानन्द–विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, अनादिकाल से असुरभाव में प्रेम करनेवाले, आसुरी प्रकृतिवाले, अतएव तामसी देवताओं का भजन करनेवाले व्यक्तियों के द्वारा, जो प्रीतिपूर्वक आराधनीय नहीं हैं, अर्थात् पूर्वोक्त प्रकार के जीव जिनको साक्षात् ईश्वर समझ कर जिनका आराधन नहीं करते हैं; और दैवीप्रकृति को प्राप्त हुए जीवों के जो आराध्यदेव होकर, तीनों लोकों में निरन्तर सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं, एवं लक्ष्मीपति हैं, तथा स्वाभाविक आनन्द से मधुर हैं । दो प्रकार की प्रकृतिवाले जीवों का स्वरूप विष्णुधर्म में "द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च । विष्णुभक्तिपरो दैव आसुरस्तद्विपर्ययः" इस प्रकार कहा है । अतः आसुरी प्रकृतिवाले जीव, श्रीचैतन्यमहाप्रभु को यदि नहीं मानते हैं, तो उसमें हमारी कोई हानि नहीं है ।।४।।

गतिर्यः पौण्ड्राणां प्रकटित–नवद्वीप–महिमा
भवेनालंकुर्वन् भुवन–महितं श्रोत्रियकुलम् ।
पुनात्यङ्गीकाराद्भुवि परमहंसाश्रम–पदं
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥५॥

मुखेनाग्रे पीत्वा मधुरमिह नामामृतरसं
दृशोर्द्वारा यस्तं वमति घन-बाष्पाम्बु-मिषतः ।
भुवि प्रेम्णस्तत्त्वं प्रकटयितुमुल्लासित–तनुः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥६॥

सच्चिदानन्द–विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, जो पुण्ड्रदेशवासियों के गति अर्थात् साध्य–साधनस्वरूप हैं; तात्पर्य–निस्तारक हैं; क्योंकि पुण्ड्रदेश में उत्पन्न होनेवाले सभीजन श्रीचैतन्यदेव को साक्षात् ईश्वर समझ कर ही, भजन करते हैं (नवद्वीप के दक्षिण की ओर कुलीनग्राम के निकटवर्ती देश को "पुण्ड्र" कहते हैं, उस देश में उत्पन्न होनेवाले जनों को "पौण्ड्र" कहते हैं), एवं जिन्होंने नवद्वीप की महिमा प्रगट कर दी । यद्यपि गङ्गादेवी एवं विद्वद्गोष्ठी से अलंकृत होने के कारण, नवद्वीप की कुछ महिमा थी, तो भी साधारणजन नवद्वीप को प्राकृत रूप से ही मानते थे; किन्तु श्रीमन्महाप्रभु श्रीचैतन्यदेव ने तो अपने प्रादुर्भाव के द्वारा, तत्त्वज्ञ व्यक्तियों के निकट, यह रहस्य प्रकाशित कर दिया कि—यह नवद्वीप, वृन्दावन का प्रकाशविशेष ही है, एवं उसीके समान पूजनीय है, और जो जगत्पूजित वैदिक-विप्रवंश को अपने जन्म के द्वारा विभूषित करते हुए, भूतलपर परमहंसों के आश्रमपद को, अर्थात् संन्यासचिह्न को अङ्गीकर करके पवित्र बना रहे हैं; क्योंकि उनको संन्यास ग्रहण करने में कोई फल नहीं दिखाई देता है, किन्तु संन्यास आश्रम को भी भक्ति के अधीन बनाकर उसको पवित्र बना दिया, तात्पर्य—भक्ति से विहीन, संन्यास का चिह्न अपवित्र ही है ।।५।।

अब भाव में निमग्नता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

सच्चिदानन्द–विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा बनाये रखें कि, जो पहले परम मधुर नामामृतरस को अपने श्रीमुख से पी कर, गाढ़े नेत्रजल के बहाने नेत्रों के द्वारा उस नामामृत को बहाते रहते हैं। ऐसा क्यों करते हैं ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—भूमि में प्रेम के तत्त्व को प्रगट करने के लिये, अर्थात् भगवन्नामकीर्तन

तनूमाविष्कुर्वन् नव-पुरट-भासं कटि-लसत्
करङ्कालङ्कारस्तरुण-गजराजाञ्चित-गतिः ।
प्रियेभ्यो यः शिक्षां दिशति निजनिर्माल्यरुचिभिः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥७॥

स्मितालोकः शोकं हरति जगतां यस्य परितो
गिरां तु प्रारम्भः कुशल-पटलीं पल्लवयति ।
पदालम्बः कं वा प्रणयति न हि प्रेम-निवहः
स देवश्चैतन्याकृतिरतितरां नः कृपयतु ॥८॥

ही प्रेम का स्वरूप है, यह बात समझाने के लिये, जिनका श्रीविग्रह उल्लास से भरा रहता है। इस श्लोक में "वमति"-पद जुगुप्सित एवं अश्लील नहीं है; क्योंकि गौणवृत्ति में अश्लील नहीं माना जाता है। प्रकृत नामामृत-रसपान के अनुभावस्वरूप अश्रु का निषेध करके, उस अश्रु को नामामृत के रसरूप से स्थापित कर देने के कारण, इस श्लोक में "अपह्नुति" अलंकार है ॥६॥

तीर्थों में जाते हुए श्रीचैतन्यमहाप्रभु का वर्णन करते हुए कहते हैं—

सच्चिदानन्द-विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, जिनका कटिप्रदेश नारियल से बने हुए जलपात्रमय अलंकार से शोभा पा रहा है, एवं जिनकी चाल तरुण गजराज से भी मनोहर है, एवं जो नवीन सुवर्ण की सी कान्तिवाले अपने श्रीविग्रह को प्रगट करते हुए, भगवत्प्रसादी स्वयं धारण की हुई माला आदिकों की प्रीतियों के द्वारा, अपने प्रियभक्तों के लिये भी यही शिक्षा दे रहे हैं कि, तुम सबको भी भगवत्प्रसादी वस्तुओं में मेरे समान ही प्रेम करना चाहिये। "तीर्थों में भ्रमण करने से वहाँ के भक्तों को भी अपना दर्शन हो जाय" इससे श्रीचैतन्यदेव की परमकारुणिकता व्यंजित होती है ॥७॥

"श्रीचैतन्यदेव सभी का कल्याण कर रहे हैं" इस भाव का वर्णन करते हुए कहते हैं—

सच्चिदानन्द-विग्रहवाले वे श्रीचैतन्यदेव हमारे ऊपर अतिशय कृपा करते रहें कि, मन्दहास्य से भरा जिनका कृपाकटाक्ष, जगत्भर के प्राणियों के शोक को सर्वतोभाव से हर लेता है, एवं जिनकी

शचीसूनोः कीर्ति-स्तबक-नवसौरभ्य-निबिडं
पुमान् यः प्रीतात्मा पठति किल पद्याष्टकमिदम् ।
स लक्ष्मीवानेतं निजपद-सरोजे प्रणयितां
ददानः कल्याणीमनुपदमबाधं सुखयतु ॥९॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां
श्रीचैतन्याष्टकं (२) संपूर्णम् ।

—*—

श्रीचैतन्यचन्द्राय नमः ।

श्रीचैतन्याष्टकम् (३) ।

उपासितपदाम्बुजस्त्वमनुरक्तरुद्रादिभिः
प्रपद्य पुरुषोत्तमं पदमदभ्रमुद्भ्राजितः ।
समस्तनतमण्डलीस्फुरदभीष्टकल्पद्रुमः
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥१॥

वाणियों का प्रारंभ, अर्थात् जिनके संभाषण का उपक्रम, सभी के कल्याणसमूह को विस्तारित कर देता है, तथा जिनके चरणारविन्दों का आश्रय, कौन से जन को श्रीकृष्णविषयक प्रेम के समुदाय को नहीं प्राप्त कराता ? अपितु, सभी को श्रीकृष्णप्रेम की प्राप्ति करा देता है ।।८।।

इस अष्टक के पाठ के फल का निर्देश करते हुए श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

जो व्यक्ति, शचीनन्दन की कीर्तिरूप-गुच्छों की नवीन सुगन्धि से परिपूर्ण, इस अष्टक का प्रीतिपूर्वक पाठ करता है ।' उस व्यक्ति के लिये लक्ष्मीपति वे श्रीशचीनन्दन अपने चरणारविन्दों में, कल्याणमयी प्रीति को देते हुए, पद-पदपर निरन्तर सुखी बनाते रहें, यही आशीर्वाद है । इस अष्टक में भी "शिखरिणी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

इस तीसरे अष्टक में पुरुषोत्तमक्षेत्र में विराजमान श्रीचैतन्यदेव का साक्षात् दर्शन करते हुए, श्रीरूप गोस्वामी स्तुतिपूर्वक कहते हैं कि—

न वर्णयितुमीशते गुरुतरावतारायिता
भवन्तमुरुबुद्धयो न खलु सार्वभौमादयः ।
परो भवतु तत्र कः पटुरतो नमस्ते परं
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥२॥

न यत् कथमपि श्रुतावुपनिषद्भिरप्याहितं
स्वयं च विवृतं न यद् गुरुतरावतारान्तरे।
क्षिपन्नसि रसाम्बुधे ! तदिह भक्तिरत्नं क्षितौ
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥३॥

हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! हे मुकुन्ददेव ! आपके श्रीचरणों में मेरी यही प्रार्थना है कि, आप मुझ मन्दमतिपर कृपा करते रहिये; अथवा "क्षण"—शब्द के अवकाश, आनन्द, एवं उत्सव आदि अनेक अर्थ होते हैं; उनके अनुसार अपनी सेवा का अवकाश दीजिये; उसी के द्वारा आनन्द प्रदान कीजिये, तथा अपने संकीर्तन-महोत्सव में सम्मिलित कीजिये; क्योंकि आपके चरणारविन्द परम अनुरागी श्रीअद्वैताचार्य आदि के रूप में छिपे हुए, शंकर आदि देवताओं के द्वारा उपासित हैं; एवं आप पुरुषोत्तमपद को अर्थात् श्रीजगन्नाथक्षेत्र को प्राप्त करके विशेष शोभायमान हो, अथवा श्रीजगन्नाथरूप श्रेष्ठ वस्तु को समझ कर विशेष प्रकाशमान हो, तथा अपनी समस्त भक्त-मण्डली के स्फूर्ति पाते हुए अभीष्ट की पूर्ति के लिये आप कल्पवृक्ष के समान हो ॥१॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु की स्तुति के विषय में अपनी असमर्थता दिखाते हुए कहते हैं कि—

हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! हे मुकुन्ददेव ! मुझ मन्दमतिपर थोड़ीसी कृपादृष्टि बनाये रखिये; क्योंकि यथार्थरूप से आपका वर्णन करने के लिये तो सभी मुनियों के गुरु एवं अवतारस्वरूप श्रीदत्तात्रेय, एवं श्रीवेदव्यास प्रभृति गुरुजनों का सा आचरण करनेवाले, तथा विशाल बुद्धिवाले श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य आदि भी समर्थ नहीं हैं, फिर आपकी स्तुति करने में दूसरा कौनसा जन, निपुण हो सकता है ? अतः आपके श्रीचरणों में सबसे तुच्छ एवं बुद्धिहीन, मेरा तो केवल प्रणाममात्र है ॥२॥

यदि कहो कि पूर्वोक्त प्रकार के व्यक्ति आपके यथार्थ वर्णन करने में असमर्थ क्यों हैं ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

निजप्रणयविस्फुरन्नटनरङ्ग—विस्मापित-
त्रिनेत्र ! नतमण्डलप्रकटितानुरागामृत ! ।
अहंकृतिकलङ्कितोद्धतजनादिदुर्बोध हे !
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥४॥

जिस भक्तिरूप-रत्न का वेदों में, तथा वेदों की शिरोमणिस्वरूप उपनिषदों के द्वारा, भक्ति के स्वरूप-प्रकाशक किसी भी प्रकार के द्वारा वर्णन नहीं हुआ; क्योंकि उपनिषदें तो "श्रद्धाभक्तिध्यानयोगादवैति, यस्य देवे परा भक्तिः, भक्तिरस्य भजनम्" इत्यादि वाक्यों के द्वारा भक्तिरूप-रत्न को छिपाकर ही रखती हैं; किन्तु स्पष्टरूप वर्णन नहीं करती हैं, एवं जिस भक्तिरूप-रत्न को दत्तात्रेय एवं वेदव्यासादिरूप अपने गुरुतर अवतार में, स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भी प्रकाशित नहीं किया; क्योंकि उन अवतारों में बीच-बीच में कर्मयोग, अष्टाङ्गयोग, एवं अद्वैतवाद की छाया के पड़ जाने से, उनके वाक्यों में विशुद्धभक्ति का प्रकाश नहीं हो पाता है; किन्तु हे रसांबुधे ! आप तो उसी भक्तिरूप-रत्न को, इस भूतलपर धान्यराशि की तरह फैला रहे हो, अतः वेदों के द्वारा एवं स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा छिपाये हुए भक्तिरूप-रत्नों को, इस प्रकार फैलानेवाले महान् उदार प्रभो ! आपका स्वरूप वर्णन करना सभी के लिये दुष्कर है; अतः श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने भी कहा है कि—"क्व सा निरंकुशकृपा क्व तद्वैभवमद्भुतम् । क्व सा वत्सलता शौरे ! यादृग्गौरे तवात्मनि ॥" अतः हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! एवं पात्राऽपात्र के विचार को छोड़कर सबको मुक्ति देनेवाले प्रभो ! मुझ मन्दमतिपर भी कृपा बनाये रखिये ॥३॥

इस चतुर्थ श्लोक में तीन-चरण संबोधनान्त हैं ।

हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! हे मुकुन्ददेव ! आप मुझ मन्दमतिपर कृपा बनाये रखिये । निजस्वरूप श्रीकृष्ण में आपका जो प्रेमविशेष है, उसी के द्वारा स्फूर्तिपानेवाले नृत्य के रागरङ्ग के द्वारा, आप त्रिनेत्रधारी शंकर को, अथवा शंकर के अवतार श्रीअद्वैताचार्य को चकित कर देनेवाले हो ! एवं नम्रता-परायण भक्तमण्डल के ऊपर आप अनुरागरूपी-अमृत को प्रगट करनेवाले हो ! तथा उच्च-कुलोत्पत्ति एवं पाण्डित्य आदिके कारण होनेवाले अहङ्काररूप-कलङ्क से कलंकित

भवन्ति भुवि ये नराः कलितदुष्कुलोत्पत्तय-
स्त्वमुद्धरसि तानपि प्रचुरचारुकारुण्यतः ।
इति प्रमुदितान्तरः शरणमाश्रितस्त्वामहं
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥५॥

मुखाम्बुजपरिस्खलन्मृदुलवाङ् मधूलीरस-
प्रसङ्गजनिताखिलप्रणतभृङ्गरङ्गोत्कर ! ।
समस्तजनमङ्गलप्रभवनामरत्नाम्बुधे !
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥६॥

जो उद्धतजन हैं, उनके द्वारा तो आप दुर्बोध हो ! अर्थात् अहङ्कारी-व्यक्ति आपके तत्त्व को नहीं समझ पाते हैं। स्मृति में कहा भी है कि "अहङ्कारवियुक्तानां केशवो न हि दूरगः । अहङ्कारयुतानां तु मध्ये पर्वतकोटयः ।।" तात्पर्य—अहङ्कार से रहित व्यक्तियों के लिये, भगवान् कुछ दूर नहीं हैं; किन्तु अहङ्कार से भरे हुए व्यक्तियों के लिये तो भगवत्प्राप्ति के बीच में, करोड़ों पर्वत व्यवधान डालनेवाले हैं ।।४।।

यदि कहो कि, तुझ मन्दमतिपर मेरी कृपा कैसे हो सकती है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

इस भूतलपर जो व्यक्ति दुष्टकुल में उत्पन्न हो रहे हैं, आप तो अपनी कमनीय-कृपा की अधिकता के द्वारा, उन दुष्कुलीन पापाचारी व्यक्तियों का भी उद्धार कर रहे हो; इसी भाव से मैं भी हर्षित चित्तवाला होकर, आपकी शरण में आया हूँ। मुझ दुरात्मा का भी उद्धार हो जायगा, अतः हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! हे मुकुन्ददेव ! मुझ मन्दमतिपर भी कृपादृष्टि बनाये रखिये ।।५।।

हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! हे मुकुन्ददेव ! मुझ मन्दमतिपर भी कृपादृष्टि बनाये रखिये; क्योंकि आप तो अपने श्रीमुखारविन्द से झरते हुए कोमल वाणीरूप-मकरन्दरस में गाढी आसक्ति करनेवाले, सभी भक्तरूप-भृङ्गों के "रङ्गोत्कर" को अर्थात् विस्मयज्ञान की अधिकता को उत्पन्न करनेवाले हो ! एवं जनमात्र के समस्त मङ्गलों की उत्पत्ति के स्थानस्वरूप नामरूपी-रत्नों के रत्नाकर हो ! ।।६।।

मृगाङ्कमधुरानन ! स्फुरदनिद्रपद्मेक्षण !
स्मितस्तबकसुन्दराधर ! विशङ्कटोरस्तट ! ।
भुजोद्धतभुजङ्गमप्रभ ! मनोजकोटिद्युते !
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥७॥

अहं कनककेतकीकुसुमगौर ! दुष्टः क्षितौ
न दोषलवदर्शिता विविधदोषपूर्णेऽपि ते ।
अतः प्रवणया धिया कृपणवत्सल ! त्वां भजे
शचीसुत ! मयि प्रभो ! कुरु मुकुन्द ! मन्दे कृपाम् ॥८॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के रूप का निरूपण करते हुए संबोधनात्मक शब्दों से कहते हैं कि—

हे श्रीशचीनन्दन महाप्रभो ! हे पापी-तापियों को मुक्ति देनेवाले मुकुन्ददेव ! मुझ मन्दमतिपर कृपा करते रहिये; क्योंकि आपका श्रीमुख पूर्णचन्द्र से भी मनोहर है ! आपके दोनों नेत्र शोभायमान एवं खिले हुए कमलों के समान हैं ! आपका अधरोष्ठ मन्दहास्यरूपी गुच्छ के द्वारा परमसुन्दर है ! आपका वक्षःस्थल विशाल है ! आपकी आजानुलंबित भुजाओं के द्वारा सर्पराज की प्रभा फीकी पड़ जाती है ! एवं आपकी कान्ति करोड़ों कन्दर्पों के समान है ! ।।७।।

मैं पापी होनेपर भी, आपके स्वभाव को देखकर, कृतार्थ हो सकता हूँ, अतः मेरा चित्त हर्षित हो रहा है; इसी भाव को लेकर कहते हैं कि—

हे सुवर्णमयी केतकी के पुष्पों के समान गौरवर्णवाले ! शचीनन्दन महाप्रभो ! भूमि में यद्यपि मैं महान् दुष्ट हूँ, अर्थात् काम क्रोधादि से दूषित हूँ, तो भी आपका स्वभाव ऐसा लोकोत्तर है कि, आप तो अनेक प्रकार के दोषों से परिपूर्ण व्यक्ति के ऊपर भी, दोष के लेश के दर्शन का भाव प्रकाशित नहीं करते हो; अर्थात् आप, दोषी के दोषोंपर दृष्टिपात नहीं करते हो, अतः आपकी परमोदारता के कारण आप मुझ से भी नाता जोड़ लोगे, इसी विश्वास से विनम्र बुद्धि के द्वारा, मैं तुम्हारा भजन करता हूँ; अतः दीनदुःखियोंपर वात्सल्य करनेवाले मुकुन्ददेव ! मुझ मन्दमतिपर भी कृपा करते रहिये ।।८।।

इदं धरणिमण्डलोत्सव ! भवत्पदांकेषु ये
निविष्टमनसो नराः परिपठन्ति पद्याष्टकम् ।
शचीहृदयनन्दन ! प्रकटकीर्तिचन्द्र ! प्रभो !
निजप्रणयनिर्भरं वितर देव ! तेभ्यः शुभम् ॥६॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां
श्रीचैतन्याष्टकं (३) संपूर्णम् ।

—*—

श्रीशचीसूनवे नमः ।

श्रीशचीसून्वष्टकम् ।

हरिर्दृष्ट्वा गोष्ठे मुकुर-गतमात्मानमतुलं
स्वमाधुर्यं राधा-प्रियतर-सखीवाप्तुमभितः ।
अहो गौडे जातः प्रभुरपरगौरैकतनुभाक्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥१॥

अष्टक के पाठ के फल का निर्देश करते हुए कहते हैं कि—

हे भूमण्डल के महोत्सवस्वरूप ! हे शचीमाता के हृदय के आनन्दस्वरूप ! एवं दशों दिशाओं में प्रगट हुई अपनी कीर्ति के चन्द्रस्वरूप ! महाप्रभो ! जो व्यक्ति आपके चरणचिह्नों में, अपने मन को लगाकर, आपके इस अष्टक का भावपूर्वक पाठ करते हैं, हे देव ! आप उन व्यक्तियों के लिये ऐसा मङ्गल वितरण कर दीजिये कि, जो आपकी प्रेमरूप-संपत्ति से भरपूर हो । इस अष्टक में "पृथ्वी"–नामक छन्द हैं ।।८।।

श्रीरूपगोस्वामि विनिर्मितेषु, श्रीकृष्णचैतन्यवराऽष्टकेषु ।
भाष्यंत्विदं भावयति स्म भव्यं, महाकविः श्रीवनमालिदासः ।।

—*—

श्रीगोलोकरूप व्रज में विराजमान श्रीकृष्ण ने, एकदिन दर्पण में अपने श्रीविग्रह को देखकर, अपनी अतिशय प्रियसखी श्रीमती राधिका की तरह, अपने उसी अतुलनीय रूपमाधुर्य को, सर्वतोभाव से प्राप्त करने के लिये, सर्वसमर्थ जो श्रीकृष्ण, श्रीराधिका की गौरकान्ति के

पुरीदेवस्यान्तः–प्रणय–मधुना स्नान–मधुरो
मुहुर्गोविन्दोद्यद्विशद–परिचर्यार्चित–पदः ।
स्वरूपस्य प्राणार्बुद–कमल–नीराजित–मुखः
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥२॥

दधानः कौपीनं तदुपरि बहिर्वस्त्रमरुणं
प्रकाण्डो हेमाद्रि–द्युतिभिरभितः सेवित–तनुः ।
मुदा गायन्नुच्चैर्निज–मधुर–नामावलिमसौ
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥३॥

अनावेद्यां पूर्वैरपि मुनिगणैर्भक्ति–निपुणैः
श्रुतेर्गूढां प्रेमोज्ज्वल–रसफलां भक्ति–लतिकाम् ।
कृपालुस्तां गौडे प्रभुरतिकृपाभिः प्रकटयन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥४॥

द्वारा एकविग्रहवाले होकर, अर्थात् श्रीराधा-कृष्णमिलित विग्रह धारणपूर्वक, गौड़देश में प्रगट हुए हैं। अहह! वे ही श्रीशचीनन्दन मेरे नेत्रों के मार्ग में फिर भी पधारेंगे क्या? अर्थात् पुनः अपना दर्शन देकर, मुझे कृतार्थ करेंगे क्या? ॥१॥

अपने गुरुदेव श्रीईश्वरपुरीपाद के अन्तःकरण में विराजमान प्रेमरूप-मधु के द्वारा, स्नान करने से जो मधुर रूप हो रहे हैं, एवं जिनके दोनों चरण गोविन्द-नामक सेवक के द्वारा, उत्पन्न हुई विशुद्ध-सेवा के द्वारा पूजित हैं, तथा श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी के अगणित प्राणरूप-कमलों के द्वारा, जिनका श्रीमुख नीराजित है, अर्थात् जिनके श्रीमुख के ऊपर श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी, अपने अनेक प्राणरूप-कमलों की न्योछावर करते रहते हैं, वे ही शचीनन्दन श्रीचैतन्यमहाप्रभु मेरे नेत्रों के सामने फिर भी पधारेंगे क्या? ॥२॥

जो कौपीनधारण किये हुए हैं, एवं उसके ऊपर अरुणवर्ण का बहिर्वास पहने हुए हैं, एवं जो प्रेमरूप-कल्पवृक्ष की मूलशाखा-स्वरूप हैं, एवं जिनका श्रीविग्रह सुमेरुपर्वत की सी कान्तियों के द्वारा चारों ओर से सेवित है, अर्थात् जिनके अंग की कान्ति सुवर्णमय सुमेरुपर्वत की छटा की अपेक्षा भी, परमोज्ज्वल एवं मनोहर है, तथा जो "हरे कृष्ण" इत्यादि अपनी सुमधुर नामावली को प्रेमपूर्वक उच्चस्वर से गाते रहते हैं, वे ही श्रीशचीनन्दन फिर भी मेरे दृष्टिमार्ग में पदार्पण करेंगे क्या? ॥३॥

निजत्वे गौडीयान् जगति परिगृह्य प्रभुरिमान्
हरेकृष्णेत्येवं गणन-विधिना कीर्तयत भोः ।
इतिप्रायां शिक्षां जनक इव तेभ्यः परिदिशन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥५॥

पुरः पश्यन् नीलाचल-पतिमुरुप्रेम-निवहैः
क्षरन्नेत्राम्भोभिः स्नपित-निज-दीर्घोज्ज्वल-तनुः ।
सदा तिष्ठन् देशे प्रणयि-गरुडस्तम्भ-चरमे
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥६॥

मुदा दन्तैर्दष्ट्वा द्युति-विजित-बन्धूकमधरं
करं कृत्वा वामं कटिनिहितमन्यं परिलसन् ।
समुत्थाप्य प्रेम्णागणित-पुलको नृत्यकुतुकी
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥७॥

जो भक्तिरूप-लता, वेदों के लिये भी गूढ है, एवं जिसका फल प्रेममय उज्ज्वल (शृङ्गार)-रस है,एवं जिस भक्तिरूप-लता का स्वरूप, भक्तिमार्ग में निपुण प्राचीन मुनिगणों के द्वारा भी, सरलता से समझ में नहीं आता था, उसी भक्तिरूप-लता को अपनी अतिशय कृपा के द्वारा, गौड़देश में प्रगट करते हुए, जो दयालु श्रीचैतन्यमहाप्रभु, श्रीजगन्नाथक्षेत्र में विराजमान हैं, वे ही श्रीशचीनन्दन मेरे नेत्रमार्ग को कब प्राप्त करेंगे ? ।।४।।

जो श्रीचैतन्यमहाप्रभु, जगत् में इन गौड़देशीय जनों को आत्मीयरूप से अङ्गीकार करके, पिता जिस प्रकार अपने पुत्रों को शिक्षा देता है, उसी प्रकार उनके लिये "हे गौडीय भक्तजनो ! तुम सब "हरे कृष्ण" इत्यादिरूप महामन्त्र का गणना की विधि के द्वारा, उच्चस्वर से मधुरतापूर्वक कीर्तन करते रहो", इस प्रकार की शिक्षा देते रहते हैं, वे ही श्रीशचीनन्दन मेरे लोचनपथ में फिर भी आयेंगे क्या ? ।।५।।

जो श्रीशचीनन्दन, अपने स्नेही-गरुडस्तंभ के पीछे के स्थान में सदा खड़े होकर, अपने सामने विराजमान श्रीजगन्नाथदेव को अधिक प्रेमसमूह के साथ देखते रहते हैं, एवं उसी समय लंबायमान एवं परमोज्ज्वल अपने श्रीविग्रह को प्रेम से बहते हुए, आँसुओं के द्वारा जो स्नान कराते रहते हैं, वे ही श्रीशचीनन्दन फिर भी मेरे दृष्टिमार्ग को प्राप्त करेंगे क्या ? ।।६।।

सरित्तीरारामे विरह–विधुरो गोकुलविधो-
र्नदीमन्यां कुर्वन्नयन-जलधारा-विततिभिः ।
मुहुर्मूर्च्छां गच्छन्मृतकमिव विश्वं विरचयन्
शचीसूनुः किं मे नयनशरणीं यास्यति पुनः ॥८॥
शचीसूनोरस्याष्टकमिदमभीष्टं विरचयत्
सदा दैन्योद्रेकादति–विशद–बुद्धिः पठति यः ।
प्रकामं चैतन्यः प्रभुरति–कृपावेश–विवशः
पृथु–प्रेमाम्भोधौ प्रथित–रसदे मज्जयति तम् ॥९॥

इति श्रीबाल्यकालएव त्यक्तदेशाधिपत्येन गृहीतवैराग्याधिपत्येन भक्तिसिद्धान्तनिष्णातेन श्रीराधाकुण्डनिष्ठेन श्रीरघुनाथदासगोस्वामिना विरचितं श्रीशचीसून्वष्टकं संपूर्णम् ।

जो श्रीशचीनन्दन, कान्ति के द्वारा रक्तवर्ण के वन्धूकपुष्प को पराजित करनेवाले, अपने अधर को हर्षपूर्वक दाँतों से दबाकर, अपने बायें हाथ को अपने कटितटपर धर कर, दाहिने हाथ को ऊपर की ओर उठाकर शोभा पाते हुए, अपने अलौकिक प्रेम के द्वारा अगणित रोमाञ्चों से व्याप्त होकर, नृत्य का कौतुहल करते रहते हैं, वे ही श्रीशचीनन्दन मुझे फिर भी दर्शन देंगे क्या ? ।।७।।

अपने जन्मस्थानरूप नवद्वीपान्तर्गत श्रीअन्तर्द्वीप "श्रीमायापुर" धाम में बहनेवाली गंगा एवं सरस्वती-नदी के तीरपर विराजमान "ईशोद्यान"-नामक बगीचे में, वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल होकर, अपने नेत्रों की जलधारा की पंक्तियों के द्वारा, जो श्रीशचीनन्दन दूसरी (प्रेममयी यमुनारूप) नदी को प्रवाहित करते हुए, (त्रिवेणी का सा दृश्य उपस्थित करते हुए) बारंवार मूर्च्छित होते हुए, संपूर्ण विश्व को मृतक की तरह बनाते रहते थे; वे ही श्रीशचीनन्दन, राधाकुण्ड में उपस्थित, उन्हीं के विरह से व्याकुल, रघुनाथदास-नामक मुझ दीनहीन व्यक्ति के नेत्रों के सामने फिर भी पधारेंगे क्या ? ।।८।।

दीनता की अधिकता से अत्यन्त विशुद्ध बुद्धिवाला जो व्यक्ति, अपने अभीष्ट को देनेवाले, इन श्रीशचीनन्दन के इस अष्टक का सदैव पाठ करता है, उस व्यक्ति को श्रीचैतन्यमहाप्रभु अतिशय कृपा के आवेश से विवश होकर, सर्वशास्त्रप्रसिद्ध भक्तिरूप-रस को देनेवाले विशाल प्रेमरूपी-समुद्र में, यथेष्ट गोता लगवा देते हैं। इस अष्टक में "शिखरिणी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

श्रीशचीनन्दनाय नमः ।

श्रीशचीनन्दनविजयाष्टकम् ।

गदाधर ! यदा परः स किल कश्चनालोकितो
मया श्रित-गयाऽध्वना मधुर-मूर्तिरेकस्तदा ।
नवाम्बुद इव ब्रुवन् धृतनवाम्बुदो नेत्रयो-
र्लुठन् भुवि निरुद्धवाग् विजयते शचीनन्दनः ॥१॥

अलक्षितचरीं हरीत्युदितमात्रतः कां दशा-
मसावति-बुधाग्रणीरतुल-कम्प-सम्पादिकाम् ।
व्रजन्नहह ! मोदते न पुनरत्र शास्त्रेष्विति
स्वशिष्यगण-वेष्टितो विजयते शचीनन्दनः ॥२॥

हहा ! किमिदमुच्यते पठ पठात्रं कृष्णं मुहु-
र्विना तमिह साधुतां दधति किं बुधा ! धातवः ।
प्रसिद्ध इह वर्ण-सङ्घटित-सम्यगाम्नायकः
स्वनाम्नि यदिति ब्रुवन् विजयते शचीनन्दनः ॥३॥

एकदिन गदाधर पंडित के साथ वार्तालाप करते हुए, श्रीमन्महाप्रभु बोले कि, "हे गदाधर ! देखो, मैं जब गया के मार्ग में जा रहा था, तब मैंने, मधुरमूर्तिवाला लोकोत्तर कोई एक विशिष्ट पुरुषोत्तम देखा था"; नूतन जलधर के समान गंभीरस्वर से इस प्रकार कहते हुए, अपने नेत्रों में नूतन जलधर को धारण करनेवाले, अर्थात् अपने दोनों नेत्रों से धाराधर के समान अश्रुधारा बहानेवाले; जो शचीनन्दन, भूतलपर लोटपोट होते हुए चुप हो गये, उन श्रीशचीनन्दन की जय हो ॥१॥

पंडिताग्रगण्य जो शचीनन्दन, अपने शिष्यगणों से घिरकर, पढ़ाते समय शिष्यों के मुख से 'हरि'-शब्द के उच्चारणमात्र से, अन्य किसी में भी नहीं देखी जानेवाली एवं अनुपम कंप को उत्पन्न करनेवाली, किसी अनिर्वचनीय दशा को प्राप्त होते हुए, जिस प्रकार प्रसन्न होते हैं, अहह ! उस प्रकार तो पढ़ाते समय, शास्त्रों में भी प्रसन्न नहीं होते हैं, उन्हीं श्रीशचीनन्दन की जय हो ॥२॥

विद्यार्थीगण जब धातुओं का पाठ आरम्भ करते हैं, तब श्रीमन्महाप्रभु कहते हैं कि, "हाय ! हाय !! हे विद्यार्थियो ! यह क्या उच्चारण कर रहे हो ? धातुओं के पाठ में बारम्बार 'कृष्ण' का ही

नवाम्बुज-दले यदीक्षण-सवर्णता-दीर्घते
सदा स्वहृदि भाव्यतां सपदि साध्यतां तत्पदम् ।
स पाठयति विस्मितान् स्मितमुखः स्वशिष्यानिति
प्रतिप्रकरणं प्रभुर्विजयते शचीनन्दनः ॥४॥

क्व यानि करवाणि किं क्व नु मया हरिर्लभ्यतां
तमुद्दिशतु कः सखे ! कथय कः प्रपद्येत माम् ?
इति द्रवति घूर्णते कलित-भक्तकण्ठः शुचा
स मूर्च्छयति मातरं विजयते शचीनन्दनः ॥५॥

स्मरार्बुद-दुरापया तनुरुचिच्छटाच्छायया
तमः कलितमः-कृतं निखिलमेव निर्मूलयन् ।
नृणां नयन-सौभगं दिविषदां मुखैस्तावयन्
लसन्नधिधरः प्रभुर्विजयते शचीनन्दनः ॥६॥

पाठ करो; क्योंकि हे समझदार छात्रो ! देखो, 'भू' आदि समस्त धातुएँ, उन श्रीकृष्ण के बिना साधन की साधुता को कभी धारण कर पाती हैं क्या ?" क्योंकि 'अ इ उ ण्' इत्यादि वर्णसमुदाय से संघटित वर्णसमाम्नाय भी, अपने श्रीकृष्णनाम में ही प्रसिद्ध है । इस प्रकार कहनेवाले श्रीशचीनन्दन की जय हो ।।३।।

"हे छात्रो ! देखो, जिन श्रीकृष्ण के नेत्रों की सवर्णता (समानता), एवं दीर्घता (विशालता) तो नूतन कमलदल में है, अतः उन श्रीकृष्ण के पद को, अर्थात् चरणों को ही शीघ्रतापूर्वक अपने हृदय में विचारते रहो, एवं श्रीकृष्णपद को ही सदा सिद्ध करते रहो ।" इस प्रकार के वचनों को सुनकर, विस्मित हुए अपने छात्रों को, हँसमुखवाले जो श्रीमन्महाप्रभु पाठ्यविषय के प्रत्येक प्रकरण में, पूर्वोक्त पाठ ही पढ़ाते रहते हैं, उन श्रीशचीनन्दन की जय हो ।।४।।

"हे सखे ! बताओ, मैं कहाँ जाऊँ एवं क्या करूँ, तथा मेरे प्राणप्यारे श्रीहरि मुझे कहाँ मिल सकते हैं, उनको मुझे कौन बता सकता है, एवं ऐसा व्यक्ति मुझे कौनसा मिल सकता है ?" इस प्रकार कहते कहते जो शचीनन्दन द्रवीभूत हो जाते हैं, घूमघुमेर खाते हैं, एवं शोक से भक्तों का गला धारण करके, अपनी माता शचीदेवी को भी मूर्च्छित कर देते हैं, उन श्रीशचीनन्दन की जय हो ।।५।।

जो शचीनन्दन कोटि-कोटि कन्दर्पों को भी सुदुर्लभ, अपने श्रीविग्रह की कान्तिरूप छटाछाया के द्वारा, कलिकाल के तमोगुण के

अयं कनक-भूधरः प्रणय-रत्नमुच्चैः किरन्
कृपातुरतया-व्रजन्नभवदत्र विश्वम्भरः ।
यदक्षि-पथ-सञ्चरत्-सुरधुनी-प्रवाहैर्निजं
परं च जगदार्द्रयन् विजयते शचीनन्दनः ।।७।।

गतोऽस्मि मथुरां मम प्रियतमा विशाखा सखी
गता नु बत ! कां दशां वद कथं नु वेदानि ताम् ?
इतीव स निजेच्छया व्रजपतेः सुतः प्रापित-
स्तदीय-रसचर्वणां विजयते शचीनन्दनः ।।८।।

इदं पठति योऽष्टकं गुणनिधे ! शचीनन्दन !
प्रभो ! तव पदाम्बुजे स्फुरदमन्द-विश्रम्भवान् ।
तमुज्ज्वलमतिं निज-प्रणयरूप-वर्गानुगं
विधाय निजधामनि द्रुतमुरीकुरुष्व स्वयम् ।।९।।

इति श्रीमद्विश्वनाथ-चक्रवर्ति-ठक्कुर-विरचित-स्तवामृतलहर्यां
श्रीशचीनन्दनविजयाष्टकं संपूर्णम् ।

द्वारा किये गये मानवमात्र के, हृदय के अज्ञानरूप-अन्धकार को संपूर्ण-रूपेण विनष्ट करते हुए, एवं देवताओं के मुखों के द्वारा, भूतलवासी मनुष्यों के नेत्रों के सौभाग्य की प्रशंसा कराते हुए, भूतलपर शोभा पा रहे हैं, उन श्रीशचीनन्दन की जय हो ।।६।।

सुवर्णपर्वत अर्थात् सुमेरुपर्वत-स्वरूप जो शचीनन्दन अपनी अहैतुकी कृपा से आतुर होकर, भूतलपर भ्रमण करते करते, पात्रापात्र का विचार न करके, सर्वसाधारण के लिये विशेषतापूर्वक प्रेमरूपी-रत्न को वितरण करते हुए, विश्व का भरणपोषण करनेवाले हो गये हैं, अतएव "विश्वंभर" नाम से विख्यात हैं; क्योंकि अपने नेत्रों से निकलती हुई अश्रुधारारूप-गङ्गा के प्रवाहों के द्वारा, अपने एवं पराये समस्त जगत्को सरस बनाते रहते हैं,उन श्रीशचीनन्दन की जय हो ।।७

"हे सखे उद्धव ! मैं मथुरा में चला आया हूँ । हाय ! मेरे वियोग में मेरी प्रियतमासखी विशाखा (राधा) कौनसी दशा को प्राप्त हो गई है ? मैं उसको किस प्रकार जान सकता हूँ ?" इस प्रकार कहनेवाले एवं अपनी इच्छा से शचीनन्दन के रूप में अवतीर्ण होनेवाले जो शचीनन्दन, विशाखाविषयक रस के आस्वादन को प्राप्त हो गये, उन श्रीशचीनन्दन की जय हो ।।८।।

श्रीचैतन्यमहाप्रभवे नमः ।

श्रीमद्भागवते श्रीचैतन्यमहाप्रभु-वन्दनम् ।

ध्येयं सदा परिभवघ्नमभीष्टदोहं
तीर्थास्पदं शिवविरिञ्चिनुतं शरण्यम् ।
भृत्यार्तिहं प्रणतपाल भवाब्धिपोतं
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ॥१॥

हे गुणनिधे ! प्रभो ! शचीनन्दन ! देखो, तुम्हारे चरणारविन्दों में स्फूर्ति पानेवाले, विशाल विश्वासवाला जो व्यक्ति, इस अष्टक का विश्वासपूर्वक पाठ करता है, उसको आप विमल बुद्धिवाला, एवं अपने प्रेममय अनुचरवर्ग का अनुगामी बनाकर, अपने धाम में शीघ्र ही स्वयं अङ्गीकार कर लीजिये । इस अष्टक में "पृथ्वी"—नामक छन्द हैं ॥८॥

—※—

इन दोनों श्लोकों की श्रीकृष्णपरक एवं श्रीरामपरक व्याख्या तो प्रसिद्ध ही हैं; किन्तु श्रीचैतन्यमहाप्रभुपरक व्याख्या का सारांश इस प्रकार हैं—

हे पुरुषोत्तम महाप्रभो ! मैं, आपके चरणारविन्दों की वन्दना करता हूँ । वह परमकारुणिक होने से सदैव, सबके ध्यान करने योग्य है, एवं संसार से जायमान तिरस्कार का नाशक भी है, और जिस चरणारविन्द का अन्तःकरण से विचार-विमर्श भी, अभिलषित वांछा का पूरक है। तीर्थश्रेष्ठ श्रीजगन्नाथक्षेत्र ही उसका आस्पद अर्थात् निवासस्थान है, और वह चरणारविन्द शिव अर्थात् कल्याण की रचना करता है, अतएव सर्वसाधारण के द्वारा नमस्कृत है, अथवा शिवावतार श्रीअद्वैताचार्य, एवं ब्रह्मावतार नामाचार्य श्रीहरिदास ठाकुर द्वारा नमस्कृत है, अतएव शरणागत-वत्सल है, भक्तिप्रिय-सेवकों की सारी पीडाएँ हर लेता है । हे प्रणतजनरक्षक ! अतएव वह आपका चरणारविन्द, संसारसागर के अनायास पार जाने के लिये, जहाज के समान है ॥१॥

त्यक्त्वा सुदुस्त्यजसुरेप्सितराज्यलक्ष्मीं
धर्मिष्ठ आर्यवचसा यदगादरण्यम् ।
मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावद्
वन्दे महापुरुष ! ते चरणारविन्दम् ।।२।।

श्रीमद्भागवत ११।५।३३-३४

आर्य, संन्यासमार्गोपदेष्टा अर्थात् एकवार श्रीचैतन्यमहाप्रभु निजपार्षदों सहित, श्रीवासपंडित के भवन में संकीर्तन कर रहे थे। उसी समय, एक ब्राह्मण ने भी संकीर्तन में सम्मिलित होने की चेष्टा की, परन्तु दरवाजा बन्द होने के कारण, भीतर न जा सका, अतः कुपित होकर, उसने निज यज्ञोपवीत तोडते हुए शाप दिया था कि, "तुम्हारा गार्हस्थ्य सांसारिकसुख नष्ट हो जाय।" अतः ब्रह्मण्यदेव श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने उस विप्र की बात को सत्य करने के लिये, संन्यास ग्रहण कर, श्रीवृन्दावन की यात्रा की थी (श्रीचैतन्यचरितामृत १।१७।६०-६४)। प्रश्न—क्या त्याग करके वन को पधारे थे ? उत्तर—त्यक्त्वा—त्यागकर। प्र०—क्या त्यागकर ? उत्तर—देवता भी जिसकी शोभा की विद्यमानता की सदैव अभिलाषा करते हैं, ऐसी सुदुस्त्यज श्रीलक्ष्मीस्वरूपिणी अपनी पत्नी-विष्णुप्रियादेवी को त्यागकर। प्रश्न—आप स्वतः कैसे हो ? उत्तर—धर्मिष्ठ अर्थात् निज अहैतुकी भक्तिरूप-परमधर्म के प्रचार में निष्ठ हो। प्रश्न—वन में जाकर आपने क्या किया ? उत्तर—स्वाभिलषित श्रीनीलाचल के प्रति दौड़कर चले आये। प्रश्न—वह नीलाचल अर्थात् पुरुषोत्तमक्षेत्र कैसा है ? उत्तर—मायाऽमृगम्—प्राकृतगुणरहित निर्गुण है। तात्पर्य—माया उसको ढूँढ नहीं सकती। "मन्निकेतं तु निर्गुणम्" भा० ११।२५।२५ इस प्रमाण से वह निर्गुण है। आप परमदयालु हो,अतः अठारह वर्षतक श्रीपुरुषोत्तम-क्षेत्र में अखण्डवास कर, जीवमात्र को भक्ति का भण्डार लुटाते रहे हो। सो, हे श्रीचैतन्यमहाप्रभो ! उन्हीं दयामय आपके श्रीचरणारविन्दों की, मैं वारम्बार वन्दना करता हूँ ।।२।।

—*—

श्रीमच्चैतन्यदेवाय नमः ।

श्रीमच्चैतन्यदेवस्तवः ।

श्रीमच्चैतन्यदेव ! त्वां वन्दे गौराङ्गसुन्दर ! ।
शचीनन्दन ! मां त्राहि यतिचूडामणे ! प्रभो ! ॥
आजानुबाहो ! स्मेरास्य ! नीलाचलविभूषण ! ।
जगत्प्रवर्तित-स्वादुभगवन्नामकीर्तन ! ॥
अद्वैताचार्य-संश्लाघिन् ! सार्वभौमाभिनन्दक ! ।
रामानन्दकृतप्रीत ! सर्ववैष्णवबान्धव ! ॥
श्रीकृष्णचरणाम्भोज-प्रेमामृत-महाम्बुधे ! ।
नमस्ते दीनदीनं मां कदाचित् किं स्मरिष्यसि ? ॥१॥

इति श्रीहरिगुरुवैष्णवचरणांभोज-प्रेमामृतांबुधिवर्धकेन निरपेक्षकृपाकरेण प्राणसर्वस्वश्रीगौरसुन्दरेण तद्वाच्यवाचकरूपप्रत्यङ्गसेवनोत्सवोत्केन व्रजभूमिरहस्य-राधाकृष्णलीलारहस्यप्रकाशकेन गौडेन्द्रसभामणिना विरक्तशिरोमणिना भक्तिरसपरिपूर्णमतिना बाह्येऽवधूताकृतिना श्रीसनातनगोस्वामिना विरचिते श्रीकृष्णलीलास्तवे श्रीमच्चैतन्यदेवस्तवः संपूर्णः ।

हे श्रीमत्कृष्णचैतन्यदेव ! हे श्रीगौराङ्गसुन्दर ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । हे श्रीशचीनन्दन ! हे संन्यासिशिरोमणे ! महाप्रभो ! आप मेरी रक्षा करो। हे आजानुलंबित भुजाओंवाले ! हे मन्दहास्यविशिष्ट मुखारविन्दवाले ! हे नीलाचल के भूषणस्वरूप ! हे संसारभर में अमृत से भी अधिक स्वादयुक्त श्रीभगवन्नामकीर्तन का प्रचार करनेवाले ! एवं अपने अवतार के कारणरूप श्रीअद्वैताचार्य की प्रशंसा करनेवाले ! अथवा श्रीअद्वैताचार्य के द्वारा प्रशंसित ! एवं श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य का सर्वतोभावसे अभिनन्दन करनेवाले ! एवं श्रीरायरामानन्द में प्रीति करनेवाले ! अथवा श्रीरायरामानन्द के द्वारा की हुई प्रीति से युक्त ! एवं वैष्णवमात्र के बान्धव ! तथा श्रीकृष्णचरणकमल-संबंधी प्रेमरूप-अमृत के महासागर-स्वरूप ! अथवा श्रीकृष्ण के चरणकमलों में प्रेमामृतरूप-महासमुद्र को प्रवर्तित करनेवाले ! प्रभो ! आपके लिये मेरा कोटिशः प्रणाम है। क्या कभी दीनातिदीन मुझ अधम का भी स्मरण करोगे, प्रभो ? ॥१॥

श्रीगोद्रुमचन्द्राय नमः ।

श्रीगोद्रुमचन्द्रभजनोपदेशः ।

यदि ते हरिपादसरोजसुधा,-रसपानपरं हृदयं सततम् ।
परिहृत्य गृहं कलिभावमयं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१॥

धन-यौवन-जीवन-राज्य-सुखं, न हि नित्यमनुक्षणनाशपरम् ।
त्यज ग्राम्यकथासकलं विफलं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥२॥

रमणीजनसङ्गसुखं च सखे !, चरमे भयदं पुरुषार्थहरम् ।
हरिनाम-सुधारस-मत्तमति,-र्भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥३॥

जडकाव्यरसो न हि काव्यरसः, कलिपावन-गौररसो हि रसः ।
अलमन्यकथाद्यनुशीलनया, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥४॥

हे सखे ! यदि तुम्हारा मन हरिपादपद्मों की सुधा के रस का पान करने के लिये निरन्तर तत्पर है, तब तो कलिभावमय अपने घर को त्यागकर, गोद्रुमद्वीप के कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ॥१॥

क्योंकि धन-यौवन-जीवन-एवं राज्यसुख नित्य नहीं है; अपितु, प्रतिक्षण विनाशी है; अतः निष्फल समस्त ग्राम्यकथाओं को छोड दो, एवं गोद्रुमद्वीप के कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ॥२॥

देखो, मित्र ! रमणीजन के सङ्ग से उत्पन्न जो सुख है, वह अन्त में भयदायक है, एवं पुरुषार्थ को हरनेवाला है; अतः तुम तो हरिनामरूप-सुधारस में मत्तमतिवाले होकर, गोद्रुमद्वीप के कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ॥३॥

और देखो, प्राकृतवस्तुओं का वर्णन करनेवाला जड़काव्यरस, कोई काव्यरस नहीं माना जाता है; किन्तु कलि को पावन बनानेवाला श्रीगौराङ्गदेव के द्वारा प्रचारित रस ही वास्तविक रस है; अतः अन्य काल्पनिक कथाओं के अनुशीलन से कोई प्रयोजन नहीं है, अतएव गोद्रुमद्वीप के कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ॥४॥

वृषभानुसुतान्वितवामतनुं, यमुनातटनागरनन्दसुतम् ।
मुरलीकलगीत-विनोदपरं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥५॥

हरिकीर्तनमध्यगतं स्वजनैः, परिवेष्टित-जाम्बुनदाभहरिम् ।
निज-गौडजनैक-कृपाजलधिं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥६॥

गिरिराजसुतापरिवीतगृहं, नवखण्डपतिं यतिचित्तहरम् ।
सुरसङ्घनुतं प्रियया सहितं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥७॥

कलिकुक्कुर-मुद्गरभावधरं, हरिनाममहौषध-दानपरम् ।
पतितार्तदयार्द्र-सुमूर्तिधरं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥८॥

जिस नन्दनन्दन का वामाङ्ग, श्रीवृषभानुनन्दिनी से युक्त है, एवं यमुनातटपर भ्रमण करनेवालों में जो परमचतुर हैं, तथा जो मुरली के द्वारा सुमधुर गीतों के विनोद में तत्पर हैं, उन नन्दनन्दन के अभिन्न स्वरूप, गोद्रुमद्वीप के कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ॥५॥

हे सखे ! यदि अपना कल्याण चाहते हो, तो गोद्रुमद्वीप के कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो कि, जो गौरहरि, हरिकीर्तन के बीच में विद्यमान रहते हैं, एवं सुवर्ण वर्णवाले जो हरि, निजजनों से परिवेष्टित हैं, तथा अपने गौडीयजनों के लिये तो केवल वे ही कृपा के समुद्र हैं ॥६॥

हे सखे ! तुम तो गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो कि, जिनका घर श्रीगङ्गाजी के द्वारा परिवेष्टित है, एवं जो नवद्वीपपति हैं, तथा यतियों के चित्त को भी हरनेवाले हैं, एवं देवगण भी जिनको नमस्कार करते रहते हैं, और जो श्रीविष्णुप्रिया के सहित विराजमान हैं ॥७॥

हे सखे ! तुम तो गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो कि, जो कलिरूप-कुक्कुर को भयभीत करने के लिये, मुद्गर का भाव धारण करनेवाले हैं, एवं हरिनामरूप-महौषधि के देने में लगे रहते हैं, तथा पतित एवं आर्तजनों के ऊपर दया से आर्द्र, सुन्दर श्रीविग्रह धारण करनेवाले हैं ॥८॥

रिपुबान्धवभेदविहीनदया, यदभीक्ष्णमुदेति मुखाब्जततौ ।
तमकृष्णमिह व्रजराजसुतं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥९॥
इह चोपनिषत्-परिगीतविभु,-र्द्विजराजसुतः पुरटाभहरिः ।
निजधामनि खेलति बन्धुयुतो, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१०॥
अवतारवरं परिपूर्णकलं, परतत्त्वमिहात्मविलासमयम् ।
व्रजधामरसाम्बुधि-गुप्तरसं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥११॥
श्रुतिवर्णधनादि न यस्य कृपा,-जनने बलवद्भजनेन विना ।
तमहैतुकभावपथेन सखे !, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१२॥
अपि नक्रगतौ ह्रदमध्यगतं, कममोचयदार्तजनं तमजम् ।
अविचिन्त्यबलं शिवकल्पतरुं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१३॥

हे सखे ! जिनके मुखारविन्दपर शत्रु-मित्र के भेदभाव से रहित दया निरन्तर प्रगट होती रहती है, एवं नवद्वीप में जो व्रजराजनन्दन गौरवर्ण के हैं; अतः गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ॥९॥

हे सखे ! तुम तो गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो कि, जो विभु, उपनिषदों के द्वारा गाये जाते हैं, एवं द्विजराज श्रीजगन्नाथ मिश्र के पुत्र हैं, एवं सुवर्ण की सी कान्तिवाले हैं, तथा जो अपने धाम में बन्धुओं के सहित खेलते रहते हैं ॥१०॥

हे सखे ! तुम तो गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो कि, जो अवतारों में श्रेष्ठ हैं, परिपूर्ण-कलाओं से युक्त हैं, एवं आत्मविलासमय परतत्त्वस्वरूप हैं, तथा व्रजधामरूप-रससमुद्र के गुप्तरसस्वरूप हैं ॥११॥

हे सखे ! जो गौरचन्द्र गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप हैं, एवं जिनकी कृपा की उत्पत्ति में प्रबल भजन के बिना, वेदविद्या-जाति-धनादि कारण नहीं हैं; अतः तुम तो निष्काम भावमार्ग के द्वारा उनका भजन करो ॥१२॥

हे सखे ! तुम तो गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, अजन्मा उन गौरचन्द्र का भजन करो कि, जिन्होंने पहले हरि अवतार के द्वारा सरोवर में ग्राह के द्वारा ग्रस्त गजराज को, एवं इस अवतार

सुरभीन्द्रतपःपरितुष्टमना, वरवर्णधरो हरिराविरभूत् ।
तमजस्रसुखं मुनिधैर्यहरं, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१४॥

अभिलाषचयं तदभेदधियं, अशुभं च शुभं त्यज सर्वमिदम् ।
अनुकूलतया प्रियसेवनया, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१५॥

हरिसेवक-सेवनधर्मपरो, हरिनामरसामृतपानरतः ।
नति-दैन्य-दया-परमानयुतो, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१६॥

वद यादव! माधव! कृष्ण! हरे !, वद राम ! जनार्दन! केशव हे ! ।
वृषभानुसुता-प्रियनाथ ! सदा, भज गोद्रुमकाननकुञ्जविधुम् ॥१७॥

में राजकार्यरूप-सरोवर में कलिकालरूप-ग्राह के द्वारा ग्रसे हुए गजपति प्रतापरुद्र को छुडाया था, एवं जिनका बल अचिन्त्य है, तथा जो स्वयं कल्याण-कल्पतरुस्वरूप हैं ।।१३।।

हे सखे ! तुम गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप, उन गौरहरि का भजन करो कि, जो हरि, सुरभी एवं इन्द्र के तप से सन्तुष्ट मनवाले होकर, ब्राह्मणरूप श्रेष्ठवर्ण को धारण कर, अथवा गौराङ्गरूप श्रेष्ठवर्ण धारण कर प्रगट हुए थे, जिनका सुख निरन्तर है, अतएव निर्गुणब्रह्म का मनन करनेवाले मुनियों के धैर्य को भी हरनेवाले हैं ।।१४।।

हे सखे ! श्रीहरि की सेवा से भिन्न दूसरी अभिलाषा-समुदाय को छोड दो, एवं जीव-ईश्वर में अभेदबुद्धि को त्याग दो, तथा देखे-सुने जानेवाले शुभ और अशुभ ये सभी कर्मों को त्याग दो, और अनुकूलतापूर्वक अपनी प्रियसेवा के द्वारा गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ।।१५।।

हे मित्र ! तुम तो श्रीहरिसेवकों की सेवारूप-धर्म में तत्पर होकर, श्रीहरिनामरसामृत के पान में संलग्न होकर, एवं नम्रता-दीनता-दया तथा दूसरों के सम्मान में संलग्न होकर, गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करो ।।१६।।

हे सखे ! तुम से मेरा यही निवेदन है कि, तुम अपनी जिह्वा से हे यादव ! हे माधव ! हे कृष्ण ! हे हरे ! हे राम ! हे जनार्दन ! हे केशव ! हे वृषभानुनन्दिनी के प्रियतम स्वामिन् ! इस प्रकार सदैव उच्चारण करते रहो, एवं गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करते रहो ।।१७।।

वद यामुनतीरवनाद्रिपते !, वद गोकुलकाननपुञ्जरवे !।
वद रासरसायन ! गौरहरे !, भज गोद्रुमकाननकुंजविधुम् ॥१८॥
चल गौरवनं नवखण्डमयं, पठ गौरहरेश्चरितानि मुदा।
लुठ गौरपदाङ्कित-गाङ्गतटं, भज गोद्रुमकाननकुंजविधुम् ॥१९॥
स्मर गौरगदाधरकेलिकलां, भव गौरगदाधरपक्षचरः।
शृणु गौरगदाधरचारुकथां, भज गोद्रुमकाननकुंजविधुम् ॥२०॥

इति श्रीगौराङ्गलीलासत्सिद्धान्तकाव्यकारेण पाषण्डदलनपूर्वक कृतभक्तिप्रचारेण केवलहरिनामव्यापारेण त्यक्ताऽन्यव्यापारेण भक्तिप्रवाहभगीरथेन साधुवेद्य-शिरोरत्नेन नवद्वीपान्तर्गताऽन्तर्द्वीपमध्यस्थ—श्रीमायापुरस्थ-श्रीगौराङ्ग-महाप्रभुजन्मस्थानप्रकाशकेन श्रीसच्चिदानन्दभक्तिविनोद-ठक्कुरेण विरचितः श्रीगोद्रुमचन्द्रभजनोपदेशः संपूर्णः।

हे सखे ! तुम तो हे यमुनातीरस्थ-वृन्दावनाधिपते ! एवं गोवर्धनाधिपते ! हे गोकुल एवं वृन्दावनादि वनसमुदाय को प्रकाशित करनेवाले सूर्य ! हे रासरस के स्थानस्वरूप ! या मार्गस्वरूप ! गौरहरे ! इस प्रकार बारंबार पुकारते रहो, तथा गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करते रहो ।।१८।।

और नवखण्डमय अर्थात् नव-द्वीपों से युक्त गौरवन में चलो, एवं श्रीगौरहरि के चरित्रों को हर्षपूर्वक पढ़ते रहो, तथा श्रीगौराङ्गदेव के चरणचिह्नों से चिह्नित गङ्गातटपर लोट लगाते रहो, और गोद्रुम-कानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करते रहो ।।१९।।

हे सखे ! तुम से हमारा यही नम्र निवेदन है कि, श्रीगौर-गदाधर की केलिकलाओं का स्मरण करो, एवं श्रीगौर-गदाधर के पक्ष में ही विचरण करनेवाले वन जाओ, एवं श्रीगौर-गदाधर की सुन्दर कथा को ही सुनते रहो, तथा गोद्रुमकानन की निकुञ्जों के चन्द्रस्वरूप उन श्रीगौरचन्द्र का भजन करते रहो। इस स्तोत्र में "तोटक"—नामक छन्द हैं ।।२०।।

—❀—

श्रीकुञ्जविहारिणे नमः ।

श्रीकुञ्जविहार्यष्टकम् (१) ।

इन्द्रनीलमणिमंजुलवर्णः, फुल्लनीपकुसुमाञ्चितकर्णः ।
कृष्णलाभिरकृशोरसि हारी, सुन्दरो जयति कुंजविहारी ॥१॥

राधिकावदनचन्द्रचकोरः, सर्वबल्लववधूधृतिचौरः ।
चर्चरीचतुरताञ्चितचारी, -चारुतो जयति कुंजविहारी ॥२॥

सर्वतः प्रथितकौलिकपर्व, -ध्वंसनेन हृतवासवगर्वः ।
गोष्ठरक्षणकृते गिरिधारी, लीलया जयति कुंजविहारी ॥३॥

दो अष्टकों के द्वारा, कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण की स्तुति करते हुए, श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

जिनका वर्ण इन्द्रनीलमणि के समान मनोहर है, जिनके दोनों कर्ण खिले हुए कदम्ब के पुष्पों से सुशोभित हैं, एवं जिनके विशाल वक्षःस्थलपर गुंजाओं का हार विराजमान है, परमसुन्दर वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो ।।१।।

उनकी रमणीयता को प्रकाशित करते हुए कहते हैं कि—

जो श्रीमती राधिका के मुखचन्द्र के चकोरस्वरूप हैं, एवं जो समस्त गोपियों के धैर्य को चुरानेवाले हैं, तथा जो चर्चरी-नामक ताल-विशेष में चतुरता से सुशोभित नृत्य की गति से मनोहर हैं, वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो ।।२

श्रीकृष्ण के नित्यविहार की विघ्नरूप, इन्द्र की पूजा में लगे हुए, अपने परिकररूप-व्रजवासियों की अन्यमनस्कता, श्रीकृष्ण ने दूर कर दी, इस विषय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

सर्वत्र सुप्रसिद्ध एवं गोपों की कुलपरंपरा से प्राप्त, इन्द्र की पूजारूप पर्व को मिटाकर, जिन्होंने इन्द्र के गर्व का अपहरण कर लिया है, एवं व्रज की रक्षा करने के लिये, जो खेल-खेल में अनायास गिरिराज को धारण करनेवाले हैं, वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो । श्रीगोवर्धन-पूजन एवं धारणरूप-महोत्सव में तो, दुर्लभ दर्शनवाले प्रेयसी-गोपीरूप प्रियजनों का दर्शनरूप महान् उत्सव हुआ था, यह भावार्थ है ।।३।।

रागमण्डलविभूषितवंशी, -विभ्रमेण मदनोत्सवशंसी।
स्तूयमानचरितः शुकशारी, -श्रेणिभिर्जयति कुंजविहारी ॥४॥
शातकुम्भरुचिहारिदुकूलः, केकिचन्द्रकविराजितचूलः।
नव्ययौवनलसद्व्रजनारी,-रंजनो जयति कुंजविहारी ॥५॥
स्थासकीकृतसुगन्धिपटीरः, स्वर्णकाञ्चिपरिशोभिकटीरः।
राधिकोन्नतपयोधरवारी,-कुंजरो जयति कुंजविहारी ॥६॥
गौरधातुतिलकोज्ज्वलभालः, केलिचंचलितचम्पकमालः।
अद्रिकन्दरगृहेष्वभिसारी, सुभ्रुवां जयति कुंजविहारी ॥७॥

इस प्रकार विघ्न के हेतुरूप इन्द्र को जीत कर, श्रीकृष्ण आनन्दपूर्वक विहार करते हैं, इस विषय का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

अनेक राग-रागिनियों से विभूषित वंशी के विलास के द्वारा, जो निज-प्रेयसीरूप गोपियों के प्रति, मदनमहोत्सव की घोषणा करते रहते हैं, एवं वंशीध्वनि के माधुर्य में अनुरक्त शुक-शारिकाओं की श्रेणी के द्वारा, जिनके चरित्र की प्रशंसा की जा रही है, वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो ।।४।।

जिनका पीतांबर, सुवर्ण की कान्ति का तिरस्कार करनेवाला है, एवं जिनका मुकुट, मयूरपुच्छ से सुशोभित है, तथा नवीनयौवन से विराजमान व्रजाङ्गनाओं का जो अनुरञ्जन करते रहते हैं, वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं, अतः उनकी जय हो ।।५

जिनका श्रीअङ्ग सुगन्धित चन्दन से चर्चित है, एवं जिनका कटिप्रदेश सुवर्णमयी मेखला से सुशोभित है, तथा जो राधिका के उन्नत पयोधररूप हस्तिवन्धन-शृङ्खला के हस्तिस्वरूप हैं, अर्थात् हाथी को बाँधने की शृङ्खला में हाथी जैसे निबद्ध हो जाता है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी श्रीराधिका के पयोधरों की शोभा से निबद्ध हैं; वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो ।।६

जिनका विशाल भाल गौरवर्ण की धातुओं के द्वारा विरचित तिलक से परमउज्ज्वल है, जिनके गले में विराजमान चम्पा के पुष्पों की माला विलासपूर्वक झूल रही है, एवं जो गोवर्धनादि पर्वतों की गुहारूप-गृहों में निज-प्रेयसीरूप गोपियों का अभिसार कराते रहते हैं, वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो ।।७।।

विभ्रमोच्चलदृगंचलनृत्य, -क्षिप्तगोपललनाऽखिलकृत्यः ।
प्रेममत्तवृषभानुकुमारी, -नागरो जयति कुंजविहारी ॥८॥
अष्टकं मधुरकुंजविहारि, -क्रीडया पठति यः किल हारि ।
स प्रयाति विलसत्परभागं, तस्य पादकमलार्चनरागम् ॥९॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामि-विरचित-स्तवमालायां
श्रीकुञ्जविहार्यष्टकं (१) समाप्तम् ।

—*—

श्रीकुंजविहारिणे नमः ।

श्रीकुंजविहार्यष्टकम् (२) ।

अविरतरतिबन्धुस्मेरताबन्धुरश्रीः
कवलित इव राधापाङ्गभङ्गीतरङ्गैः ।
मुदितवदनचन्द्रश्चन्द्रकापीडधारी
मुदिरमधुरकान्तिर्भाति कुंजेविहारी ॥१॥

स्मरविलास के द्वारा चञ्चल, अपने नेत्रप्रान्तों के नृत्य से, जो गोपाङ्गनाओं के गृहसम्बन्धी समस्त कार्यों को दूर करनेवाले हैं, एवं जो प्रेमोन्मत्त श्रीवृषभानुनन्दिनी के परमरसिक हैं, वे ही कुंजविहारी श्रीकृष्ण सर्वोत्कर्ष से विद्यमान हैं; अतः उनकी जय हो ।।८।।

अष्टक के पाठ का फल वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

जो व्यक्ति, कुंजविहारी श्रीकृष्ण की मधुरक्रीडा से मनोहर, इस अष्टक का प्रेमपूर्वक पाठ करता है, वह व्यक्ति, श्रीकृष्ण के चरणकमलों की सेवा के प्रबल अनुराग को प्राप्त कर लेता है । इस अष्टक में "स्वागता"–नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

जिनके मुखकमलपर कन्दर्पविलास के कारण, मन्दहास्य की शोभा सर्वदा विराजमान है, जो राधिका के कटाक्षभङ्गीरूप तरङ्गों के द्वारा मानो ग्रस्त हैं, जिनका मुखचन्द्र सर्वदा हर्ष से युक्त रहता है, एवं जो मयूरपुच्छ का मुकुट धारण करनेवाले हैं, तथा जिनकी कान्ति नूतन जलधर से भी मधुर है, वे ही कुंजविहारी भगवान् श्रीकृष्ण शोभा पा रहे हैं ।।१।।

ततसुषिरघनानां नादमानद्धभाजां
जनयति तरुणीनां मण्डले मण्डितानाम्।
तटभुवि नटराजक्रीडया भानुपुत्र्या
विदधदतुलचारीर्भाति कुंजेविहारी ॥२॥

शिखिनि कलितषड्जे कोकिले पञ्चमाढ्ये
स्वयमपि नववंश्योद्दामयन्ग्राममुख्यम्।
धृतमृगमदगन्धः सुष्ठु गान्धारसंज्ञं
त्रिभुवनधृतिहारी भाति कुंजेविहारी ॥३॥

अनुपमकरशाखोपात्तराधांगुलीको
लघु लघु कुसुमानां पर्यटन्वाटिकायाम्।
सरभसमनुगीतश्चित्रकण्ठीभिरुच्चै-
र्व्रजनवयुवतीभिर्भाति कुंजेविहारी ॥४॥

निज-प्रेयसीरूप गोपियोंके साथ नृत्यविनोद-परायण कुंजविहारी का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

नख से लेकर शिखातक, अनेक प्रकार के भूषणों से विभूषित, तरुणी-मण्डल के मृदङ्ग से युक्त, वीणा-वेणु-झाँझ-मँजीरे आदि वाद्यों की ध्वनि के आरंभ कर देनेपर, यमुनाजी के तटपर, नटराज की लीला से विशिष्ट होकर, कुंजविहारी श्रीकृष्ण नृत्य की अतुलनीय गतियों का विधान करते हुए विराजमान हैं ।।२।।

श्रीकृष्ण केवल निज-प्रियाओं को ही आनन्दित नहीं करते हैं; अपितु, वृन्दावन में स्थित प्राणियों को भी आनन्दित करते रहते हैं, यह वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मयूरगण के षड्ज-नामक स्वर आरंभ कर देनेपर, एवं कोकिलगण के पञ्चम-स्वर से युक्त हो जानेपर; अर्थात् पञ्चम-स्वर उच्चारण-परायण हो जानेपर, उनके आलाप से आकृष्ट होकर, उनको हर्षित करते हुए, नवीन वंशी के द्वारा गान्धार-नामक ग्रामश्रेष्ठ को, निरर्गलतापूर्वक स्वयं भी उच्चारण करते हुए, तीनों लोकों का धैर्य अपहरण करते हुए, कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण कस्तूरी के सुगन्धि को धारण कर, भलीप्रकार विराजमान हैं ।।३।।

प्रेयसीगण के सहित वृन्दावन में विहार करते हुए, कुञ्जविहारी का वर्णन करते हैं कि—

अहिरिपुकृतलास्ये कीचकारब्धवाद्ये
व्रजगिरितटरङ्गे भृङ्गसंगीतभाजि ।
विरचितपरिचर्यश्चित्रतौर्यत्रिकेण
स्तिमितकरणवृत्तिर्भाति कुंजेविहारी ।।५।।

दिशि दिशि शुकशारीमण्डलैर्गूढलीलाः
प्रकटमनुपठद्भिर्निर्मिताश्चर्यपूरः ।
तदतिरहसि वृत्तं प्रेयसीकर्णमूले
स्मितमुखमभिजल्पन्भाति कुंजेविहारी ।।६।।

अपने बायें हाथ की अनुपम अंगुलियों के द्वारा श्रीमती राधिका के दाहिने हाथ की अंगुलियों को धारण कर, कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण पुष्पवाटिका में धीरे-धीरे भ्रमग करते हुए शोभा पा रहे हैं। उस समय विचित्र मधुर स्वरवाली ललिता-विशाखा आदि नवीन व्रजाङ्गनाएँ, उनका हर्षपूर्वक उच्चस्वर से गायन कर रही हैं ।।४।।

हरिदासवर्य गोवर्धनपर्वत ही, प्रियाओं से विशिष्ट श्रीकृष्ग को नृत्य-गीत-वाद्यादि के द्वारा सन्तुष्ट करते रहते हैं, यह वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

श्रीगोवर्धनपर्वत के तटरूप रङ्गस्थल में, मयूरगग के नृत्य आरंभ कर देनेपर, एवं छिद्रोंवाले बाँसों के द्वारा वाद्य आरंभ कर देनेपर, तथा भ्रमरगणों के संगीत आरंभ कर देनेपर, ऐसा प्रतीत होता है कि, मानो गोवर्धनपर्वत विचित्र तौर्यत्रिक (नृत्य-गीत-वाद्य) के द्वारा, श्रीकृष्ण की स्वयं सेवा कर रहा है। उस समय पूर्वोक्त सेवा से, जिनकी समस्त इन्द्रियों का व्यापार, आनन्द से स्तब्ध हो जाता है, वे ही कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण देदीप्यमान हैं ।।५।।

अपनी (श्रीकृष्ण की) ऐकान्तिक गूढलीलाओं को स्पष्ट उच्चारण करनेवाली, एवं निकुञ्ज के चारों ओर क्रीडा करनेवाली शुक-शारिकाओं की मण्डली के द्वारा, जिनको आश्चर्य का प्रवाह निर्मित हो रहा है, एवं शुक-शारिकामण्डली के द्वारा कहे हुए उसी वृत्तान्त को, एकान्त में निज-प्रेयसी राधिका के कर्णमूल में, मन्दहास्ययुक्त श्रीमुख से कहते हुए, कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण निकुञ्ज में शोभा पा रहे हैं। तात्पर्य—हे राधिके ! हम दोनों के गूढचरित्र को, निकुञ्ज के बाहर विचरण करनेवाले, इन शुक आदि पक्षियों ने कैसे

तव चिकुरकदम्बं स्तम्भते प्रेक्ष्य केकी
नयनकमललक्ष्मीर्वन्दते कृष्णसारः।
अलिरलमलकान्तं नौति पश्येति राधां
सुमधुरमनुशंसन्भाति कुंजेविहारी ॥७॥

मदनतरलबालाचक्रवालेन विष्वग्
विविधवरकलानां शिक्षया सेव्यमानः।
स्खलितचिकुरवेशे स्कन्धदेशे प्रियायाः
प्रथितपृथुलबाहुर्भाति कुंजेविहारी ॥८॥

जान लिया ? इस प्रकार कहकर, विस्मित हुए श्रीकृष्ण के मुखपर, मन्दहास का प्रादुर्भाव हो गया ॥६॥

वक्रोक्तिपूर्वक श्रीराधिका के अङ्गों की स्तुति करनेवाले श्रीकृष्ण का वर्णन करते हैं कि—

हे राधिके ! देखो, यह मयूरपक्षी तुम्हारे केशकलाप को देखकर स्तब्ध हो जाता है, अर्थात् राधिका का यह केशकलाप अनेक प्रकार के पुष्पों से चित्रित होकर, मेरे पक्षकलाप को तिरस्कृत करनेवाला है, इस भाव से मयूर निश्चल हो जाता है; एवं कृष्णसार-नामक मृग, तुम्हारे नयनकमलों की शोभा की वन्दना करता है, अर्थात् श्रीराधिका के नेत्रकमलों की शोभा, तो मेरे नेत्रों से भी अतिशय मनोहर है, इस भाव से वह कृष्णसार मृग उन शोभाओं को प्रणाम करता है; और यह भ्रमर, तुम्हारी अलकों के अग्रभाग की स्तुति करता है, अर्थात् राधिका की अलकावली, मेरी चपलता एवं श्यामलता से अतिशय मनोहर है, इस भाव से तुम्हारी अलकावली की स्तुति करता है। इस प्रकार राधिका के प्रति मधुरतापूर्वक कहते हुए, कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण शोभा पा रहे हैं। इस श्लोक में "व्यतिरेक अलंकार" से उपमा व्यञ्जित होती है ॥७॥

अप्राकृत सेवाविलासरूप-स्मर के द्वारा चञ्चल, ललिता-विशाखा आदि गोपबालाओं के मण्डल के द्वारा, अनेक प्रकार की श्रेष्ठ कलाओं के उपदेश से जिनकी सर्वतोभाव से सेवा की जा रही है, अर्थात् ललिता आदि सखियों के द्वारा अनेक प्रकार की शिक्षा देकर भी, जिन (श्रीकृष्ण) की सेवा की जा रही है। बालिकावृन्द से कलाओं की शिक्षा ग्रहण करने की उक्ति के द्वारा, उन कलाओं में बालिकावृन्द की अतिशय प्रवीणता प्रकाशित होती है। यदि कहो कि, सर्वज्ञ श्रीकृष्ण

इदमनुपमलीलाहारि कुंजेविहारि-
स्मरणपदमधीते तुष्टधीरष्टकं यः ।
निजगुणवृतया श्रीराधयाराधितस्तं
नयति निजपदाब्जं कुंजसद्माधिराजः ॥९॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामि-विरचित-स्तवमालायां
श्रीकुंजविहार्यष्टकं (२) समाप्तम् ।

—*—

श्रीकेशवाय नमः ।

श्रीकेशवाष्टकम् ।

नवप्रियकमंजरीरचितकर्णपूरश्रियं
विनिद्रतरमालतीकलितशेखरेणोज्ज्वलम् ।
दरोच्छ्वसितयूथिकाग्रथितवल्गुवैकक्षकं
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥१॥

को उन गोपबालिकाओं के द्वारा कलाओं की शिक्षा असङ्गत है, इसके उत्तर में कहते हैं—वे गोपियाँ, श्रीकृष्ण की परा-नामक स्वरूपशक्ति की स्वरूपभूत हैं, अतः शिक्षा में कोई दोष नहीं है। श्रीशुकदेवजी ने भी कहा है कि—"तदेव ध्रुवमुन्निन्ये तस्यै मानं च बह्वदात्" भा० १०।३३।१० और लटकी हुई अलकावलियों से सुशोभित राधिका के कन्धेपर, अपनी विशाल भुजा को अर्पण करनेवाले, कुञ्जविहारी श्रीकृष्ण विचित्र झाँकीपूर्वक शोभायमान हैं ॥८॥

अष्टक के पाठ का फल निरूपण करते हुए, श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

प्रसन्न-बुद्धिवाला जो व्यक्ति, कुञ्जविहारी की अनुपम लीलाओं से मनोहर, एवं कुञ्जविहारी के स्मरण के स्थानस्वरूप, इस अष्टक का अध्ययन करता है, उस व्यक्ति को अपने गुणों से वरण की हुई, निकुञ्जभवन की पटरानी, श्रीमती राधिका के द्वारा आराधित, निकुञ्जभवन के अधिपति श्रीकृष्ण, अपने चरणकमलों के निकट पहुँचा देते हैं। इस अष्टक में "मालिनी"-नामक छन्द हैं ॥९॥

—*—

आठ श्लोकों के द्वारा श्रीकेशव भगवान् की स्तुति करते हुए, श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं कि—

पिशङ्गि ! मणिकस्तनि ! प्रणतशृङ्गि ! पिङ्गेक्षणे !
मृदङ्गमुखि ! धूमले ! शबलि ! हंसि ! वंशिप्रिये ! ।
इति स्वसुरभीकुलं तरलमाह्वयन्तं मुदा
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥२॥

घनप्रणयमेदुरान् मधुरनर्मगोष्ठीकला-
विलासनिलयान् मिलद्विविधवेशविद्योतिनः ।
सखीनखिलसारया पथिषु हासयन्तं गिरा
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥३॥

श्रमाम्बुकणिकावलीदरविलीढगण्डान्तरं
समूढगिरिधातुभिर्लिखितचारुपत्रांकुरम् ।
उदञ्चदलिमण्डलीद्युतिविडम्बिवक्रालकं
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥४॥

सायंकाल में वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आते हुए, उन श्रीकेशव का मैं भजन करता हूँ कि, नवीन कदंबमञ्जरियों के द्वारा बने हुए कर्णफूलों से जिनकी विचित्र शोभा हो रही है, एवं खिली हुई मालती मालाओं के द्वारा बने हुए मुकुट के द्वारा जो परम मनोहर हैं, तथा थोड़ी खिली हुई यूथिका (जूही) के पुष्पों के द्वारा ग्रथित मनोहर मालाएँ जो जनेऊ की तरह पहने हुए हैं ।।१।।

मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो चारों ओर फैले हुए अपने गोगण को—हे पिशङ्गि ! (भूरे रङ्गवाली), हे मणिकस्तनि ! (घड़े के समान स्तनोंवाली) हे प्रणतशृङ्गि ! (झुके हुए सींगोंवाली), हे पिङ्गेक्षणे ! (पीतवर्ण के नेत्रोंवाली), हे मृदङ्गमुखि ! (मृदङ्ग के समान मुखवाली), हे धूमले ! (मटमैले रङ्गवाली), हे शवलि ! (चितकबरी), हे हंसि !, हे वंशिप्रिये ! इत्यादि संबोधनों के द्वारा हर्षपूर्वक बुलाते हुए, वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आ रहे हैं ।।२।।

मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो गाढ़े प्रेम से स्नेहयुक्त, मधुर परिहास-गोष्ठी में अनेक प्रकार के कलाविलासों के स्थानस्वरूप, एवं अनेक प्रकार की वेषभूषाओं से शोभायमान, अपने सखाओं को सर्वश्रेष्ठ वाणी के द्वारा, वन के मार्गों में हँसाते हुए, वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आ रहे हैं ।।३।।

निबद्धनवतर्णकावलिविलोकनोत्कण्ठया
नटत्खुरपुटाञ्चलैरलघुभिर्भुवं भिन्दतीम् ।
कलेन धवलाघटां लघु निवर्तयन्तं पुरो
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥५॥

पदाङ्कततिभिर्वरां विरचयन्तमध्वश्रियं
चलत्तरलनैचिकीनिचयधूलिधूम्रस्रजम् ।
मरुल्लहरिचञ्चलीकृतदुकूलचूडाञ्चलं
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥६॥

मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो सायंकाल में वृन्दावन से गैया चरा कर, प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आ र हे , उस समय उनके कपोलों का मध्यभाग, पसीने की बिन्दुश्रेणी के द्वारा किञ्चित् सुशोभित है, एवं सखाओं के द्वारा ढूँढ़ कर, एकत्रित की हुई अत्यन्त सुगन्धित नील-पीत-श्वेत-रक्तवर्णवाली पर्वत की धातुओं के द्वारा, मनोहर पत्रांकुर लिखे हुए हैं, एवं जिनकी घुंघराली अलकें, भ्रमण करती हुई भ्रमरमण्डली की कान्ति को तिरस्कृत करनेवाली हैं ॥४॥

मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो खिड़क में बँधे हुए नवीन बछड़ों की श्रेणी को देखने की उत्कण्ठा से नृत्य-सा करते हुए, अपने विशाल खुरपुटों के अग्रभाग से भूमि को विदीर्ण करनेवाली गोश्रेणी को, अपने सुमधुर वेणुनाद से शीघ्रतापूर्वक आगे की ओर से रोकते हुए, वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आ रहे हैं ॥५॥

मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो वन से लौटते समय, वज्र-अंकुश-ध्वज-कमल आदि चरणचिह्नों की श्रेणी के द्वारा, मार्ग की विशिष्ट शोभा कर रहे हैं, एवं जिनकी वनमाला, चलती हुई चञ्चल श्रेष्ठ गोसमूह की चरणरज से धुम्रवर्णवाली हो रही है, तथा जिनके पीतांबर एवं मुकुट का प्रान्तभाग, मन्दपवन की तरङ्गों से चञ्चल-सा हो रहा है, इस प्रकार वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक जो व्रज में आ रहे हैं ॥६॥

विलासमुरलीकलध्वनिभिरुल्लसन्मानसाः
क्षणादखिलबल्लवीः पुलकयन्तमन्तर्गृहे ।
मुहुर्विदधतं हृदि प्रमुदितां च गोष्ठेश्वरीं
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥७॥

उपेत्य पथि सुन्दरीततिभिराभिरभ्यर्चितं
स्मितांकुरकरम्बितैर्नटदपाङ्गभङ्गीशतैः ।
स्तनस्तबकसंचरन्नयनचञ्चरीकाञ्चलं
व्रजे विजयिनं भजे विपिनदेशतः केशवम् ॥८॥

इदं निखिलबल्लवीकुलमहोत्सवोल्लासनं
क्रमेण किल यः पुमान् पठति सुष्ठु पद्याष्टकम् ।
तमुज्ज्वलधियं सदा निजपदारविन्दद्वये
रतिं दददचञ्चलां सुखयताद् विशाखासखः ॥९॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामि–विरचित–स्तवमालायां
श्रीकेशवाष्टकं संपूर्णम् ।

यशोदा के समान वात्सल्य-भाववाली गोपियों को, दूर से ही आनन्द देते हुए आ रहे हैं, यह वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो विलास के हेतुभूत मुरली की सुमधुर ध्वनियों के द्वारा, घर के भीतर बैठी हुई श्रीयशोदा के समकक्ष सभी गोपियों को, क्षणभर में उल्लसित चित्तवाली बना रहे हैं, एवं पुलकित कर रहे हैं, तथा व्रजेश्वरी यशोदामाँ को तो अपने हृदय में वारंवार आनन्दित कर रहे हैं, और जो वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आ रहे हैं ॥७॥

तीव्र अनुरागवाली श्रीराधिका आदि प्रेयसी-गोपियों ने तो उनका साक्षात् दर्शन कर लिया, यह वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

दर्शन की अभिलाषा से अटारियोंपर चढ़ कर, एवं मार्ग में आ कर, व्रजयुवतीश्रेणी के द्वारा मन्दहास्य से युक्त, नृत्य-सा करते हुए, अपने सैकड़ों कटाक्षरूप मालाओं के द्वारा जो पूजित हो रहे हैं, तथा जिनके नेत्ररूप-भ्रमरों का प्रान्तभाग, विचित्र कंचुकियों से विभूषित, उन व्रजयुवतियों के स्तनरूप-पुष्पगुच्छोंपर सञ्चरण कर रहा है, एवं जो वृन्दावन से प्रसन्नतापूर्वक व्रज में आ रहे हैं; मैं, उन श्रीकेशव भगवान् का भजन करता हूँ ॥८॥

श्रीकृष्णदेवाय नमः।

श्रीकृष्णदेवाष्टकम्।

अमित-भवदवाब्धौ दह्यमानं चिरान्मां
कथमपि कलयित्वा पूर्णकारुण्यमूर्तिः।
निज-सहजजनान्ते स्वीचकारेश्वरो य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥१॥

निखिलजन-कुपूयं मां कृपापूर्णचेता
निजचरणसरोजप्रान्तदेशे प्रणीय।
निजभजनपदव्यावर्तयद् भूरिशो य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥२॥

समस्त व्रजगोपीश्रेणी के महोत्सव को उल्लसित करनेवाले, इस अष्टक का जो व्यक्ति, क्रमशः भलीप्रकार पाठ करता है, उज्ज्वल--बुद्धिवाले उस व्यक्ति के लिये, विशाखा के मित्र श्रीकृष्ण, अपने दोनों पदारविन्दों में स्थिर प्रीति को देते हुए, सदा सुखी बनाते रहें; यह अष्टककार का आशीर्वाद है। इस अष्टक में "पृथ्वी"--नामक छन्द हैं ॥८॥

—*—

परिपूर्ण करुणा की मूर्तिस्वरूप जिन सर्वेश्वर ने, अपार संसार-सागर में विषयरूप वडवानल के द्वारा, चिरकाल से जलते हुए मुझ को, किसी प्रकार देखकर, अपने स्वाभाविक-सेवकों के निकट सहर्ष स्वीकार कर लिया; अतः इस जन्म में अथवा इस वृन्दावन में, तो मैं परमपूजनीय-रूपवाले उन्हीं श्रीकृष्णदेव की सेवा करता हूँ। श्लेषपक्ष में यह अर्थ है कि--पूर्णदयामय विग्रहवाले सर्वपुरुषार्थदाता, जिन श्रीरूप गोस्वामी ने, मुझ दीनजन को भी किसी प्रकार अपनी कृपादृष्टि के गोचर बनाकर, अपने बड़े भाई श्रीसनातन गोस्वामी के निकट मुझ को अङ्गीकार कर लिया था; अतः इस वृन्दावन में पूज्यपाद मेरे गुरुदेव, उन्हीं श्रीरूप गोस्वामी की मैं सेवा करता हूँ कि, जिनके श्रीकृष्ण ही इष्टदेव हैं ॥१॥

अहैतुकी करुणा से परिपूर्ण चित्तवाले जिन श्रीकृष्ण ने, अथवा जिन श्रीरूप गोस्वामी ने, समस्त जनमात्र में निन्दित मुझ को, अपने चरणकमलों के निकटवर्ती स्थान में पहुँचा कर, वारंबार अपने

अशुचिमरुचिमन्तं सन्ततं भक्तियोगे
विहितविदितमन्तुं जन्तुजाताधमं च ।
अकृपणकरुणाभिः पाति मां पातिनं य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥३॥
अतिमुनिमति-वृन्दां वृन्दका-काननीयां
निजचरित-सुधालीं बन्धुहृत्सिन्धुपालीम् ।
विधुरिव विधुरं मां तां च संव्यञ्जयद् य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥४॥
स्वपद-नखरमिन्दुं तापदग्धाय दत्ते
मुकुरमजित-भक्त्या स्वं परिष्कुर्वते च ।
अपि किमपि कमित्रे यस्तु चिन्तामणिं मे
तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥५॥

भजनरूप-मार्ग में ही रख लिया; अतः इस वृन्दावन में विद्यमान मैं, पूजनीय सौन्दर्यवाले उन्हीं श्रीकृष्णदेव की, एवं श्रीकृष्ण ही हैं इष्टदेव जिनके, ऐसे पूज्यपाद श्रीरूप गोस्वामी की निरन्तर सेवा करता हूँ ।।२।।

अपवित्र एवं भक्तियोग में निरन्तर रुचि से रहित, तथा शास्त्रविहित सदाचार आदि के जाने हुए विषय में भी, अप्रवृत्तिरूप अथवा अन्यथा आचरणरूप-अपराधवाले, और प्राणीमात्र में अधम, मुझ जैसे पातकी को भी; महनीय रूपवाले जो श्रीकृष्णदेव एवं पूज्यपाद मेरे गुरुदेव जो श्रीरूप गोस्वामी, अपनी उदार करुणाओं के द्वारा, इस वृन्दावन में सर्वतोभाव से सुरक्षित रखते हैं, मैं उन्हीं दोनों की निरन्तर सेवा करता रहता हूँ ।।३।।

चन्द्रमा जिस प्रकार अमृतश्रेणी को प्रकाशित करता है एवं समुद्र को भी बढ़ाता है, उसी प्रकार अपने व्रजवासीरूप-बन्धुओं के हृदयरूप-सिन्धु को बढ़ानेवाली एवं श्रीसनातन गोस्वामी,श्रीरघुनाथदास गोस्वामी, तथा श्रीगोपालभट्ट गोस्वामी आदि अपने बन्धुओं के हृदयरूप-सिन्धु को बढानेवाली, तथा मुनिजनों की बुद्धिश्रेणी से भी दूर रहनेवाली श्रीवृन्दावन-संवंधी अपनी चरित्ररूप-अमृतश्रेणी,जिन्होंने अपने विरह में विकल, मुझ जैसे व्यक्ति के निकट भी भलीप्रकार प्रकाशित कर दी;अतः मैं, सर्ववेद-शास्त्रप्रशंसित रूपवाले श्रीकृष्णदेव की, एवं पूज्यपाद श्रीरूप गोस्वामी की, इस वृन्दावन में विशेष सेवा करता हूँ ।।४।।

अकृत मृतमिवामुं मां प्रसादामृतान्तं
तमथ वलितबाल्यं पादपद्मावलम्बे ।
तदपि कलित-लौल्यं स्नेहदृष्ट्यावृतौ य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥६॥

अहमतिशयतप्तो यः कृपापूरित-ग्लौ-
रहमतिमतिशीतः पाप्मनां पावको यः ।
अहमसमतमस्वान् वेदधामा स्वयं य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥७॥

मैं, इस वृन्दावन में परम प्रशंसनीय रूपवाले उन श्रीकृष्णदेव की एवं श्रीकृष्ण ही जिनके इष्टदेव हैं, पूज्यपाद उन्हीं श्रीरूप गोस्वामी की निरन्तर सेवा करता हूँ कि, जो त्रिविध-तापों से संतप्त अथवा अपने विरहरूप-ताप से संतप्त हुए मेरे लिये, अपने चरणनखरूप-चन्द्रमा का प्रदान करते रहते हैं, तथा विघ्नों के द्वारा अपराजित अपनी भक्ति के द्वारा अथवा विशुद्ध श्रीकृष्णभक्ति के द्वारा, अपने हृदयरूप-दर्पण को निर्मल करनेवाले, तथा कुछ दूसरी वस्तु की कामनावाले मेरे लिये, जो अपनी भक्तिरूप-चिन्तामणि का दान करते रहते हैं ॥५॥

मृतप्राय मुझ को भी जिन्होंने अपने कृपा-प्रसादरूप अमृत का निकटवर्ती बना लिया, एवं चंचलता से युक्त अथवा बालकपन से युक्त मुझ को अपने पादपद्मों के अवलंबन का अधिकारी बना लिया, इतनेपर भी चंचलता करनेवाले मुझ को, जिन्होंने अपने स्नेहमयी दृष्टि के आवरण में सुरक्षित कर लिया; अतः मैं, प्रशंसित रूपवाले उन्हीं श्रीकृष्णदेव की एवं पूज्यपाद श्रीरूप गोस्वामी की, इस वृन्दावन में ही सेवा करता रहता हूँ ॥६॥

मैं, त्रिविध-तापों से अथवा विरहरूप-तापों से विशेष संतप्त हूँ, एवं जो कृपा से परिपूर्ण चन्द्रमा के स्वरूप हैं; मैं अतिशय शीतल अर्थात् आलसी हूँ, एवं जो आलस्यरूप-शीत को दूर करने के लिये, तथा समस्त पापों को जलाने के लिये पावकरूप हैं; मैं अतुलनीय अज्ञानरूप-महाअंधकार से युक्त हूँ, एवं जो स्वयं ज्ञान के प्रकाशरूप तेजवाले स्वयं वेदस्वरूप हैं; अतः मैं, महान् रूपवाले उन्हीं श्रीकृष्णदेव की अथवा श्रीकृष्ण के अन्तरङ्ग-सेवक पूज्यपाद श्रीरूप गोस्वामी की सेवा करता हूँ ॥७॥

निजगुणगणदाम्ना विप्र-मुक्तान्निरुन्धे
प्रणय-विनयजालै रुध्यते तैः समान्तात् ।
अथ च विपथपन्नं त्रायते मद्विधं य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥८॥

उभयभुवनभव्यं यः सदा मे विधाता
निधिवदपि यदीयं पादपद्मं निषेव्यम् ।
अकृपण-कृपया स्वप्रेमदः सर्वदा य-
स्तमिह महितरूपं कृष्णदेवं निषेवे ॥९॥

इति श्रीगौडीयसंप्रदायाचार्यवर्येण हस्तामलकवन्निजहृदयविन्यस्त-
समस्तसद्ग्रन्थतात्पर्येण वेद-वेदाङ्ग-षड्दर्शनेतिहास-पुराण-स्मृति-
वाकोवाक्य-काव्यालङ्कारादि-निखिलशास्त्रपारावाराऽवारपारीणेन
सन्देहग्रन्थिच्छेदनसमर्थेन वैष्णवसिद्धान्तसाम्राज्यसंरक्षकेन
कलियुगपावन-स्वभजन-विभजन-प्रयोजनावतार-श्रीभगवत्-
कृष्णचैतन्यदेव-चरणानुचर--विश्ववैष्णवराजसभा-
सभाजन-भाजन-श्रीरूप-सनातनानुगतेन श्रीवल्लभात्मजेन
जीवजीवातुना श्रीजीवगोस्वामिना विरचितं
श्रीकृष्णदेवाष्टकं संपूर्णम् ।

मैं, इस वृन्दावन में परम प्रशंसनीय रूपवाले उन श्रीकृष्णदेव की, एवं पूज्यपाद उन श्रीरूप गोस्वामी की निरन्तर सेवा करता हूँ कि, जो अपने लोकोत्तर गुणगणरूप-रस्सी के द्वारा, माया के बन्धन से विमुक्त जीवों को भी, अपने प्रेम के बन्धन में बाँध लेते हैं; तथा वे विमुक्त जीव ही जिनके स्नेह एवं विनयरूप–जाल के द्वारा, चारों ओर से स्वयं ही निबद्ध हो जाते हैं; एवं जो विपथगामी मुझ जैसे जीव की भी रक्षा करते रहते हैं ।।८।।

मैं, इस वृन्दावन में परम पूजनीय रूपवाले उन श्रीकृष्णदेव की, एवं श्रीकृष्ण के साथ क्रीडा करनेवाले पूज्यपाद मेरे गुरुदेव उन श्रीरूप गोस्वामी की, निरन्तर सेवा करता हूँ कि, जो मेरे दोनों लोकों के सदैव मङ्गल का विधान करनेवाले हैं, एवं जिनके चरणारविन्द मेरे लिये निधि के समान सेवन करने योग्य हैं, तथा जो अपनी उदार कृपा के द्वारा, सर्वदा अपना प्रेमरूप-पदार्थ देनेवाले हैं । इस अष्टक में "मालिनी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

श्रीकृष्णचन्द्राय नमः ।

श्रीकृष्णचन्द्राष्टकम् ।

अम्बुदाञ्जनेन्द्रनील–निन्दि–कान्ति–डम्बरः
कुंकुमोद्यदर्क–विद्यु दंशु–दिव्यदम्बरः ।
श्रीमदङ्ग–र्चचितेन्दु–पीतनाक्त–चन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥१॥

गण्ड–ताण्डवाति–पण्डिताण्डजेश–कुण्डल–
श्चन्द्र–पद्मषण्ड–गर्व–खण्डनास्यमण्डलः ।
बल्लवीषु वर्धितात्म–गूढभाव–बन्धनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥२॥

नित्यनव्य–रूपवेशहार्द–केलिचेष्टितः
केलिनर्म–शर्मदाधि–मित्रवृन्द–वेष्टितः ।
स्वीय–केलि–काननांशु–निर्जितेन्द्र–नन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥३॥

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जिनकी कान्ति की छटा नूतन-जलधर, अञ्जन, एवं इन्द्रनीलमणि का भी तिरस्कार करनेवाली है; एवं जिनका पीताम्बर कुंकुम, उदय होनेवाले सूर्य, तथा बिजली की किरणों से भी अधिक शोभायमान है; और जिनका श्रीविग्रह कर्पूर-केसर से मिले हुए चन्दन से चर्चित है ॥१॥

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जिनके दोनों कपोलोंपर नृत्य करने में परमकुशल मकरकुण्डल विराजमान हैं, एवं जिनका मुखमण्डल चन्द्रमा तथा कमलसमूहों के गर्व का खण्डन करनेवाला है, और जो व्रज की गोपियों के ऊपर अपने गूढभाव के वन्धन को बढ़ाते रहते हैं ॥२॥

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जिनका रूप-वेषभूषा-प्रेमभरी क्रीडाएँ, एवं प्रेममयी चेष्टाएँ, ये सभी नित्य नवीन हैं; एवं जो खेल के समय परिहासमय वाक्यों से सुख देनेवाले मित्रमण्डल से सदैव घिरे रहते हैं; और जो अपने क्रीडा-कानन श्रीवृन्दावन की किरणों के द्वारा, इन्द्र के नन्दनवन को पराजित करते रहते हैं ॥३॥

प्रेमहेम–मण्डितात्म–बन्धुताभिनन्दितः
क्षौणिलग्न–भाल–लोकपाल–पालि–वन्दितः ।
नित्यकालसृष्ट–विप्र–गौरवालि–वन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥४॥

लीलयेन्द्र–कालियोष्ण–कंस–वत्स–घातक–
स्तत्तदात्म–केलि–वृष्टि–पुष्ट–भक्तचातकः ।
वीर्यशील–लीलयात्म–घोषवासि–नन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥५॥

कुञ्ज–रासकेलि–सीधु–राधिकादि–तोषण–
स्तत्तदात्म–केलि–नर्म–तत्तदालि–पोषणः ।
प्रेम–शील–केलि–कीर्ति–विश्वचित्त–नन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥६॥

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जो प्रेमरूप-सुवर्ण के द्वारा विभूषित मनवाले बन्धुवर्ग से सदैव आनन्दित रहते हैं, अथवा पूर्वोक्त गुणविशिष्ट बन्धुजन जिनका अभिनन्दन करते हैं; एवं जिनके ललाट भूतलपर संलग्न हैं, ऐसे इन्द्र आदि लोकपालों की श्रेणी से जो प्रतिदिन वन्दित होते रहते हैं; और जो अनन्तकोटि ब्रह्माण्डनायक होकर भी, प्रतिदिन प्रातःकाल आदि यथोचित समय में, ब्राह्मण एवं गुरुजनों की श्रेणी की वन्दना करते रहते हैं ।।४।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जो इन्द्र एवं कालियनाग की गरमी को अनायास ठण्डी करनेवाले हैं, तथा कंस एवं वत्सासुर को अनायास मारनेवाले हैं; एवं इन्द्रादिकों के गर्वखण्डन आदि अपनी क्रीडारूप वर्षा के द्वारा, जो भक्तरूप-चातकों को पुष्ट करनेवाले हैं, और जो अपने पराक्रम, विशुद्ध स्वभाव, तथा विशुद्ध लीला आदि के द्वारा, अपने व्रजवासियों को आनन्दित करनेवाले हैं ।।५।।

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जो अपनी निकुञ्जलीला एवं रासलीलारूप-सुधा के द्वारा, श्रीराधिका आदि गोपियों को सन्तुष्ट करनेवाले हैं, एवं जो निकुञ्जलीला एवं रासलीला आदिरूप अपनी क्रीडाओं में होनेवाले हास-परिहास के द्वारा, श्रीराधिका आदिकों की सखियों का पोषण

रासकेलि–र्दशितात्म–शुद्धभक्ति–सत्पथः
स्वीय–चित्र–रूपवेश–मन्मथालि–मन्मथः ।
गोपिकासु नेत्रकोण–भाववृन्द–गन्धनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥७॥

पुष्पचायि–राधिकाभिमर्ष–लब्धि–र्तर्षितः
प्रेमवाम्य–रम्य–राधिकास्य–दृष्टि–र्हर्षितः ।
राधिकोरसीह लेप एष हारिचन्दनः
स्वांघ्रिदास्यदोऽस्तु मे स बल्लवेन्द्र–नन्दनः ॥८॥

अष्टकेन यस्त्वनेन राधिकासुवल्लभं
संस्तवीति दर्शनेऽपि सिन्धुजादि–दुर्लभम् ।
तं युनक्ति तुष्टचित्त एष घोषकानने
राधिकाङ्ग–सङ्ग–नन्दितात्म–पादसेवने ॥९॥

इति श्रीगौर-गोविन्दलीलाया अद्भुतचित्रकारेण विरचित-
चित्रकाव्यालङ्कारसारेण भक्तिभारेण विनम्रताधारेण
कविराजराजेन श्रीकृष्णदासकविराजेन विरचिते
श्रीगोविन्दलीलामृते मध्याह्नलीलायां (१७ सर्ग; ५०-५८)
श्रीकृष्णचन्द्राष्टकं संपूर्णम् ।

करनेवाले हैं, और जो अपने लोकोत्तर प्रेम-स्वभाव-क्रीडा-कीर्ति आदि के द्वारा, सभी के चित्त को आनन्दित करनेवाले हैं ॥६॥

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जो कामगन्धशून्य रासलीला के द्वारा, अपनी विशुद्धभक्ति के सन्मार्ग को दिखानेवाले हैं, एवं अपने विचित्र रूप तथा वेष के द्वारा, कामश्रेणी के मन का मन्थन करनेवाले हैं, और जो गोपियों के ऊपर अपने नेत्र के कोने से ही, भावसमूह की सूचना करनेवाले हैं ॥७॥

गोपराजकुमार वे श्रीकृष्ण, मेरे लिये अपने श्रीचरणों की सेवा प्रदान करें कि, जो पुष्पों का चयन करनेवाली श्रीमती राधिका के स्पर्श की प्राप्ति के विषय में तृष्णा से युक्त रहते हैं, एवं प्रेममयी कुटिलता से रमणीय राधिका के श्रीमुख के दर्शन से जो हर्षित रहते हैं, और जो इस व्रज में राधिका के वक्षःस्थलपर मनोहर चन्दन के लेपस्वरूप हैं ॥८॥

स्वयंभगवते श्रीनन्दनन्दनाय नमः ।

श्रीस्वयंभगवत्ताष्टकम् ।

स्वजन्मन्यैश्वर्यं बलमिह वधे दैत्य-वितते-
यशः पार्थ-त्राणे यदुपुरि महासम्पदमधात् ।
परं ज्ञानं जिष्णौ मुषलमनु वैराग्यमनु यो
भगैः षड्भिः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥१॥

चतुर्बाहुत्वं यः स्वजनि-समये यो मृदशने
जगत्कोटीं कुक्ष्यन्तर-परिमितत्वं स्ववपुषः ।
दधिस्फोटे ब्रह्मण्यतनुत परानन्ततनुतां
महैश्वर्यैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥२॥

जो व्यक्ति, राधिका के प्राणप्यारे एवं लक्ष्मी आदि दिव्याङ्गनाओं के लिये, जिनका दर्शन भी दुर्लभ है, ऐसे श्रीकृष्ण की स्तुति, इस अष्टक के द्वारा करता है, प्रसन्न चित्तवाले श्रीकृष्ण, उस व्यक्ति को व्रजमण्डल के श्रीवृन्दावन में, राधिका के अङ्ग-सङ्ग से प्रसन्न हुए, अपने श्रीचरणों की सेवा में लगा लेते हैं। इस अष्टक में "तूणक"-नामक छन्द हैं ॥८॥

—*—

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य वीर्यस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इति स्मृतः ॥

अर्थात् समस्त ऐश्वर्य के, समग्र वीर्य (बल) के, समस्त यश के, एवं समस्त लक्ष्मी के, तथा संपूर्ण ज्ञान-वैराग्य के भण्डार को 'भग'-शब्द से कहते हैं, वह जिनके पास है, उनको स्वयंभगवान् कहते हैं; अतः इन छः प्रकार के भगों से परिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, हमारे हर्ष के लिये उपयुक्त हो जायँ। जिन्होंने अपने जन्म के समय **ऐश्वर्य** को, एवं दैत्यों की श्रेणी के वध के समय **बल** को, अर्जुन की रक्षा के समय **यश** को धारण किया था, एवं द्वारकापुरी में सुधर्मा-नामक देवसभा को तथा पारिजात को ला कर, महती **संपत्ति** की स्थापना की थी, एवं जिन्होंने अर्जुन के निकट गीता के उपदेश के बहाने, उत्कृष्ट **ज्ञान** की स्थापना की थी, तथा मौषलपर्व में यदुवंशियों का स्वयं विध्वंस करा कर, महान् **वैराग्य** को धारण किया था ॥१॥

बलं बक्यां दन्तच्छदन-वरयोः केशिनि नृगे
नृपे बाह्वोरंघ्रेः फणिनि वपुषः कंस-मरुतोः ।
गिरित्रे दैत्येष्वप्यतनुत निजास्त्रस्य यदतो
महौजोभिः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥३॥

यतो दत्ते मुक्तिं रिपु-विततये यन्नरजनि-
र्विजेता रुद्रादेरपि नत-जनाधीन इति यत् ।
सभायां द्रौपद्या वरकृदतिपूज्यो नृपमखे
यशोभिस्तत् पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥४॥

पहले श्लोक में छः भगों की स्थापना का सूक्ष्मरूपेण वर्णन हुआ था, अब आगे के छः श्लोकों में प्रत्येक 'भग' का क्रमशः विस्तारपूर्वक वर्णन करते हैं—

जिन्होंने अपने प्रादुर्भाव के समय, मथुरापुरी में चतुर्भुजमूर्ति प्रगट की थी, एवं मृद्भक्षण के समय, महावन में माँ यशोदा को अपने मुख के द्वारा, अपनी कुक्षि के भीतर करोड़ों ब्रह्माण्ड दिखाये थे, एवं दधिमथने की गगरी के फोड़ने के समय, असंख्य रस्सियों के द्वारा बाँधनेपर भी, जिन्होंने अपने शरीर की अपरिमितता दिखाई थी, तथा वत्सहरणलीला में ब्रह्मा के निकट, वत्स एवं ग्वालबालों के रूप में, अनन्तविग्रहों को विस्तारित किया था, अतः महान् ऐश्वर्य से परिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरी प्रसन्नता के लिये बने रहें ।।२।।

जिन्होंने पूतना के ऊपर उसका वध करते हुए अपने श्रेष्ठ ओठों का बल, केशिदैत्य के ऊपर उसका वध करते हुए तथा नृगराजा के ऊपर उसका कूप से उद्धार करते हुए अपनी भुजाओं का बल, एवं कालियनाग के ऊपर उसका दमन करते हुए अपने श्रीचरण का बल, कंस एवं तृणावर्त के ऊपर उन दोनों का वध करते समय, अपने शरीर का बल, तथा बाणासुर के युद्ध में शंकर के ऊपर और अन्य दैत्यों के ऊपर उनके वध के समय, अपने अस्त्र का बल विस्तारित किया था; अतः अनन्त महान् बल से परिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरी प्रसन्नता के लिये बने रहें ।।३।।

जो नन्दलाल अपने शत्रुसमुदाय के लिये भी मुक्ति देते रहते हैं, एवं मनुष्यों की तरह जन्म ले कर भी, जो शंकर आदि के ऊपर विजय पानेवाले हैं, एवं जो सर्वतंत्रस्वतंत्र होकर भी, नम्रतापरायण भक्तजनों के अधीन बने रहते हैं, एवं सभा के बीच में नग्न करते समय, द्रौपदी

असंख्याता गोप्यो व्रजभुवि महिष्यो यदुपुरे
सुताः प्रद्युम्नाद्याः सुरतरु-सुधर्मादि च धनम् ।
बहिर्द्वारि ब्रह्माद्यपि बलिवहं स्तौति यदतः
श्रियां पूरैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥५॥

न्यधाद् गीतारत्नं त्रिजगदतुलं यत् प्रियसखे
परं तत्त्वं प्रेम्णोद्धव–परमभक्ते च निगमम् ।
निज–प्राण–प्रेष्ठास्वपि रसभृतं गोपकुलजा–
स्वतो ज्ञानैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥६॥

कृतागस्कं व्याधं सतनुमपि वैकुण्ठमनयत्
ममत्वस्यैकाग्रानपि परिजनान् हन्त ! विजहौ ।
यदप्येते श्रुत्या ध्रुवतनुतयोक्तास्तदपि हा
स्ववैराग्यैः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥७॥

के लिये जो अनन्तवस्त्रप्रदानरूप-वरदान का विधान करनेवाले हैं, तथा राजा युधिष्ठिर के राजसूययज्ञ में सभी पूजनीयजनों के सामने, जो सर्वप्रथम विशेषपूजनीय हुए हैं; अतः अनन्त यशराशि से परिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरी प्रीति के लिये हो जायँ ।।४।।

व्रजभूमि में असंख्य गोपियाँ जिनकी प्रियतमा हैं, एवं द्वारकापुरी में सोलह हजार एक सौ आठ जिनकी पटरानियाँ हैं, प्रद्युम्न आदि अनेक जिनके पुत्र हैं, स्वर्गीय कल्पवृक्ष एवं सुधर्मासभा आदि ही जिनका विशिष्टधन है, जिनके दरवाजे के बाहर भेंटपूजा ले कर खड़े हुए ब्रह्मा आदि देवता जिनकी स्तुति करते रहते हैं; अतः अनन्त संपत्ति-प्रवाह से परिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरे लिये हर्षप्रद बने रहें ।।५।।

जिन्होंने तीनों लोकों में अतुलनीय गीतारूप-रत्न को अपने प्रियसखा अर्जुन में, एवं अपने परमतत्त्व को परमभक्त उद्धव में, तथा अपनी अतिशय प्राणप्यारी गोपाङ्गनाओं में रसपरिपूर्ण सिद्धान्त को प्रेमपूर्वक स्थापित कर दिया; अतः समस्त ज्ञानपरिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरी प्रसन्नता के लिये हर्षित बने रहें ।।६।।

जिन्होंने अपना अपराध करनेवाले जरा-नामक व्याध को भी सशरीर वैकुण्ठ पहुँचा दिया, एवं अपनी ममता के प्रधानस्थान-स्वरूप अपने परिजनों को भी, हाय ! जिन्होंने सहर्ष त्याग दिया; यद्यपि

अजत्वं जन्मित्वं रतिररतितेहारहितता
सलीलत्वं व्याप्तिः परिमितिरहन्ता-ममतयोः ।
पदे त्यागात्यागावुभयमपि नित्यं सदुररी-
करोतीशः पूर्णः स भवतु मुदे नन्दतनयः ॥८॥

समुद्यत्-सन्देह-ज्वरशत-हरं भेषजवरं
जनो यः सेवेत प्रथित-भगवत्ताष्टकमिदम् ।
तदैश्वर्य-स्वादैः स्वधियमतिवेलं सरसयन्
लभेतासौ तस्य प्रिय-परिजनानुग्य-पदवीम् ॥९॥

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुर-विरचित-स्तवामृतलहर्यां
श्रीस्वयंभगवत्ताष्टकं संपूर्णम् ।

भगवान् के ये परिजन, श्रुति के द्वारा नित्यशरीरवाले कहे गये हैं, अहह ! तो भी उनको त्याग दिया; अतः निजी महान् वैराग्य से परिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरी प्रसन्नता के लिये बने रहें ॥७॥

जो नन्दलाल अजन्मा होकर भी जन्म लेने का सा भाव, एवं प्रेमी होकर भी प्रीतिरहित का सा भाव, एवं आसक्त होकर भी निरासक्त का सा भाव, एवं निश्चेष्ट होकर भी सचेष्ट का सा भाव, एवं सर्वव्यापक होकर भी परिमित का सा भाव, तथा अहंता एवं ममता के स्थानपर भी त्याग एवं त्याग का अभाव—इस प्रकार दोनों ही प्रकार के भावों को नित्य अङ्गीकार करते रहते हैं; अतः सर्वेश्वर सर्वशक्तिपरिपूर्ण, स्वयंभगवान् वे नन्दलाल ही, मेरे आनन्द के लिये बने रहें ॥८॥

जो भक्तजन, अपने अन्तःकरण में प्रगट होनेवाले सैकड़ों प्रकार के सन्देहरूप-ज्वर का अपहरण करनेवाले श्रेष्ठऔषधस्वरूप, इस प्रसिद्ध स्वयंभगवत्ताष्टक का प्रेमपूर्वक सेवन करेगा, वह भक्तजन, स्वयं-भगवान् श्रीनन्दनन्दन के छः प्रकार के ऐश्वर्यों के आस्वाद से, अपनी बुद्धि को अत्यन्त सरस बनाता हुआ, उनके प्रियपरिजनों के दासों की पदवी को अवश्य ही प्राप्त कर लेगा, अर्थात् श्रीकृष्ण की सेवा का अधिकार प्राप्त कर लेगा। इस अष्टक में "शिखरिणी"—नामक छन्द हैं ॥९॥

—*—

श्रीकृष्णाय नमः ।

श्रीमंगलगीतम् ।

[गुर्जरी राग-निःसार ताल]

श्रितकमलाकुचमण्डल ! धृतकुण्डल ! ए ।
कलितललितवनमाल ! जय जय देव ! हरे ! ॥१॥

दिनमणिमण्डलमण्डन ! भवखण्डन ! ए ।
मुनिजनमानसहंस ! जय जय देव ! हरे ! ॥२॥

कालियविषधरगञ्जन ! जनरञ्जन ! ए ।
यदुकुल-नलिनदिनेश ! जय जय देव ! हरे ! ॥३॥

मधु-मुर-नरक-विनाशन ! गरुडासन ! ए ।
सुरकुलकेलिनिदान ! जय जय देव ! हरे ! ॥४॥

अमलकमलदललोचन ! भवमोचन ! ए ।
त्रिभुवन-भवन-निधान ! जय जय देव ! हरे ! ॥५॥

हे कमला के अर्थात् सर्वलक्ष्मीमयी श्रीराधिका के पयोधरमण्डल का आश्रय लेनेवाले ! हे मकराकृतिकुण्डल धारण करनेवाले ! एवं मनोहर वनमाला धारण करनेवाले ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो । इस पद में सर्वनायक-शिरोमणि 'धीरललित' श्रीकृष्ण का वर्णन हुआ ॥१॥

हे सूर्यमण्डल को विभूषित करनेवाले ! भवबन्धन को छेदन करनेवाले ! अतएव मननशील मुनिजनों के मनरूप-सरोवर में विहरण करनेवाले हंसस्वरूप ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो । इस पद में 'धीरशान्त'-नायक श्रीकृष्ण का वर्णन हुआ ॥२॥

हे कालियनाग के मद का मर्दन करनेवाले ! अतएव व्रजजनों का मनोरञ्जन करनेवाले ! एवं यदुकुलरूप-कमल को विकसित करने के लिये सूर्यस्वरूप ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो । इस पद में 'धीरोद्धत'-नायक श्रीकृष्ण का वर्णन हुआ ॥३॥

हे मधुदैत्य, मुरदैत्य, एवं नरकासुर का विनाश करनेवाले ! गरुडपर बैठनेवाले ! अतएव देवगणों की क्रीडा के आदिकारण-स्वरूप ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो । इस पद में मायावित्व आदि लक्षणवाले 'धीरोद्धत'-नायक श्रीकृष्ण का वर्णन हुआ ॥४॥

जनकसुताकृतभूषण ! जितदूषण ! ए ।
समरशमितदशकण्ठ ! जय जय देव ! हरे ! ॥६॥

अभिनवजलधरसुन्दर ! धृतमन्दर ! ए ।
श्रीमुखचन्द्रचकोर ! जय जय देव ! हरे ! ॥७॥

तव चरणे प्रणता वयमिति भावय ए ।
कुरु कुशलं प्रणतेषु जय जय देव ! हरे ! ॥८॥

श्रीजयदेवकवेरिदं कुरुते मुदम् ।
मङ्गलमुज्ज्वलगीतं जय जय देव ! हरे ! ॥९॥

इति श्रीनिखिलमहीमण्डल - रसिककविकुलनृपतिचक्र - चक्रवर्तिना
श्रीराधाकृष्णसमुज्ज्वलरसचक्रवर्तिना भागवतचक्रवर्तिना
निजसरससरस्वतीसमास्वादप्रसन्नीकृतदेवचक्रवर्तिना
मधुरकोमलकान्तपदावलिना श्रीजयदेवकविना
विरचितं श्रीमङ्गलगीतं संपूर्णम् ।

हे निर्मल कमलदल के समान विशाल नेत्रोंवाले ! संसार से विमुक्त करनेवाले ! अतएव त्रिभुवनरूप-भवन के आधारस्वरूप ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो। इस पद में 'धीरोदात्त' लक्षणवाले श्रीकृष्णरूप-नायक का वर्णन हुआ ॥५॥

हे रामावतार में जानकी को विभूषित करनेवाले ! एवं दूषण--नामक राक्षस को जितनेवाले ! तथा युद्ध में रावण को शान्त करनेवाले ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो। इसमें भी 'धीरोदात्त'-नायक का ही वर्णन हुआ ॥६॥

हे नूतन-जलधर के समान वर्णवाले श्यामसुन्दर ! एवं मन्दराचल को धारण करनेवाले ! तथा श्रीराधारूप-महालक्ष्मी के मुखरूप--चन्द्रपर आसक्त होनेवाले चकोरस्वरूप ! देव ! हरे ! तुम्हारी बारंबार जय हो। इसमें 'धीरललित'-नायक का मुख्यत्व प्रतिपादन हुआ ॥७॥

हे जयदेव गोस्वामी के संकट हरनेवाले प्रभो ! हम सब भक्त, तुम्हारे श्रीचरणों में विनम्रभाव से पड़े हुए हैं, यह विचार लीजिये; एवं तुम्हारे विनम्र-भक्तों के विषय में कल्याण विधान कीजिये ॥८॥

हे देव ! श्रीजयदेव-कवि के द्वारा विनिर्मित मङ्गलमय एवं निर्मल यह गीत, तुम्हारी प्रसन्नता का संपादन करता रहे; अथवा श्रवण एवं गायन करनेवाले भक्तों के लिये भी यह गीत हर्षित करता रहता है। अतएव हे हरे ! तुम्हारी बारंबार जय-जयकार हो ॥९॥

दशावतारधारिणे श्रीकृष्णाय नमः ।

श्रीदशावतारस्तोत्रम् ।

[मालवगौड राग-रूपक ताल]

प्रलयपयोधिजले धृतवानसि वेदं
विहितवहित्र-चरित्रमखेदम् ।
केशव ! धृतमीनशरीर ! जय जगदीश हरे ! ॥१॥

क्षितिरिह विपुलतरे तिष्ठति तव पृष्ठे
धरणिधरणकिण-चक्रगरिष्ठे ।
केशव ! धृतकूर्मशरीर ! जय जगदीश ! हरे ! ॥२॥

वसति दशनशिखरे धरणी तव लग्ना
शशिनि कलङ्ककलेव निमग्ना ।
केशव ! धृतशूकररूप ! जय जगदीश ! हरे ! ॥३॥

हे केशव ! हे मीन का शरीर धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे भक्तों का क्लेश हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि प्रलय-कालीन समुद्र के जल में, हयग्रीव-नामक दैत्य को मारकर, वेदों का उद्धार तो तुमने ही किया है, एवं उसी समय सप्तर्षियों के सहित सत्यव्रत-नामक राजर्षि को अनायास धारण करने के लिये, नौका का सा चरित्र करनेवाले भी तो तुम ही हो ।।१।।

हे केशव ! हे कच्छप का शरीर धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे भक्तों का मन हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि इस कच्छप अवतार में, पृथ्वी के धारण करने से, अथवा मन्दराचल के धारण करने से, सूखे व्रणसमूह से अतिशय कठिन, एवं अत्यन्त विशाल तुम्हारे पृष्ठभागपर पृथ्वी स्थित है ।।२।।

हे केशव ! हे वराह का रूप धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे भक्तों का पाप हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम्हारे दाँत के अग्रभाग में संलग्न हुई पृथ्वी, चन्द्रमा में निमग्न हुई कलङ्क की कला की तरह निवास करती है ।।३।।

तव करकमलवरे नखमद्भुतशृङ्गं
दलितहिरण्यकशिपुतनुभृङ्गम् ।
केशव ! धृतनरहरिरूप ! जय जगदीश ! हरे ! ॥४॥

छलयसि विक्रमणे बलिमद्भुतवामन !
पदनखनीरजनितजनपावन ! ।
केशव ! धृतवामनरूप ! जय जगदीश ! हरे ! ॥५॥

क्षत्रियरुधिरमये जगदपगतपापं
स्नपयसि पयसि शमितभवतापम् ।
केशव ! धृतभृगुपतिरूप ! जय जगदीश ! हरे ! ॥६॥

वितरसि दिक्षु रणे दिक्पतिकमनीयं
दशमुख-मौलिबलिं रमणीयम् ।
केशव ! धृतरामशरीर ! जय जगदीश ! हरे ! ॥७॥

हे केशव ! हे श्रीनृसिंह का रूप धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे भक्तों का कष्ट हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम्हारे श्रेष्ठकरकमल में अद्भुत अग्रभागवाला एक नख है, जिसने हिरण्यकशिपु के शरीररूप भ्रमर को विदीर्ण कर दिया। इसमें आश्चर्य की बात यही है कि, सामान्यतः कमल के अग्रभाग को भ्रमर ही विदीर्ण करता है; किन्तु यहाँ तो कमल के अग्रभाग ने भ्रमर को ही विदीर्ण कर डाला ॥४॥

हे केशव ! हे श्रीवामन का रूप धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे भक्तों का अहङ्कार हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम, बलिराजा के द्वारा दी हुई पृथ्वी को नापते समय, बलिराजा को छलते रहते हो; अतः अद्भुत वामन रूपवाले हो ! उसी समय तुम्हारे चरण-नख से उत्पन्न हुए गङ्गाजल के द्वारा, तुम समस्तजनों को पवित्र बनानेवाले हो ! ॥५॥

हे केशव ! हे परशुराम का रूप धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे संसार का सन्ताप हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि ब्राह्मणों के अभक्तरूप क्षत्रियों के रुधिरमय जल में (कुरुक्षेत्र में), संसारभर को पाप एवं सन्तापरहित बनाते हुए, आज भी स्नान कराते रहते हो ॥६॥

हे केशव ! हे श्रीरामचन्द्र का विग्रह धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे ऋषियों की व्यथा हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो;

वहसि वपुषि विशदे वसनं जलदाभं
हलहतिभीतिमिलित-यमुनाभम् ।
केशव ! धृतहलधररूप ! जय जगदीश ! हरे ! ॥८॥

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदय ! दर्शित-पशुघातम् ।
केशव ! धृतबुद्धशरीर ! जय जगदीश ! हरे ! ॥९॥

म्लेच्छनिवहनिधने कलयसि करवालं
धूमकेतुमिव किमपि करालम् ।
केशव ! धृतकल्किशरीर ! जय जगदीश ! हरे ! ॥१०॥

क्योंकि तुम रामावतार में लङ्का के रणाङ्गण में, दशों दिक्पालों के द्वारा वांछनीय एवं रमणीय, रावण के मस्तकरूप उपहार को, दशों दिशाओं में वितरण करते रहते हो ॥७॥

हे केशव ! हे श्रीवलराम का रूप धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे दुष्टों का मद हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम, श्रीबलराम अवतार में, गौरवर्णवाले श्रीविग्रह में, सजल-जलद के समान नीलांवर को धारण करते रहते हो, वह नीलांबर, हल के प्रहार से भयभीत हुई, अतएव सम्मिलित हुई, यमुना के समान प्रतीत होता है ॥८॥

हे केशव ! हे बुद्ध का शरीर धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे पाषण्ड का हरण करनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम दया से युक्त हृदयवाले हो ! अतएव अहिंसारूप परमधर्म को माननेवाले हो। अहह ! अतएव पशुओं की हिंसा का प्रदर्शन करनेवाले, यज्ञविधि के श्रुतिसमुदाय की निन्दा करते रहते हो ॥९॥

हे केशव ! हे कल्कि शरीर धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे कलिमल हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; क्योंकि तुम, म्लेच्छ-समुदाय को मारने के निमित्त, दुष्टों का विनाशसूचक धूमकेतु (पूच्छल तारा) की तरह, अनिर्वचनीय कराल करवाल (तलवार) को धारण करते रहते हो ॥१०॥

श्रीजयदेवकवेरिदमुदितमुदारं
शृणु सुखदं शुभदं भवसारम् ।
केशव ! धृतदशविधरूप ! जय जगदीश ! हरे ! ॥११॥

श्रीदशावतारप्रणामः ।

वेदानुद्धरते जगन्ति वहते भूगोलमुद्बिभ्रते
दैत्यं दारयते बलिं छलयते क्षत्रक्षयं कुर्वते ।
पौलस्त्यं जयते हलं कलयते कारुण्यमातन्वते
म्लेच्छान्मूर्च्छयते दशाकृतिकृते कृष्णाय तुभ्यं नमः ॥१२॥

इति श्रीजयदेवगोस्वामि–विरचितं श्रीदशावतारस्तोत्रं संपूर्णम् ।

हे केशव ! हे दश-प्रकार के अवतार धारण करनेवाले ! जगदीश ! हे भक्तों की वासना हरनेवाले हरे ! तुम्हारी जय हो; तुम्हारे श्रीचरणों में मेरी यही विनम्र प्रार्थना है कि, श्रीजयदेव-कवि के द्वारा कहे हुए, इस दशावतार स्तोत्र को तुम प्रेमपूर्वक सुनते रहो; क्योंकि यह स्तोत्र तुम्हारे अवतारों के सारांश से भरा हुआ है, अतएव सर्वश्रेष्ठ, सुखद, एवं मङ्गलदायक है । इस कथन में भक्तों के लिये भी सुनने का आदेश है ।।११।।

हे दश-अवतार धारण करनेवाले श्रीकृष्ण ! तुम्हारे लिये मेरा कोटिशः प्रणाम है; क्योंकि तुम मत्स्य रूप से वेदों का उद्धार करनेवाले हो, कूर्म रूप से संसार को धारण करनेवाले हो, वराह रूप से भूगोल को उठानेवाले हो, श्रीनृसिंह रूप से हिरण्यकशिपु दैत्य को विदीर्ण करनेवाले हो, श्रीवामन रूप से बलि को छलनेवाले हो, श्रीपरशुराम रूप से दुष्ट-क्षत्रियों का विनाश करनेवाले हो, श्रीराम रूप से रावण को जितनेवाले हो, श्रीबलराम रूप से हल को धारण करनेवाले हो, श्रीबुद्ध रूप से जीवोंपर करुणा का विस्तार करनेवाले हो, एवं कल्कि रूप से म्लेच्छों को मूर्च्छित करनेवाले हो ।।१२।।

—*—

श्रीकृष्णाय नमः ।

गीतम् ।

[धनाश्रीः]

देव ! भवन्तं वन्दे ।

मन्मानस-मधुकरमर्पय निज,-पद-पंकज-मकरन्दे ॥ध्रु०॥
यदपि समाधिषु विधिरपि पश्यति, न तव नखाग्रमरीचिम् ।
इदमिच्छामि निशम्य तवाच्युत !, तदपि कृपाद्भुतवीचिम् ॥
भक्तिरुदञ्चति यद्यपि माधव !, न त्वयि मम तिलमात्री ।
परमेश्वरता तदपि तवाधिक,-दुर्घटघटन-विधात्री ॥
अयमविलोलतयाद्य सनातन, कलिताद्भुत-रसभारम् ।
निवसतु नित्यमिहामृतनिन्दिनि, विन्दन् मधुरिमसारम् ॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां गीतमिदं संपूर्णम् ।

हे भगवन् श्रीकृष्ण ! मैं आपकी वन्दना करता हूँ । कृपया मेरे मनरूप-भ्रमर को अपने चरणकमलों के मकरन्द में लगा लीजिये, अर्थात् उसको अपने चरणारविन्दों का रस चखा दीजिये, जिससे वह अन्यत्र आसक्ति न करे । यद्यपि ब्रह्मा भी, समाधियों में भी, तुम्हारे चरणनखों के अग्रभाग की एक किरण को भी नहीं देख पाते हैं, तो भी हे अच्युत ! तुम्हारी कृपा की आश्चर्यमयी तरङ्ग को सुनकर, अर्थात् "न शक्यः स त्वया द्रष्टुमस्माभिर्वा बृहस्पते ! । यस्य प्रसादं कुरुते स वै तं द्रष्टुमर्हति ॥" "अथापि ते देव ! पदाम्बुजद्वयप्रसादलेशानुगृहीत एव" भा० १०।१४।२६ इत्यादि उक्तियों से यह जानकर कि, आपकी प्राप्ति केवल आपकी कृपा से ही साध्य है, यह बात सुनकर, मैं यह चाहता हूँ । हे माधव ! यद्यपि तुम्हारे में मेरी तिलमात्र भी भक्ति प्रगट नहीं हो रही है, तो भी तुम्हारी परमेश्वरता तो अतिशय अघटित घटना का विधान करनेवाली है, उसी के द्वारा मेरा मनोरथ पूरा कर दीजिये । हे सनातन ! तुम्हारे चरणारविन्द, अमृत का भी तिरस्कार करनेवाले हैं; अतः मेरा मनरूप-मधुकर तृष्णारहित होकर, निश्चलतापूर्वक तुम्हारे चरणारविन्दों में ही नित्यनिवास करता रहे, एवं अद्भुतरस के भार को तथा माधुर्य के सार को प्राप्त करता रहे, मेरी यही प्रार्थना है । श्लेषपक्ष में—यह भावार्थ है कि, तुम्हारी कृपा श्रीसनातन गोस्वामी के द्वारा निर्णीत है ।

—*—

श्रीजगन्नाथदेवाय नमः ।

श्रीजगन्नाथाष्टकम् ।

कदाचित् कालिन्दीतट-विपिन-सङ्गीत-तरलो
मुदाभीरीनारी-वदनकमलास्वाद-मधुपः ।
रमा-शम्भु-ब्रह्मामरपति-गणेशार्चितपदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥१॥

भुजे सव्ये वेणुं शिरसि शिखिपिच्छं कटितटे
दुकूलं नेत्रान्ते सहचर-कटाक्षं च विदधत् ।
सदा श्रीमद्वृन्दावन-वसति-लीलापरिचयो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥२॥

महाम्भोधेस्तीरे कनकरुचिरे नीलशिखरे
वसन् प्रासादान्तः सहज-बलभद्रेण बलिना ।
सुभद्रा-मध्यस्थः सकल-सुर-सेवावसरदो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥३॥

कभी-कभी यमुनातीरस्थ श्रीवृन्दावन में वेणुगीत में चञ्चल, एवं गोपवनिताओं के मुखकमल के आनन्दपूर्वक आस्वाद लेनेवाले भ्रमरस्वरूप, तथा लक्ष्मी-शिव-ब्रह्मा-इन्द्र एवं गणेश आदि देवताओं के द्वारा जिनके श्रीचरण पूजित होते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।१।।

वायीं भुजा में वेणु, सिरपर मोरपंख, कटितट में पीताम्बर, एवं अपने नेत्रप्रान्त में सहचरों के कटाक्ष को धारण करनेवाले, तथा श्रीवृन्दावन के निवास की लीलाओं से जो सदैव परिचित हैं, वे ही श्रीजमन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।२।।

महासमुद्र के तीरपर सुवर्ण के समान सुन्दर नीलाचल के शिखर में, अपने बड़ेभाई प्रबल बलदेवजी के साथ, अपने मन्दिर में निवास करनेवाले, एवं सुभद्रा जिनके बीच में विराजमान है, तथा जो समस्त देवताओं को अपनी सेवा का अवसर देते रहते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।३।।

कृपा-पारावारः सजल-जलद-श्रेणि-रुचिरो
रमावाणीरामः स्फुरदमल-पंकेरुहमुखः ।
सुरेन्द्रैराराध्यः श्रुतिगणशिखा-गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥४॥

रथारूढो गच्छन् पथि मिलित-भूदेव-पटलैः
स्तुति-प्रादुर्भावं प्रतिपदमुपाकर्ण्य सदयः ।
दयासिन्धुर्बन्धुः सकलजगतां सिन्धुसुतया
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥५॥

परंब्रह्मापीडः कुवलय-दलोत्फुल्ल-नयनो
निवासी नीलाद्रौ निहित-चरणोऽनन्त-शिरसि ।
रसानन्दी राधा-सरस-वपुरालिङ्गन-सुखो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ॥६॥

जो करुणावरुणालय हैं, सजल-जलदश्रेणी के समान श्यामसुन्दर हैं, एवं रमा तथा सरस्वतीदेवी के साथ विहार करनेवाले हैं, एवं जिनका श्रीमुख विकसित निर्मल कमल के समान है, एवं जो समस्त देवेन्द्रों के आराधनीय हैं, तथा जिनके दिव्यचरित्र श्रुतियों के शिरोभाग में गाये गये हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।४।।

रथ में बैठकर चलते समय, मार्ग में मिलनेवाले ब्राह्मणसमुदाय के द्वारा, पद-पदपर अपनी स्तुतियों के प्राकट्य को सुनकर, जो दया से युक्त हो जाते हैं, अतएव जो दया के सिन्धु एवं समस्त जगत् के बन्धु कहलाते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथदेव, श्रीलक्ष्मीदेवी के सहित मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।५।।

जो मुकुटमणिस्वरूप परब्रह्म हैं, एवं जिनके दोनों नेत्र नील-कमलदल के समान खिले हुए हैं, एवं जो नीलाचल में निवास करनेवाले हैं, एवं शेषजी के सिरपर अपने चरणों को स्थापित करने-वाले हैं, एवं भक्तिरस से ही आनन्दित होनेवाले हैं, तथा श्रीराधिका के सरसशरीर के आलिङ्गन से ही जिनको सुख मिलता है, वे ही श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।६।।

न वै याचे राज्यं न च कनक-माणिक्य-विभवं
न याचेऽहं रम्यां सकल-जन-काम्यां वरवधूम् ।
सदा काले काले प्रमथपतिना गीतचरितो
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ।।७।।

हर त्वं संसारं द्रुततरमसारं सुरपते !
हर त्वं पापानां विततिमपरां यादवपते ! ।
अहो दीनेऽनाथे निहित-चरणो निश्चितमिदं
जगन्नाथः स्वामी नयनपथगामी भवतु मे ।।८।।

जगन्नाथाष्टकं पुण्यं यः पठेत् प्रयतः शुचि ।
सर्वपाप-विशुद्धात्मा विष्णुलोकं स गच्छति ।।९।।

इति श्रीजगन्नाथाष्टकं संपूर्णम् ।

मैं, प्रसन्न हुए श्रीजगन्नाथदेव से राज्य नहीं माँगता, एवं सुवर्ण-मणि-माणिक्यरूप वैभव को भी नहीं माँगता, तथा सकलजन वांछनीय सुन्दरीनारी को भी मैं नहीं चाहता; किन्तु जिनके चारुचरित्र शिवजी के द्वारा समय-समयपर सदैव गाये जाते हैं, वे ही श्रीजगन्नाथ-देव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।७।।

हे सुरपते ! तुम मेरे असार-संसार को शीघ्र ही हर लो । हे यादवपते ! तुम मेरे उत्कृष्ट पापों की श्रेणी को हर लो । अहह ! जो दीन एवं अनाथ के ऊपर ही अपने श्रीचरण को स्थापित करते हैं, यह जिनका निश्चित व्रत है, वे श्रीजगन्नाथदेव मेरे नेत्रमार्ग के पथिक बन जायँ ।।८।।

जो व्यक्ति पवित्र एवं सावधान होकर, पुण्यमय श्रीजगन्नाथाष्टक का पाठ करेगा, वह व्यक्ति सब पापों से रहित, विशुद्ध चित्तवाला होकर, विष्णुलोक को प्राप्त कर लेगा । इस अष्टक में "शिखरिणी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—⁜—

श्रीचौराग्रगण्य-पुरुषाय नमः ।

श्रीचौराग्रगण्यपुरुषाष्टकम् ।

व्रजे प्रसिद्धं नवनीतचौरं, गोपांगनानां च दुकूलचौरम् ।
अनेक-जन्मार्जित-पापचौरं, चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि ॥१॥
श्रीराधिकाया हृदयस्य चौरं, नवांबुदश्यामलकान्तिचौरम् ।
पदाश्रितानां च समस्तचौरं, चौराग्रगण्यं पुरुषं नमामि ॥२॥
अकिञ्चनीकृत्य पदाश्रितं यः, करोति भिक्षुं पथि गेहहीनम् ।
केनाप्यहो भीषणचौर ईदृग्, दृष्टः श्रुतो वा न जगत्त्रयेऽपि ॥३॥
यदीयनामापि हरत्यशेषं, गिरिप्रसारानपि पापराशीन् ।
आश्चर्यरूपो ननु चौर ईदृग्, दृष्टः श्रुतो वा न मया कदापि ॥४॥
धनं च मानं च तथेन्द्रियाणि, प्राणांश्च हृत्वा मम सर्वमेव ।
पलायसे कुत्र धृतोऽद्य चौर, त्वं भक्तिदाम्नासि मया निरुद्धः ॥५॥
छिनत्सि घोरं यमपाशबन्धं, भिनत्सि भीमं भवपाशबन्धम् ।
छिनत्सि सर्वस्य समस्तबन्धं, नैवात्मनो भक्तकृतं तु बन्धम् ॥६॥

व्रज में प्रसिद्ध, माखन चुरानेवाले, एवं गोपियों के चीर चुरानेवाले, अपने आश्रितजनों के अनेक जन्मों के द्वारा उपार्जित पापों को चुरानेवाले—चौराग्रगण्यपुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ ।।१।।

श्रीमती राधिका के हृदय को चुरानेवाले, नूतन-जलधर की श्यामकान्ति चुरानेवाले, एवं निजचरणाश्रितों के समस्त पाप - ताप चुरानेवाले—चौराग्रगण्यपुरुष को मैं प्रणाम करता हूँ ।।२।।

जो अपने चरणाश्रितों को निष्किञ्चन बनाकर, मार्ग में घूमनेवाले अनिकेत - भिक्षुक बना देता है, हाय ! ऐसा भयंकर चोर तो किसी ने तीनों लोकों में भी देखा या सुना नहीं ।।३।।

जिसका नाममात्र लेना भी, पर्वत के समान विशाल पापसमूह को भी समूल हर लेता है, ऐसे आश्चर्य रूपवाला चोर तो मैंने कभी भी कहीं देखा या सुना नहीं ।।४।।

हे चोर ! मेरे धन-मान-इन्द्रियाँ-प्राण एवं सर्वस्व को हर कर, कहाँ भागे जा रहे हो ? क्योंकि आज तो तुम भक्तिरूप-रज्जू से धारण कर, मेरे द्वारा रोक लिये गये हो ।।५।।

क्योंकि तुम, यमराज के भयंकर पाशबन्धन को तो काट देते हो, एवं संसार के भयंकर पाशबन्धन को विदीर्ण कर देते हो, तथा

मन्मानसे तामसराशिघोरे, कारागृहे दुःखमये निबद्धः ।
लभस्व हे चौर ! हरे ! चिराय, स्वचौर्यदोषोचितमेव दण्डम् ॥७॥
कारागृहे वस सदा हृदये मदीये
मद्भक्तिपाशदृढबन्धननिश्चलः सन् ।
त्वां कृष्ण हे ! प्रलयकोटिशतान्तरेऽपि
सर्वस्वचौर ! हृदयान्नहि मोचयामि ॥८॥

इति श्रीचौराग्रगण्यपुरुषाष्टकं संपूर्णम् ।

—※—

श्रीचौराधिपाय नमः ।

श्रीचौराष्टकम् ।

आदौ बकीप्राणमलौघचौरं, बाल्ये प्रसिद्धं नवनीतचौरम् ।
व्रजे चरन्तं च मृदो हि चौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥१॥
विधेः सुरेन्द्रस्य च गर्वचौरं, गोगोपगोपीजनचित्तचौरम् ।
श्रीराधिकाया हृदयस्य चौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥२॥

सभीजनों के समस्त बन्धन को काट देते हो; किन्तु अपने प्रेमीभक्त के द्वारा रचे गये, अपने प्रेममय बन्धन को, तो तुम नहीं काट पाते हो ॥६॥

हे मेरा सर्वस्व चुरानेवाले चोररूप-हरे ! मैंने, आज तुम को अज्ञानरूप-अन्धकारसमुदाय से भयंकर, एवं दुःखमय मेरे मनरूपी–कारागार में बाँध लिया है; अतः अपनी चोरीरूप-दोष के उचित दण्ड को ही, बहुत समयतक प्राप्त करते रहो ॥७॥

हे मेरा सर्वस्व चुरानेवाले कृष्ण ! मेरी भक्तिरूप-पाश के दृढबन्धन में निश्चल होकर, मेरे हृदयरूप-कारागार में सदैव निवास करते रहो; क्योंकि मैं तो अपने हृदयरूप-कारागार से, करोड़ों कल्पों में भी विमुक्त नहीं करूँगा। इस अष्टक में "उपजाति"-नामक छन्द हैं ॥८॥

—※—

पहले पूतना के प्राण एवं पापराशि को चुरानेवाले, बाल्यावस्था में माखन चुरानेवाले, व्रज में विचरण करते समय मृत्तिका चुरानेवाले, एवं प्रसिद्ध चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ॥१॥

नागाधिराजस्य विषस्य चौरं, श्रीसूर्यकन्याखिलकष्टचौरम्।
गोपीजनाज्ञान-दुकूल-चौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥३॥
वत्सासुरादेर्बलमान-चौरं, पित्रोस्तथाबन्धनदुःखचौरम्।
कुब्जार्चनव्याज-मनोज-चौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥४॥
निशाचराणामथ जीवचौरं, जीवात्मनः कल्मषसंघचौरम्।
उपासकानां च विपत्तिचौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥५॥
सुहृत्सुदाम्नोह्यधनत्वचौरं, शोकस्य गत्वा विदुरस्य चौरम्।
कृष्णापटाकर्षकगर्वचौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥६॥
युद्धे हि पार्थस्य विमोहचौरं, पुरःस्थितानां च बलस्य चौरम्।
दिने च मायाबलसूर्य-चौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥७॥

ब्रह्मा एवं इन्द्र के गर्व को चुरानेवाले, गो-गोप एवं गोपीजनों के चित्त को चुरानेवाले, श्रीराधिका के हृदय को चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।।२।।

सर्पराज कालियनाग के विष को चुरानेवाले, श्रीयमुनाजी के समस्त कष्ट को चुरानेवाले, एवं गोपीजनों के अज्ञानरूप-चीर को चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।।३।।

वत्सासुर आदि दैत्यों के बल एवं अभिमान को चुरानेवाले, एवं कंस के कारागारस्थ माता-पिता के बन्धनरूप-दुःख को चुरानेवाले, तथा अपने पूजनके बहाने कुब्जा के मनोज को चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।।४।।

निशाचरों के जीवन को चुरानेवाले, एवं जीवात्माओं के पातकपुञ्ज को चुरानेवाले, तथा अपने उपासकों की विपत्ति को चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।।५।।

अपने मित्र सुदामा की निर्धनता को चुरानेवाले, विदुर के घर में जाकर उनके शोक को चुरानेवाले, एवं द्रौपदी के चीर को हरनेवाले-दुःशासन के गर्व को चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।।६।।

महाभारतयुद्ध में गीता-ज्ञान देकर, अर्जुन के विशालमोह को चुरानेवाले, एवं युद्धस्थल में अपने सामने खड़े हुए सैनिकों के बल को चुरानेवाले, तथा जयद्रथवध के दिन अपनी माया के बल से सूर्य को चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ ।।७।।

चित्तस्य शीलस्य जनस्य चौरं, अनेकजन्मार्जितपापचौरम् ।
दास्यं गतानां च समस्त–चौरं, चौराधिपं कृष्णमहं नमामि ॥८॥

इति श्रीचौराष्टकं संपूर्णम् ।

—*—

श्रीगोविन्दाय नमः ।

श्रीगोविन्दस्तोत्रम् ।

चिन्तामणिप्रकरसद्मसु कल्पवृक्ष-
लक्षावृतेषु सुरभीरभिपालयन्तम् ।
लक्ष्मीसहस्रशतसम्भ्रमसेव्यमानं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१॥

वेणुं क्वणन्तमरविन्ददलायताक्षं
बर्हावतंसमसिताम्बुदसुन्दराङ्गम् ।
कन्दर्पकोटिकमनीयविशेषशोभं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२॥

भक्तजनों के चित्त एवं शील को चुरानेवाले, एवं अनेक जन्मों के द्वारा उपार्जित पापों को चुरानेवाले, तथा अपने सेवकों के समस्त पाप-ताप चुरानेवाले, चौराधिपति श्रीकृष्ण को मैं प्रणाम करता हूँ। इस अष्टक में "उपजाति"–नामक छन्द हैं ।।८।।

—*—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो गोलोक में चिन्तामणि-समुदाय से बने हुए, एवं लाखों कल्पवृक्षों से परिवेष्टित भवनों में कामधेनु-स्वरूपा अनन्त गैयाओं की स्नेहपूर्वक सर्वतोभाव से रक्षा करते रहते हैं, तथा लक्ष्मीस्वरूपा हजारों गोपाङ्गनाओं के सैंकड़ों प्रकार के विलासों द्वारा सेवित होते रहते हैं ।।१।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो अपने नित्य-वृन्दावन में नित्य ही वेणु बजाते रहते हैं, जिनके नेत्र कमलदल के समान विशाल हैं, जो मोरमुकुट धारण करते हैं, जिनका श्रीविग्रह श्याममेघ के समान मनोहर है, एवं जिनकी शोभा करोड़ों कामदेवों की अपेक्षा भी विशेष मनोहर है ।।२।।

आलोलचन्द्रक-लसद्वनमाल्यवंशी-
रत्नाङ्गदं प्रणयकेलिकलाविलासम् ।
श्यामं त्रिभङ्गललितं नियतप्रकाशं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥३॥
अङ्गानि यस्य सकलेन्द्रियवृत्तिमन्ति
पश्यन्ति पान्ति कलयन्ति चिरं जगन्ति ।
आनन्दचिन्मयसदुज्ज्वलविग्रहस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥४॥
अद्वैतमच्युतमनादिमनन्तरूप-
माद्यं पुराणपुरुषं नवयौवनं च ।
वेदेषु दुर्लभमदुर्लभमात्मभक्तौ
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥५॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जिनके मस्तकपर मोरमुकुट विराजमान है, गले में वनमाला, अधरपर वंशी, एवं भुजाओं में रत्नजटित बाजूबन्द शोभायमान हैं, एवं जिनका विलास स्नेहभरे परिहास की कला से युक्त है, तथा जिनका श्याम स्वरूप त्रिभङ्गललित बाँकी झाँकी से युक्त है, एवं जो एकरस रहनेवाले प्रकाश से युक्त हैं ॥३॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जिनका श्रीविग्रह सच्चिदानन्दमय एवं सदा उज्ज्वल है, अतएव जिनके प्रत्येक अङ्ग, प्रत्येक इन्द्रियों की वृत्तिसे युक्त होकर, चिरकाल-तक अनेक ब्रह्माण्डों को देखते हैं, उनकी रक्षा करते हैं, एवं उनका नियमन करते रहते हैं, अर्थात् भगवान् का हाथ भी देख सकता है, बोल सकता है, एवं नेत्र भी रक्षा कर सकते हैं, सुन सकते हैं; इसी प्रकार अन्य इन्द्रियाँ भी अन्य इन्द्रियों के कार्यों को कर सकती हैं । इसीलिए गीता (१३।१४) में उनको "सर्वतः पाणिपादं तत् सर्वतो-क्षशिरोमुखम्" इत्यादि रूपवाला कहा गया है ॥४॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो अद्वैतरूप से कहे जाते हैं, अर्थात् "यह पृथ्वी में अद्वितीय राजा है" इस दृष्टान्त के अनुसार अनन्त-ब्रह्माण्डों में जो अद्वितीय हैं । तात्पर्य—जिनके समान या जिनसे अधिक कोई भी दूसरा नहीं है, एवं जो अपने स्वरूप-सामर्थ्य आदि से, कभी भी च्युत नहीं होते हैं, अथवा

पन्थास्तु कोटिशतवत्सरसंप्रगम्यो
वायोरथापि मनसो मुनिपुङ्गवानाम्।
सोऽप्यस्ति यत्प्रपदसीम्न्यविचिन्त्यतत्त्वे
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥६॥
एकोऽप्यसौ रचयितुं जगदण्डकोटिं
यच्छक्तिरस्ति जगदण्डचया यदन्तः।
अण्डान्तरस्थपरमाणुचयान्तरस्थं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥७॥
यद्भावभावितधियो मनुजास्तथैव
संप्राप्य रूपमहिमासनयानभूषाः।
सूक्तैर्यमेव निगमप्रथितैः स्तुवन्ति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥८॥

जिनके भक्तों का, प्रलयकाल में भी पतन नहीं होता, एवं जो अनादि-अनन्त रूपोंवाले होकर भी, आदि स्वरूप कहलाते हैं, एवं पुराणपुरुष होकर भी, नित्य नवयौवन से युक्त बने रहते हैं, एवं जिनका ज्ञान वेदों में भी दुर्लभ है, अथवा भा० १०।४७।६१ "भेजुर्मुकुन्दपदवीं श्रुतिभिर्विमृग्याम्", "अद्यापि यत्पदरजः श्रुतिमृग्यमेव" इत्यादि दशमस्कन्धीय वचनों के अनुसार, जो वेदों के लिये भी दुर्लभ ही हैं, तथा भा० ११।१४।२१ "भक्त्याहमेकया ग्राह्यः", भा० १०।१४।५ "पुरेह भूमन्" इत्यादि भागवतीय प्रमाणों के अनुसार, अपनी विशुद्ध-भक्ति में, जो सदा सुलभ बने रहते हैं ॥५॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो मार्ग, वायु एवं प्रधान-प्रधान मुनिजनों के मन के लिये भी, करोड़ों वर्षों के प्रयास से गम्य है; वह मार्ग, अचिन्त्य प्रभाववाले जिनके चरणारविन्दों के अग्रभाग में ही वर्तमान है; क्योंकि मणि, मंत्र, एवं औषधियों का प्रभाव जिस प्रकार अचिन्त्य है, उसी प्रकार श्रीगोविन्द का तत्त्व भी अचिन्त्य है। अचिन्त्य-तत्त्व तर्क से भी समझ में नहीं आ पाता है, अतः उसमें तर्क नहीं करना चाहिये ॥६॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जिनकी शक्ति करोड़ों ब्रह्माण्डों की रचना करने के लिये समर्थ है, एवं अनन्त ब्रह्माण्डसमूह भी जिनके भीतर विराजमान हैं, अतः स्वरूपतः जो एक ही हैं; तथा जो ब्रह्माण्डान्तर्वर्ती परमाणुसमूह के भीतर भी स्थित रहते हैं ॥७॥

आनन्दचिन्मयरसप्रतिभावितामि-
स्ताभिर्य एव निजरूपतया कलाभिः ।
गोलोक एव निवसत्यखिलात्मभूतो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥९॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जिनके भाव से भावित बुद्धिवाले भावुक मनुष्यजन, जिनकी कृपा से, उन्हीं के समान रूप-महिमा-आसन-यान एवं वस्त्रभूषण आदि को प्राप्त करके, वेदप्रसिद्ध पुरुषसूक्तों के द्वारा जिनकी स्तुति करते रहते हैं ॥८॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो प्राणीमात्र के आत्मास्वरूप होकर भी, अथवा गोलोक-निवासी अन्य प्रियवर्गों के परमश्रेष्ठ होने के नाते, जीवात्मा की तरह, उनके निकट रहकर भी आनन्दचिन्मयरस, अर्थात् परमप्रेममय उज्ज्वल-नामक रस के द्वारा सराबोर स्वरूपवालीं, एवं निज स्वरूप होने के कारण, ह्लादिनीशक्ति की वृत्तिस्वरूपा गोपियों के साथ, गोलोकधाम में ही निवास करते हैं ।

सर्वव्यापक प्रभु का गोलोक में ही साक्षात् निवास करने का तात्पर्य यह है कि, 'शब्द' आकाशमात्र में सर्वत्र व्यापक होनेपर भी, 'रेडियो'-यन्त्र में ही जिस प्रकार साक्षात् निवास करता है, ठीक उसी प्रकार प्रेममय रेडियोयंत्र-स्वरूप गोलोकवासीजनों के साथ साक्षात् निवास करते हैं, एवं गोलोकवासी प्रियवर्गमात्र की अपेक्षा गोपियों के निकट अधिक, उस प्रकार साक्षात् निवास करते हैं कि, हजारों कोस की दूरीपर रहनेवाला व्यक्ति भी, 'टेलीविजन'-यंत्र में बोलते समय ही जिस प्रकार दिखाई देता है ।

दूसरा कारण यह है कि शक्ति, शक्तिमान् से; एवं कलाएँ, कलावान् से जैसे अलग नहीं रहतीं; उसी प्रकार गोपियाँ भी गोविन्द से अलग नहीं रह पातीं । 'निजरूपतया' का तात्पर्य—नित्य-कान्तारूप से ही गोपियाँ, गोविन्द के निकट गोलोक में रहती हैं; किन्तु प्रकट-लीला की तरह परकीयाभाव से नहीं; क्योंकि "श्रियः कान्ताः कान्तः परमपुरुषः" ब्र० सं० ५।५५ इस उक्ति के अनुसार परम-लक्ष्मीस्वरूपा गोपियों के पक्ष में परकीयाभाव असंभव है । प्रकटलीला में भी जो परकीयाभाव की प्रतीति है, वह योगमाया के द्वारा ही उत्कण्ठा

प्रेमाञ्जनच्छुरितभक्तिविलोचनेन
सन्तः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति ।
यं श्यामसुन्दरमचिन्त्यगुणस्वरूपं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१०॥

रामादिमूर्तिषु कलानियमेन तिष्ठन्
नानावतारमकरोद्भुवनेषु किन्तु ।
कृष्णः स्वयं समभवत् परमः पुमान् यो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥११॥

वर्धनार्थं दिखाई गई है । स्वकीयाभाव का विशेष प्रतिपादन 'श्रीगोपालचम्पूः'* उत्तरचम्पूः; पूरण १२, ६७ से देखने योग्य है । 'गोलोक एव' के 'एव'-कार से यह भाव प्रकाशित होता है कि, श्रीकृष्ण की यह लीला दूसरी जगह नहीं प्रकाशित होती है । गोलोकीयलीला एवं गोलोकधाम का विशाल वर्णन 'श्रीगोपालचम्पूः'* के आदि एवं अन्त में अवश्य देखने योग्य है ।।९।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ कि, जो गोविन्द यद्यपि गोलोक में ही निवास करते हैं, तथापि अचिन्त्यगुण स्वरूपवाले, श्यामसुन्दर विग्रहवाले, जिन गोविन्द को सन्तजन, प्रेम-नामक अञ्जन से रञ्जित, भक्तिरूप नेत्र के द्वारा, अपने अपने हृदयों में सदैव सर्वत्र देखते रहते हैं ।।१०।।

वे ही परिपूर्णतम पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण, कभी-कभी संसार में भी, अपने अंश से स्वयं अवतार लेते हैं, इस भाव को वर्णन करते हुए ब्रह्मा कहते हैं—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, श्रीकृष्ण-नामक जो परमपुरुष अपनी कलाओं के नियम से, अर्थात् शक्तियों के परिमित प्रकाश के द्वारा, श्रीराम आदि मूर्तियों में स्थित होकर, भुवनों में अनेक अवतार धारण करते रहते हैं; किन्तु अट्ठाईसवें

---

*महाकवि श्रीवनमालिदास शास्त्री (श्रीकृष्णानन्दस्वर्गाश्रम, पो० वृन्दावन, जि० मथुरा, उ० प्र०) द्वारा प्रकाशित मूल संस्कृत एवं 'श्रीकृष्णानन्दिनी' हिन्दी भाषाटीका सहित । दोनों खण्डों का मूल्य रु० २२.५० ।

यस्य प्रभा प्रभवतो जगदण्डकोटि-
कोटिष्वशेषवसुधादि विभूतिभिन्नम् ।
तद्ब्रह्म निष्कलमनन्तमशेषभूतं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१२॥

माया हि यस्य जगदण्डशतानि सूते
त्रैगुण्यतद्विषयवेदवितायमाना ।
सत्त्वावलम्बि-परसत्त्व-विशुद्धसत्त्वं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१३॥

द्वापर के अन्तिम में, तो स्वयंभगवान् श्रीकृष्ण ही, परिपूर्णतम रूप से प्रगट होते हैं । प्रमाणं यथा—"मत्स्याश्वकच्छपनृसिंहवराहहंस,-राजन्यविप्रविबुधेषु कृतावतारः । त्वं पासि नस्त्रिभुवनं च यथाऽधुनेश, भारं भुवो हर यदूत्तम वन्दनं ते ॥" भा० १०।२।४० ॥११॥

इस प्रकार सर्वावतारित्वरूप से, श्रीकृष्ण का परिपूर्णत्व कहकर, स्वरूप से भी परिपूर्णत्व कहते हैं—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, कोटि-कोटि ब्रह्माण्डों में, पृथ्वी आदि समस्त विभूतियों से भिन्न-अखण्ड-अनन्त एवं निखिल स्वरूप जो ब्रह्म है; वह ब्रह्म भी, अनेक अवतार लेनेवाले परमप्रभावशाली जिन गोविन्द की प्रभारूप से कहा जाता है । तात्पर्य—ब्रह्म एवं श्रीकृष्ण स्वरूपतः एक ही तत्त्व है, तथापि विशिष्टरूप से साक्षात् प्रगट होने के कारण, श्रीकृष्ण धर्मीरूप से कहे जाते हैं, एवं अविशिष्टरूप से प्रगट होने के कारण, ब्रह्म श्रीकृष्ण का धर्मरूप कहा जाता है; अतः सूर्य एवं सूर्य की प्रभा की तरह श्रीकृष्ण मण्डलस्थानीय हैं, एवं ब्रह्म उनकी प्रभास्थानीय है । प्रभा जिस प्रकार मण्डल के अधीन रहती है, उसी प्रकार ब्रह्म की सत्ता भी श्रीकृष्ण के अधीन है; अतएव गीता (१४।२७) में भी कहा है कि "ब्रह्मणो हि प्रतिष्ठाऽहम्" इत्यादि ॥१२॥

इस प्रकार श्रीकृष्ण के स्वरूपगत माहात्म्य को दिखाकर, आगे के दो श्लोकों से, तद्गत माहात्म्य को दिखाते हैं—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, रजोगुण-तमोगुण-सत्त्वगुण ये तीनों गुण, एवं इन तीनों के विषय का प्रतिपादन करनेवाले वेदों के द्वारा, जिसका विस्तार किया जाता है, ऐसी

आनन्दचिन्मयरसात्मतया मनःसु
यः प्राणिनां प्रतिफलन् स्मरतामुपेत्य ।
लीलायितेन भुवनानि जयत्यजस्रं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१४॥

गोलोकनाम्नि निजधाम्नि तले च तस्य
देवी-महेश-हरि-धामसु तेषु तेषु ।
ते ते प्रभावनिचया विहिताश्च येन
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१५॥

सृष्टिस्थितिप्रलयसाधनशक्तिरेका
छायेव यस्य भुवनानि बिभर्ति दुर्गा ।
इच्छानुरूपमपि यस्य च चेष्टते सा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१६॥

बहिरङ्गाशक्तिरूपा जिनकी माया, अनेक ब्रह्माण्डों की रचना करती रहती है, तो भी उस माया से उनका स्पर्श नहीं है; क्योंकि उनका स्वरूप तो रजोगुण तमोगुण के आश्रयस्वरूप सत्त्वगुण से परे जो विशुद्धसत्त्वगुण है, अर्थात् रजोगुण तमोगुण से रहित चित्‌शक्तिवृत्ति-रूप जो विशुद्धसत्त्वगुण है, उस प्रकार के विशुद्धसत्त्ववाला है । कारण— श्रीकृष्ण में प्रकृति के सत्त्व आदि गुण नहीं रहते हैं; अतः श्रीविष्णु-पुराण में कहा है कि "सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः । स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु" ॥१३॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, जो अपना स्मरण करनेवाले प्राणियों के मन में उपस्थित होकर, एवं आनन्द-चिन्मय-रसमय स्वरूप से प्रतिफलित होकर, अपने लीला-विलास के द्वारा, अनेक भुवनों को निरन्तर अपने वश में करते रहते हैं ॥१४॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, जिस गोविन्द ने गोलोक-नामक अपने धाम में, एवं उसके नीचे क्रमशः विराजमान वैकुण्ठधाम-शिवधाम एवं देवीधाम आदिमें, वे वे लोकोत्तर प्रभावसमुदाय विस्तारित कर दिये हैं । इस श्लोक में देवी-महेश आदि धामों की गिनती, दाहिनी ओर से बायीं ओर माननी चाहिये; अन्यथा शास्त्रप्रसिद्ध धामों की रचना का क्रम नहीं बन पायेगा ॥१५॥

क्षीरं यथा दधि विकारविशेषयोगात्
सञ्जायते न हि ततः पृथगस्ति हेतोः ।
यः शम्भुतामपि तथा समुपैति कार्यात्
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१७॥

दीपार्चिरेव हि दशान्तरमभ्युपेत्य
दीपायते विवृतहेतुसमानधर्मा ।
यस्तादृगेव हि च विष्णुतया विभाति
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१८॥

यः कारणार्णवजले भजति स्म योग-
निद्रामनन्तजगदण्डसरोमकूपः ।
आधारशक्तिमवलम्ब्य परां स्वमूर्तिं
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥१९॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, संसार की उत्पत्ति, रक्षा, एवं प्रलय करने की साधनशक्तिस्वरूपा अतुलनीय दुर्गादेवी, जिन गोविन्द की छाया की तरह अनुगत होकर, अनेक ब्रह्माण्डों का भरणपोषण करती रहती है, तो भी वह दुर्गादेवी स्वतंत्रता के व्यवहार को छोड़कर, जिन गोविन्द की इच्छा के अनुसार ही चेष्टा करती है ।।१६।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, दुग्ध को जमानेवाले जामन के संबंध से, दुग्ध ही जिस प्रकार दधि के रूप में परिणत हो जाता है, एवं वह दधि अपने उपादानकारण-स्वरूप दुग्ध से पृथक् भी नहीं है; उसी प्रकार जो गोविन्द संसार का प्रलयरूप कार्य करने के लिये शंकर के रूप को प्राप्त कर लेते हैं ।।१७।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, जिस प्रकार एक दीपक की शिखा ही, दूसरी बत्ती का संयोग पाकर, दूसरे दीपक के रूप में परिणत हो जाती है, एवं अपने मूलभूत पहले दीपक के समान धर्म को ही प्रकाशित करती रहती है, उसी प्रकार जो गोविन्द, विष्णुरूप से प्रकाशित हो जाते हैं ।।१८।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, अपने रोमकूपों में अनन्तब्रह्माण्डों को धारण करनेवाले जो गोविन्द, आधार-शक्तिरूप शेष-नामक अपनी दूसरी मूर्ति का आश्रय लेकर, कारणसमुद्र के जल में योगनिद्रा का सेवन करते हैं ।।१९।।

यस्यैकनिश्वसितकालमथावलम्ब्य
जीवन्ति लोमविलजा जगदण्डनाथाः ।
विष्णुर्महान् स इह यस्य कलाविशेषो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२०॥

भास्वान् यथाश्मशकलेषु निजेषु तेजः
स्वीयं कियत् प्रकटयत्यपि तद्वदत्र ।
ब्रह्मा य एष जगदण्डविधानकर्ता
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२१॥

यत्पादपल्लवयुगं विनिधाय कुम्भ-
द्वन्द्वे प्रणामसमये स गणाधिराजः ।
विघ्नान् विहन्तुमलमस्य जगत्त्रयस्य
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२२॥

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, गोविन्द के अभिन्नस्वरूप जिन महाविष्णू के, एक श्वास लेने के समय का अवलंबन करके, अपने (महाविष्णु के) रोमकूपों में विद्यमान अनन्तब्रह्माण्डाधिपति जीवित बने रहते हैं, वे महाविष्णु भी, जिन गोविन्द के कलाविशेष कहे जाते हैं ।।२०।।

सूर्यदेव, सूर्यकान्तमणि के नाम से विख्यात अपने पत्थर के टुकड़ों में, अर्थात् सूर्यकान्तमणियों में जिस प्रकार अपने किञ्चित् तेज को प्रकट कर देते हैं, अर्थात् उनके द्वारा दाह आदिक कार्य भी जिस प्रकार स्वयं करते हैं, उसी प्रकार जो गोविन्द, यहाँपर ब्रह्मा होकर, अनेक ब्रह्माण्डों को बनानेवाले बन जाते हैं; मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ ।।२१।।

यदि कोई कहे कि, "सभीजन सर्वविघ्न निवारणार्थ पहले गणेश की ही स्तुति करते हैं, अतः उन्हीं की स्तुति करना योग्य है," इस आशंका को दूर करने के लिये ब्रह्मा कहते हैं कि—

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, पुराणप्रसिद्ध वे गणाधिराज (गणेश), जिन गोविन्द के दोनों पादपल्लवों को प्रणाम करते समय, अपने मस्तक के दोनों कुंभोंपर धारण करके ही, इन तीनों लोकों के विघ्नों का विनाश करने के लिये समर्थ हो पाये हैं । कैमुत्यन्याय से श्रीकपिलदेव ने भी, माता देवहूति के प्रति

अग्निर्मही गगनमम्बु मरुद्दिशश्च
कालस्तथात्ममनसीति जगत्त्रयाणि ।
यस्माद्भवन्ति विभवन्ति विशन्ति यं च
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२३॥

यच्चक्षुरेष सविता सकलग्रहाणां
राजा समस्तसुरमूर्तिरशेषतेजाः ।
यस्याज्ञया भ्रमति सम्भृतकालचक्रो
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२४॥

भगवद्ध्यान वर्णन करते समय, श्रीगोविन्द के भजन-पूजन-स्तवन आदि को दृढ कर दिया है, यथा—"यत्पादनिःसृतसरित्प्रवरोदकेन तीर्थेन मूर्ध्न्यधिकृतेन शिवः शिवोऽभूत्" भा० ३।२८।२२, अर्थात् जिन गोविन्द के चरणारविन्द से निकली हुई नदियों में श्रेष्ठ, श्रीगङ्गा के परमपावन जल को, श्रद्धापूर्वक अपने मस्तकपर धारण कर, स्वयं मङ्गलमय श्रीमहादेवजी, और भी अधिक मङ्गलमय हो गये ।।२२।।

सब देवताओं को छोड़कर, केवल गोविन्द के भजन करने के विषय में, पूर्वोक्त श्लोक में जो सिद्धान्त है, वह उचित ही है; क्योंकि—

अग्नि, पृथ्वी, आकाश, जल, वायु, समस्त दिशाएँ, काल, आत्मा (जीव), एवं मन आदि इन द्रव्यों से बने हुए तीनों लोक भी, जिन गोविन्द से उत्पन्न होते हैं, पुष्ट होते हैं, एवं प्रलयकाल में जिन गोविन्द में ही प्रविष्ट हो जाते हैं; अतः मैं, आदिपुरुष उन्हीं श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ ।।२३।।

यदि कोई कहे कि, "कुछ लोग तो सूर्यदेव को ही सर्वेश्वर कहते हैं" इसके उत्तर में कहते हैं कि—

समस्त ग्रहों के राजा, एवं समस्त देवताओं की मूर्तिस्वरूप, तथा समस्त तेजोमय प्रत्यक्ष दिखाई देनेवाला यह जो सूर्य है, वह भी जिन गोविन्द का नेत्रस्वरूप है; और जिनकी आज्ञा से कालचक्र को धारण कर, अहर्निश भ्रमण करता रहता है; अतः मैं, तो आदिपुरुष उन्हीं श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ। "भीषास्माद्वातः पवते भीषोदेति सूर्यः भीषादग्निश्चेन्द्रश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः" इत्यादि श्रुतियों में भी कहा है कि, जिन गोविन्द के डर से वायु चलता रहता

धर्मोऽथ पापनिचयः श्रुतयस्तपांसि
ब्रह्मादिकीटपतगावधयश्च जीवाः।
यद्दत्तमात्रविभवप्रकटप्रभावा
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२५॥

यस्त्विन्द्रगोपमथवेन्द्रमहो स्वकर्म-
बन्धानुरूपफलभाजनमातनोति ।
कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजां
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२६॥

है, सूर्यदेव यथासमयपर उदय होता है, अग्नि जलता है, इन्द्र वर्षा करता है, मृत्यु भी भागता रहता है। गीता (१५।१२) में भी कहा है कि "यदादित्यगतं तेजो जगद्भासयतेऽखिलम्। यच्चन्द्रमसि यच्चाग्नौ तत्तेजो विद्धि मामकम्।।" संपूर्ण जगत् को प्रकाशित करनेवाला सूर्य में विद्यमान जो तेज है, एवं चन्द्रमा तथा अग्नि में जो तेज है, वह मेरा (श्रीकृष्ण का) ही है, ऐसा समझो।।२४।।

श्रुतिशास्त्रोक्त धर्म, पापों का समुदाय, समस्त वेद, एवं सर्व प्रकार के तप, तथा ब्रह्मा से लेकर कीट-पतङ्गपर्यन्त जीवगण भी, जिन गोविन्द के द्वारा दिये गये वैभव से ही, अपने-अपने प्रभाव को प्रकाशित कर पाते हैं; मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ। गीता (१०।८) में भी कहा है कि, "अहं सर्वस्य प्रभवो मत्तः सर्वं प्रवर्तते। इति मत्वा भजन्ते मां बुधा भावसमन्विताः।। मैं (श्रीकृष्ण) ही सबका उत्पत्तिस्थान हूँ, तथा सब की प्रवृत्ति मेरे द्वारा ही होती है; इस बात को जानकर के ही बुद्धिमान्-जन, भाव से युक्त होकर, मेरा (श्रीकृष्ण का) भजन करते हैं।।२५।।

मैं, आदिपुरुष उन श्रीगोविन्द का भजन करता हूँ कि, जो इन्द्रगोप (गहरे लाल रङ्ग का एक बरसाती कीड़ा) को, अथवा इन्द्र को, अपने-अपने कर्मबन्धन के अनुरूप, फल का भागी वनाते रहते हैं; किन्तु भक्तिमान्-जनों के कर्मों को तो समूल जलाते रहते हैं, यही हर्ष की बात है। भक्तों के प्रति पक्षपात के विषय में गीता (९।२९) में "समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः। ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्।।" "अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।" गीता ९।२२। इन श्लोकों में कहा है कि, मैं (श्रीकृष्ण) सभी प्राणियों में समानभाव

यं क्रोधकामसहजप्रणयादिभीति-
वात्सल्यमोहगुरुगौरवसेव्यभावैः ।
सञ्चिन्त्य तस्य सदृशीं तनुमापुरेते
गोविन्दमादिपुरुषं तमहं भजामि ॥२७॥

इति श्रीब्रह्मसंहितायां पञ्चमाध्याये ब्रह्मकृतं
श्रीगोविन्दस्तोत्रं संपूर्णम् ।

से रहता हूँ; मेरा कोई बैरी या प्यारा नहीं है: तथापि जो व्यक्ति, भक्तिभावपूर्वक मेरा भजन करते हैं; वे मेरे निकट रहते हैं, एवं मैं उनके निकट रहता हूँ। और जो भक्त, अन्यदेवताओं को छोड़कर, अनन्यभाव से मेरा स्मरण करते हुए, मेरी ही उपासना करते हैं; अतः मेरे में ही नित्यसंबंध रखनेवाले, उन भक्तों के योग-क्षेम के भार को, अर्थात् अप्राप्तवस्तु की प्राप्ति, एवं प्राप्तवस्तु की रक्षा के भार को, मैं ही वहन करता रहता हूँ ॥२६॥

क्रोध, काम, सख्य, भय, वात्सल्य, मोह, गुरू के समान गौरव, और दास्यभाव आदि भावों के द्वारा, जिन गोविन्द का स्मरण करके, स्मरण करनेवाले जन, उस-उस भाव के अनुसार, तदनुरूप शरीर को प्राप्त कर चुके हैं; अतः मैं, तो आदिपुरुष उन्हीं श्रीगोविन्द भगवान् का भजन करता हूँ। इस स्तुति से ब्रह्मा के ऊपर प्रसन्न हुए श्रीगोविन्द, ब्रह्मा के प्रति बोले कि, "धर्मानन्यान् परित्यज्य मामेकं भज विश्वसन् । यादृशी यादृशी श्रद्धा सिद्धिर्भवति तादृशी ।।" ब्र० सं० ५।६१ । अन्य सभीधर्मों को छोड़कर, विश्वासपूर्वक केवल मेरा (श्रीकृष्ण का) ही भजन करो; क्योंकि जैसी-जैसी श्रद्धा होती है, वैसी-वैसी ही सिद्धि प्राप्त होती है ॥२७॥

श्रीदामोदराय नमः ।

श्रीदामोदराष्टकम् ।

नमामीश्वरं सच्चिदानन्दरूपं, लसत्कुण्डलं गोकुले भ्राजमानम् ।
यशोदाभियोलूखलाद्धावमानं, परामृष्टमत्यंततो द्रुत्य गोप्या ॥१॥

रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं, कराम्भोजयुग्मेन सातङ्कनेत्रम् ।
मुहुःश्वासकंप-त्रिरेखाङ्ककण्ठ, -स्थितग्रैवदामोदरं भक्तिबद्धम् ॥२॥

इतीदृक्स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे, स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं, पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥३॥

वरं देव ! मोक्षं न मोक्षावधिं वा, न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
इदं ते वपुर्नाथ ! गोपालबालं, सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः? ॥४

इदं ते मुखाम्भोजमत्यन्तनीलै, -र्वृतं कुन्तलैः स्निग्धवक्रैश्च गोप्या ।
मुहुश्चुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे, मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः ॥५॥

नमो देव दामोदरानन्त विष्णो!, प्रसीद प्रभो ! दुःखजालाब्धिमग्नम् ।
कृपादृष्टिवृष्ट्यातिदीनं बतानु, -गृहाणेश ! मामज्ञमेध्यक्षिदृश्यः ॥६॥

कुबेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्वत्, त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च ।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ, न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥७॥

नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने, त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने ।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै, नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ॥८॥

(श्रीहरिभक्तिविलासः १६।१९९-२०६)

इति श्रीपद्मपुराणे रुक्मांगद-मोहिनी-संवादे श्रीसत्यव्रतमुनि-प्रोक्तं
श्रीदामोदराष्टकं संपूर्णम् ।

मैं, सच्चिदानन्दस्वरूप उन श्रीदामोदर भगवान् को नमस्कार करता हूँ कि, जो सर्वशक्तिमान् परमेश्वर हैं; एवं सत्, चित्, आनन्द-स्वरूप श्रीविग्रहवाले हैं। जिनके दोनों कानों में दोनों कुण्डल शोभा पा रहे हैं, एवं जो स्वयं गोकुल में विशेष शोभायमान हैं, एवं जो यशोदा के भय से (माखनचोरी के समय), ऊखल (ओखली) के ऊपर से दौड रहे हैं, और माँ यशोदा ने भी जिनके पीछे शीघ्रतापूर्वक दौडकर, जिनकी पीठ को पकड़ लिया है ॥१॥

श्रीसनातनगोस्वामिकृत 'दिग्दर्शिनी'-टीका का भाष्यानुवादः—
अब मैं, श्रीमती राधिका के सहित श्रीदामोदर भगवान् को प्रणाम करके, श्रीदामोदराष्टक की व्याख्या को संक्षेप से प्रदर्शित करता हूँ। उसमें सर्वप्रथम कुछ प्रार्थना करने के लिये, पहले गोकुल में प्रकाशित, अपनी भगवत्ता के सारस्वरूप तत्त्व, रूप, गुण, लीलादिकों के उत्कर्ष-विशेष को विशेष वर्णनपूर्वक, भजन के आरम्भ में, भक्ति के सहित "नमामि"—शब्द द्वारा नमस्कार करते हैं। वह "नमामि"—पद मंगल के हेतु, सब कर्मों के पहले, दास्यविशेष का विधान करने के कारण, श्लोक के आरम्भ में निर्दिष्ट हुआ है। प्रश्न—किसको नमस्कार करते हो? उत्तर—१. सर्वशक्तिमान्, २. जगत्भर के स्वामी, ३. अपने प्रभु परमेश्वर को। इन तीनोंपक्षों में, सर्वशक्तिमान्-स्वरूप पहलापक्ष तो स्तुति आदि शक्ति के निमित्त एवं जगत्भर के नाथस्वरूप, द्वितीयपक्ष परम वन्दनीयता के निमित्त है, एवं अपने प्रभुरूप तृतीयपक्ष भक्ति की विशेषता के कारण है। प्रश्न—वह परमेश्वर कैसा है? उत्तर—सच्चिदानन्दघन-स्वरूप श्रीविग्रहवाला है। इससे तत्त्वविशेष के द्वारा उत्कर्षविशेष कहा गया। सौन्दर्य की विशेषता के द्वारा उत्कर्षविशेष को कहते हैं—श्रीयशोदा के भय से दौडनेपर, अथवा सर्वदा बालक्रीडा-विशेष में निमग्न होने के कारण कंपित होकर, जिस दामोदर के दोनों कपोलोंपर शोभायमान कर्णस्थित दोनों कुण्डल क्रीडा कर रहे हैं; इस कथनसे श्रीमुख की शोभा का वैशिष्ट्य कहा गया, अथवा शोभायमान गण्डस्थल के चुंबन की महती सुगंधी के कारण, सभी अलंकारों में दोनों कुण्डलों की प्रधानता के लिये, इन दोनों कुण्डलों के द्वारा दूसरे सभी भूषण उपलक्षित होते हैं। इसलिए जिन दामोदर के दोनों कपोलों की शोभा से, दोनों कुण्डल शोभा पा रहे हैं; इससे यह ज्ञान होता है कि, उनके समस्त अङ्ग, भूषणों के भी भूषणस्वरूप हैं। तात्पर्य—भूषणों के द्वारा भगवान् के श्रीअङ्ग की शोभा नहीं बढ़ती; अपितु, श्रीअङ्ग में धारण करने से भूषणों की शोभा बढ जाती है, यही भावार्थ है। अतएव गोपियों ने भी "त्रैलोक्यसौभगमिदं च" भा० १०।२९।४० में कहा है कि, तीनों लोकों में सुन्दर श्रीकृष्ण के इस रूप को देखकर गोसमूह, पक्षीवर्ग, वृक्षपंक्ति, एवं मृगयूथ भी अपने शरीर में पुलकावली धारण कर लेते हैं। उद्धवजी ने भी "यन्मर्त्य-लीलौपयिकं" भा० ३।२।१२ में कहा है कि, सौन्दर्य की पराकाष्ठा-स्वरूप, एवं अपने को भी विस्मित कर देनेवाला श्रीकृष्ण का अङ्ग,

भूषणों का भी भूषणस्वरूप है। अब परिकरविशेष के द्वारा उत्कर्ष की विशेषता कहते हैं। गोकुल में गोपी, गोप, एवं गोवत्सादिकों के वासस्थान में, योग्य स्थानविशेष में, पहले की अपेक्षा भी विशेष उत्कर्ष प्रकाशित करने के लिये, अथवा गोकुल की स्वाभाविक शोभाविशेष द्वारा शोभायमान है। वह शोभायमानता भी "तत्रोपविष्टो भगवान्" भा० १०।३२।१४ में कही गयी है कि, वे श्रीकृष्ण तीनों लोकों की शोभासमूह के एकमात्र आधारस्वरूप श्रीविग्रह को धारण कर, गोपियों की सभा में पूजित होकर शोभा पा रहे हैं। अब लीलाविशेष के द्वारा उनके उत्कर्ष का भेद दिखाते हैं; "यशोदा" इत्यादि श्लोकार्ध द्वारा। माता यशोदा के निकट से भय के कारण, दधिभाण्ड (चलावनी) के तोड़ने के अपराध के भय से, छीके में धरे हुए माखन को चुराने के लिये, ऊखल (ओखली) को औंधा करके, उसके ऊपर चढ़कर, माखन चुराने के पीछे यशोदा को देखकर, ऊखल से उतर कर भागनेवाले—इस विषयमें अधिक जानने की अपेक्षावाले भक्त को "उलूखलांघ्रेरुपरि व्यवस्थितं" भा० १०।९।८-९ दो श्लोकों को देख लेना चाहिये। एक समय श्रीकृष्ण, ऊखल के ऊपर बैठकर, छीके में धरे हुए माखन को स्वेच्छापूर्वक बानरों को दे रहे थे, एवं चोरी के भय से उनके दोनों नेत्र शंका से युक्त थे। इस प्रकार के श्रीकृष्ण को देखकर, माँ यशोदा धीरे-धीरे पीछे से चली आई। उसको लठिया के सहित आती हुई देखकर, श्रीकृष्ण उस ऊखल से शीघ्र ही उतर कर, भयभीत की तरह दौड़ पड़े। तपस्या के द्वारा प्रेरित किया हुआ योगियों का जो चित्त, ब्रह्म में लीन होने को समर्थ होकर भी, जिन श्रीकृष्ण को नहीं पा सका, उन्हीं श्रीकृष्ण को पकड़ने के लिये गोपी-यशोदा पीछे-पीछे दौड़ रही है। पश्चात् वेग से दौड़कर, माँ यशोदा ने उनकी पीठ को पकड़ भी लिया। यहाँपर "अत्यन्त वेग से दौड़कर"—इस वाक्य से श्रीयशोदा के स्तन और नितंबभाग की गुरुता, सौन्दर्यविशेष, एवं स्नेहविशेष सूचित होता है। "गोपी"-शब्द द्वारा प्रेमोक्ति की परिपाटी के क्रम से गोपजातियों का ही वैसा महान् सौभाग्य है, यह ध्वनित हुआ। यशोदा ने श्रीकृष्ण को पकड़ लिया, इस वाक्य से भगवान् का, माँ यशोदा में स्नेहविशेष भी प्रतिध्वनित हो रहा है। यहाँपर "अन्वञ्चमाना जननी" भा० १०।९।१० इस श्लोक का विषय भी अनुसन्धान कर लेना योग्य है। यथा—सुन्दर मध्यभागवाली माँ यशोदा, श्रीकृष्ण के पीछे दौड़ती हुई भी, अपने विशाल एवं चंचल

नितंवभाग के भार से मंदगतिवाली हो गई, एवं वेग के कारण, उनके मस्तकपर स्थित पुष्पावली विखर कर, उनके पीछे दौड़ने लगी। इस प्रकार लाला के पीछे दौड़ते-दौड़ते, उसने श्रीकृष्ण को पकड़ भी लिया ।।१।।

रुदन्तं मुहुर्नेत्रयुग्मं मृजन्तं, कराम्भोजयुग्मेन सातङ्कनेत्रम् ।
मुहुःश्वासकंप-त्रिरेखाङ्ककण्ठ,-स्थितग्रैवदामोदरं भक्तिबद्धम् ॥२॥

मैं, भक्तिरूप रज्जु में वँधनेवाले उन्हीं दामोदर भगवान् को नमस्कार करता हूँ कि, जो माता के हाथ में लठिया को देखकर, रोते-रोते अपने दोनों करकमलों से, अपने दोनों नेत्रों को बारंवार पौंछ रहे हैं; एवं भयभीत नेत्रों से युक्त हैं, तथा निरंतर लंवे-लंबे श्वासों से काँपते हुए, तीन रेखाओं से अंकित जिनके कण्ठ में स्थित मोतियों के हार भी हिल रहे हैं ।।२।।

भाष्यानुवाद :—उसके बाद लीला के वैशिष्टच को कहते हुए "कृतागसं तं" भा० १०।९।११ श्रीकृष्ण, चलावनी का तोड़नारूप अपराध कर चुके हैं, मानो इसी भाव से रोते-रोते, अपने हाथ से दोनों नेत्रों के अंजन की कालिमा पौंछ रहे हैं । अत: भय से कातर नेत्रवाले श्रीकृष्ण को देखती हुई माता, हाथ में पकड़ कर, भय दिखाती हुई, समझाने का उद्योग करने लगी। इस श्लोक का अर्थ कहते हुए "रुदन्तं" इत्यादि श्लोक को कहते हैं। माँ के हाथ में लठिया को देखकर, उसके द्वारा पीटने की आशंका करके, भयभीत का सा भाव प्रदर्शन करके, उस लठिया को त्यागने के लिये रोते हुए, अतएव दोनों करकमलों से एकसाथ दोनों नेत्रों को पौंछते हुए, ये सब बाल्यलीला के स्वभावविशेष से कर रहे थे, अथवा भय के आवेश से तत्काल निकलते हुए आँसुओं को निकालने के लिये, अथवा बहती हुई अश्रुधाराओं को दूर करने के लिये कर रहे थे; क्योंकि जिन श्रीकृष्ण के नेत्र भी जब आतंक एवं शंका से युक्त हैं, तब उनका मन सातंक होगा, इस विषय में तो कहना ही क्या है ? अथवा जिनके दोनों नेत्र भयपूर्वक देख रहे हैं; इसलिए ताड़ना के परिहार के लिये यह भी दूसरी लीला समझनी चाहिये । किंच बारंबार रोने के आवेश से किये गये श्वासों से काँपते हुए, एवं तीन रेखाओं से चिह्नित शंख की तरह, तीन रेखाओं के चिह्नवाले जिनके कण्ठ में, मुक्ताहारादि गले के भूषण हैं, एवं उदर में रस्सी बँधी हुई है । इसके द्वारा "गोपिकोलूखले

दाम्ना" भा० १०।९।१४ यशोदा ने श्रीकृष्ण को प्राकृत-बालक की तरह ऊखल में बाँध दिया", इसका भावार्थ कहा गया। रस्सी के द्वारा श्रीकृष्ण के उदर में, एवं ऊखल में इस प्रकार दोनों ओर वन्धन कहा गया। उसी को अभिव्यक्त करते हुए, भक्तवश्यता की विशेषता से उत्कर्षविशेष को कहते हैं—माता की निजविषयक भक्ति के द्वारा बँधे हुए हैं, अथवा मातृविषयक अपनी भक्ति के द्वारा वन्धन को स्वीकार किये हुए हैं; किन्तु रस्सियों के समूह के वल से नहीं बँधे हैं, कारण सारे व्रज से एकत्रित की हुई अनन्त रस्सियों से, दो अंगुल की पूर्ति न होने के कारण, पहले ही नहीं बँध पाये थे। यह बात कही भी है "तद् दाम बध्यमानस्य ···विस्मिताभवत्" भा० १०।९।१५-१७ अपराध करनेवाले अपने बालक-श्रीकृष्ण,जब बाँधे जा रहे थे, तब वह रस्सी दो अंगुल कम पड़ गई; अतः माँ यशोदा ने उसीमें दूसरी रस्सी जोड़ दी, जोड़ी हुई जो रस्सी थी वह भी, जव दो अंगुल कम पड़ गई, तो दूसरी बाँध दी, इतनेपर भी जो जो रस्सी बाँधी जाती थी, वह प्रत्येक ही, दो अंगुल कम पड़ जाती थी। इस प्रकार यशोदा माता, अपने घर की सव रस्सियों को जोड़ती हुई भी जब नहीं बाँध सकी, तव आखिरकार उसकी भक्तिरूप-रज्जु में ही बँध गये; अथवा श्रीकृष्ण की दामोदरता का हेतु, भक्ति के द्वारा बँधना अथवा वशीभूत होना है, तो भी पूर्वोक्त अर्थ ही निश्चित होता है। किंच "स्वमातुः स्विन्नगात्राया······· भक्तिमतामिह" भा० १०।९।१८-२१ अपनी माता का शरीर पसीना से लथपथ हो गया है, एवं वेणीस्थित पुष्पमाला गिर गई है, अतः उनके परिश्रमविशेष को देखकर, श्रीकृष्ण कृपापूर्वक अपने आप बँध गये। अतः हे प्यारे परीक्षित् ! इस चरित्र से श्रीकृष्ण ने अपनी भक्तवश्यता दिखा दी। वास्तव में जो श्रीकृष्ण सर्वतंत्रस्वतंत्र हैं, एवं ब्रह्माण्डाधिपतियों के सहित, यह समस्त जगत् भी जिनके वश में है, सब प्रकार से विमुक्ति देनेवाले श्रीकृष्ण से, गोपी-यशोदा ने जिस प्रसन्नता का लाभ किया था; उस प्रसन्नता को ब्रह्मा, शंकर, एवं अपने अंग में निवास करनेवाली लक्ष्मी ने भी नहीं प्राप्त किया। इस कारण यशोदानन्दन भगवान् श्रीकृष्ण, भक्तिवाले प्राणियों को जिस प्रकार सुखपूर्वक मिल जाते हैं, उस प्रकार आत्मभूत ज्ञानियों के लिये भी नहीं मिल सकते; इन्हीं वाक्यों का "भक्ति" से बँधते हैं, यही अर्थ है। तथा "देवर्षिर्मे प्रियतमो" भा० १०।१०।२५ देवर्षि नारद मेरे अतिशय प्रिय हैं, अतएव उन महात्मा ने कुबेर के दोनों पुत्रों के प्रति, जिस प्रकार अनुग्रह

प्रकाशित किया है, मैं उसी प्रकार कार्य सिद्ध करूँगा, इत्यादि वाक्य का अर्थ भी, श्रीनारद की भक्ति की अपेक्षा यमलार्जुन भंजनादि, वह-वह लीला भी इस वाक्य के द्वारा सूचित हो गई ।।२।।

इतीदृक्स्वलीलाभिरानन्दकुण्डे, स्वघोषं निमज्जन्तमाख्यापयन्तम् ।
तदीयेशितज्ञेषु भक्तैर्जितत्वं, पुनः प्रेमतस्तं शतावृत्ति वन्दे ॥३॥

मैं, उन्हीं दामोदर भगवान् को फिर भी प्रेमपूर्वक सैंकड़ोंबार प्रणाम करता हूँ कि, जो इस प्रकार की बाल्यलीलाओं के द्वारा, अपने समस्त व्रज को, आनन्दरूप सरोवर में गोता लगवा रहे हैं, एवं अपने ऐश्वर्य को जाननेवाले ज्ञानियों के निकट, भक्तों के द्वारा अपने पराजय के भाव को प्रकाशित करते हैं ।।३।।

भाष्यानुवाद:—अब गुणविशेष के द्वारा उत्कर्षविशेष कहते हैं—"इतीदृक्" इस प्रकार भक्तवश्यता से, अथवा इस प्रकार की दामोदर की लीला के समान परम मनोहर, अपनी दूसरी असाधारण बाल्यलीलाओं के द्वारा, "गोपीभिः···प्रीतिमावहन्" भा० १०।११।७-८ गोपियों के द्वारा प्रोत्साहित होकर, भगवान् श्रीकृष्ण कभी-कभी, साधारण बालकों की तरह नाचने लग जाते हैं, और कभी-कभी कठपुतली की तरह गोपियों के वशीभूत होकर, एवं विमुग्ध होकर गायन करने लग जाते हैं । कभी गोपियों की आज्ञा से काठ की चौकी को, वाटों को, एवं श्रीनन्दबाबा की चरणपादुकाओं को उठा लाते हैं । और अपने व्रजवासियों की प्रीति को बढ़ाते हुए, अपनी भुजाओं की ताल ठोकते हैं; इत्यादिरूप से कही हुई अपनी लीलाओं के द्वारा अपने व्रज को, अर्थात् अपने व्रजवासी समस्त प्राणीमात्र को, आनन्दरसमय गंभीर जलाशयविशेष में, विशेष सरावोर करते हुए, इससे "अपने जनों की प्रीति को बढ़ाते हुए" इसका भाव कह दिया । अथवा "घोष" अर्थात् कीर्ति, किंवा माहात्म्य का उच्चस्वर से कीर्तन । अपना अथवा अपने संबंधी, गोप-गोपी आदिकों का, जिस प्रकार उच्चस्वर से कीर्तन हो सके, उस प्रकार स्वयं ही आनन्दकुण्ड में निमग्न होकर, परमसुखविशेष का अनुभव करते हुए, यह अर्थ हुआ । किंच उन्हीं बाल्यलीलाओं के द्वारा, उनके ऐश्वर्यज्ञान-परायण जनों में, भक्तों के द्वारा पराजित होना, अर्थात् अपनी भक्तवश्यता को प्रसिद्ध कराते हुए, तात्पर्य—मैं, भक्तिपरायण जनों के ही वशीभूत हूँ, किन्तु ज्ञानपरायण ज्ञानियों के वशीभूत नहीं हूँ, इस बात को जनाते हुए । इस उक्ति से "दर्शयंस्तद्विदां" भा० १०।११।९ श्रीकृष्ण इस जगत् में, अपने ऐश्वर्य

को जाननेवाले जनों के निकट, अपनी भक्ताधीनता को दिखाते हुए क्रीडा करते हैं, इसका अर्थ दिखा दिया। "तद्विदां" इत्यादि का भावार्थ यह है कि, उन भगवान् को जो जानते हैं, उन भगवद् ज्ञानपरायण व्यक्तियों के प्रति, अथवा भगवान् के परमभक्तों के प्रभाव को जाननेवालों के निकट ही, अपनी भक्तवश्यता को प्रगट करते हुए, किन्तु दूसरे बहिर्मुखों के प्रति नहीं; क्योंकि वैष्णवों के माहात्म्यविशेष से अनभिज्ञ, केवल ज्ञानपरायण व्यक्तियों के निकट, भक्ति की विशेषता एवं उसके माहात्म्य को परमगोपनीय होने के नाते, प्रकाशित करना अयोग्य कहा है। अतएव "तद्विदां" इस शब्द में, सेवकों की वश्यता को जाननेवाले विज्ञजनों को समझना। इसलिए प्रेमपूर्वक भक्तिविशेष से सैंकड़ोंबार जिस प्रकार आवृत्ति हो, उसी प्रकार उन्हीं दामोदर भगवान् को मैं सैंकड़ोंबार बारंबार वन्दना करता हूँ। अतः भक्तों का अवश्य करणीय, भक्ति का प्रकारविशेष जो वन्दन है, वही हमारा प्रार्थनीय है; किन्तु ऐश्वर्यज्ञानादि नहीं हैं, यही भावार्थ है ।।३।।

वरं देव ! मोक्षं न मोक्षावधिं वा, न चान्यं वृणेऽहं वरेशादपीह ।
इदं ते वपुर्नाथ ! गोपालबालं, सदा मे मनस्याविरास्तां किमन्यैः ?।।४।।

हे देव ! आप सब प्रकार के वरदान देने में समर्थ हैं, तो भी मैं आपसे मोक्ष, अथवा मोक्ष का पराकाष्ठास्वरूप श्रीवैकुण्ठलोक, अथवा और वरणीय दूसरी किसी वस्तु की प्रार्थना नहीं करता हूँ। मैं तो केवल यही प्रार्थना करता हूँ कि, हे नाथ ! मेरे हृदय में तो आपका यह बालगोपालरूप श्रीविग्रह सदैव प्रगट होता रहे। इससे भिन्न दूसरे वरदानों से मुझे क्या प्रयोजन ? ।।४।।

भाष्यानुवादः—इस प्रकार उत्कर्षविशेष वर्णन के द्वारा स्तुति करके प्रार्थना करते हैं—हे देव ! हे परमद्योतमान ! हे मधुरलीला-विशेष-परायण ! आप सब प्रकार के वर देने में समर्थ हो, तो भी आपसे चतुर्थपुरुषार्थ मोक्ष अथवा मोक्ष की अवधि, अर्थात् परमसीमारूप धनविशेष, सुखात्मक श्रीवैकुण्ठलोक, एवं दूसरे श्रवणादि भक्तिरूप प्रार्थनीय वर को, अथवा दूसरों के द्वारा वरणीय वस्तु को वररूप से, इस श्रीवृन्दावनधाम में वरण नहीं करता हूँ। श्लोकगत "इह" इस पद का दूसरें वाक्यों से भी संबंध कर लेना चाहिये। यहाँपर मोक्ष आदि तीनों पदार्थों की क्रमशः उत्तरोत्तर श्रेष्ठता जाननी चाहिये। यथा—उनमें मोक्ष की अपेक्षा वैकुण्ठलोक की श्रेष्ठता, श्रीवृहद्भागवतामृत के उत्तरखण्ड में स्पष्ट ही लिखी है—वैकुण्ठलोक

की अपेक्षा श्रवणादि प्रकार की श्रेष्ठता "कामं भव स्ववृजिनैर्निरयेषु" भा० ३।१५।४९ इत्यादि वाक्य से श्रवणादि की सिद्धि के द्वारा, कूकर-सूकर आदि नरकादि योनि में भी, जहाँ-तहाँ सर्वत्र वैकुण्ठवास की सिद्धि हो जाती है; तब क्या वरण करना चाहते हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि, हे नाथ ! इस वृन्दावन में वर्णित श्रीगोपालवालरूपवाला आपका श्रीविग्रह, हमारे मन में सदैव प्रगट होता रहे, अर्थात् अंतर्यामीरूप से सदा स्थित रहनेपर भी, साक्षात् की भाँति, सर्वांग सौन्दर्यादि प्रकाशनपूर्वक प्रगट होता रहे। यदि कहो कि, मोक्षादि पदार्थ भी परमोपादेय हैं, अतः इन को भी वरदानरूप से वर लो। इसके उत्तर में कहते हैं कि, अन्य वरदानों से प्रयोजन नहीं है, अर्थात् मोक्षादि से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि आपके श्रीविग्रह का प्रकाश ही सर्वानन्दस्वरूप है, अतएव उसकी सिद्धि से सभी सिद्धियाँ सिद्ध हो जाती हैं; तथा उसकी अप्राप्ति में, अपने अभीष्ट की सिद्धि न होने से, विशेष करके तुच्छ वस्तु के लाभ द्वारा, शोकविशेष की उत्पत्ति के कारण, दूसरे लाभों से क्या प्रयोजन ? यह भावार्थ है। अथवा यदि मोक्षादि नहीं वरण करते हो, तो परम अपेक्षित हमारी चतुर्भुज आदि मूर्ति के दर्शन, एवं संभाषण आदि वर ही ग्रहण कर लो। इसके उत्तर में कहते हैं कि, दूसरे वरदानों से मुझे प्रयोजन ही क्या है ? क्योंकि मेरे हृदय में, आपके शोभामय श्रीविग्रह की सर्वदा स्फूर्ति में ही, मेरी अत्यन्त प्रीति है; अन्यत्र नहीं है, यह भाव है। आन्तरिक दर्शन का माहात्म्य, श्रीवृहद्भागवतामृत के उत्तरखण्ड में, तपोलोक में श्रीपिप्पलायन योगेश्वर के द्वारा स्पष्टरूप से कह दिया है। इस प्रकार श्रीसत्यव्रतमुनि द्वारा की हुई प्रार्थना भी, स्तुतिरूप में ही परिणत हो रही है; क्योंकि इस श्लोक में, सर्वोत्कृष्टरूप से श्रीदामोदर रूप की ही प्रार्थना की गयी है। इस प्रकार आगे के श्लोकों में भी प्रार्थना की गयी है ।।४।।

इदं ते मुखांभोजमत्यन्तनीलै,-र्वृ तं कुन्तलैः स्निग्धवक्रै श्च गोप्या ।
मुहुश्च ुम्बितं बिम्बरक्ताधरं मे, मनस्याविरास्तामलं लक्षलाभैः ॥५॥

और हे देव ! आपका यह जो मुखारविन्द अत्यन्त श्यामल, स्निग्ध, एवं घुँघराले केशसमूह से आवृत है; तथा बिंवफल के समान रक्तवर्ण के अधरोष्ठ से युक्त है, एवं माँ यशोदा जिसको बारंबार चूमती रहती है; वही मुखारविन्द, मेरे मनमन्दिर में प्रगट विराजमान होता रहे। दूसरे लाखों प्रकार के लाभों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है ।।५।।

भाष्यानुवादः—उस श्रीविग्रह में भी आपके परम मनोहर श्रीमुखारविन्द को ही, विशेषरूप से देखना चाहता हूँ । इसी बात को "इदं ते" इत्यादि श्लोक के द्वारा कहते हैं । कभी ध्यान में अनुभव किया गया, जो अनिर्वचनीय सौन्दर्यादि था, उसीका निर्देश करते हैं कि, आपका श्रीमुख ही कमलस्वरूप है, अतः प्रफुल्ल कमलाकरत्व, निखिल संतापहारित्व, परमानन्द रसवत्व आदि गुणों के द्वारा, वह श्रीमुखकमल ही, मेरे हृदय में वारंवार प्रगट होता रहे । वह श्रीमुखकमल अत्यन्त नील अर्थात् परम श्यामल, स्निग्ध अर्थात् चिक्कण, वक्र अर्थात् घुँघराले केशों के द्वारा, अर्थात् घुँघराली अलकावलियों के द्वारा ऊपर घूमते हुए भ्रमरसमूह से परिवेष्टित, कमल की तरह आच्छादित है; "गोपी"—श्रीयशोदा अथवा श्रीराधिका द्वारा बारंवार चुंबित है; क्योंकि पाठ क्रम के अनुसार, "मुहुः"—शब्द का संबंध यहींपर है । अतः परमधन्य श्रीयशोदा एवं श्रीराधिकारूप गोपी के द्वारा बारंबार चुंबित, वही मुखारविन्द, मेरे मन में एकवार भी तो प्रगट हो जाय, अथवा पूर्वश्लोकगत "सदा"–शब्द का इस श्लोक में भी, अनुकर्षण होने से, अर्थ की प्रबलता से, सदैव प्रगट होता रहे, यही अन्वयार्थ होगा । और वह मुखकमल बिंबफल के समान रक्तवर्णवाले अधरों से युक्त है; अतः उसकी प्राप्ति हो जानेपर, मुझे लाखों प्रकार के फलों की प्राप्ति से भी, कोई प्रयोजन नहीं है; क्योंकि यह श्रीमुखकमल ही सर्वपुरुषार्थमय है ।।५।।

नमो देव दामोदरानन्त विष्णो!, प्रसीद प्रभो ! दुःखजालाब्धिमग्नम् ।
कृपादृष्टिवृष्ट्यातिदीनं बतानु,-गृहाणेश ! मामज्ञमेध्यक्षिदृश्यः ॥६॥

हे देव ! हे दामोदर ! हे अनन्त ! हे सर्वव्यापक प्रभो ! आपके लिये मेरा नमस्कार है । आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइये । मैं, दुःखसमूहरूप समुद्र में डुबा जा रहा हूँ । अतः हे सर्वेश्वर ! अपनी कृपादृष्टिरूप अमृतवृष्टि के द्वारा अत्यन्त दीन, एवं मतिहीन मुझ को, अनुगृहीत कर दीजिये, एवं मेरे नेत्रों के सामने साक्षात् प्रगट हो जाइये ।।६।।

भाष्यानुवादः—इस प्रकार स्तुति के प्रभाव से, तत्काल प्रगट हुए प्रेमविशेष के द्वारा, साक्षात् देखने की इच्छा से युक्त होकर, उस दर्शन में भी श्रीभगवन्नामसंकीर्तन को ही परमसाधन मानते हुए, श्रीसत्यव्रतमुनि "नमो" इत्यादि द्वारा कातरतापूर्वक प्रार्थना करते हैं । इस श्लोक में "तुभ्यम्" इस पद का अध्याहार कर लेना चाहिये । वह

पद भय, गौरव आदि के द्वारा, एवं प्रेम की विकलता के कारण, साक्षात् प्रयोग नहीं किया है। हे प्रभो! हे मेरे ईश्वर! आप मेरे ऊपर प्रसन्न हो जाइये। प्रसन्नता को ही कहते हैं कि, "दुःख"-सांसारिक अथवा संसार के दर्शन से उत्पन्न; उसका जो "जाल" अर्थात् परंपरा; वह दुःखसमुदाय की परंपरा ही अनन्त होने के नाते, मानो समुद्रतुल्य है। मैं, सांसारिक दुःखसमुदायरूप उसी समुद्र में निमग्न हूँ, अतएव महादीन, परमपीडित हूँ, अथवा उसमें श्रेष्ठ सहाय-साधनादि से हीन होने के कारण परम अकिंचन हूँ, अथवा मुमूर्ष या जीते ही मरे के समान; एवं उस विषय में अज्ञानी, अर्थात् मृत्यु के प्रतीकार आदि में अनभिज्ञ हूँ; अतः आपकी कृपापूर्वक जो दृष्टि अर्थात् निरीक्षण; उसकी वृष्टि अर्थात् परंपरा के द्वारा; अर्थात् कृपादृष्टिरूप अमृतमयी वृष्टि के द्वारा, मेरे ऊपर अनुग्रह कर दीजिये। तात्पर्य—संसार-सागर से मेरा उद्धार करके, मुझे जीवित कर दीजिये। उसी भाव को व्यक्त करते हैं—"अक्षिदृश्य" हो जाइये, अर्थात् मेरे नेत्रों के सामने प्रगट हो जाइये। इस प्रकार प्रार्थना के क्रम से प्रार्थना कर दी; किन्तु प्रार्थनीय वस्तु की परम दुर्लभता के कारण, पहले ही उसका सहसा निर्देश करना योग्य नहीं है, और आन्तरिक दर्शन की अपेक्षा साक्षात् दर्शन का माहात्म्य, श्रीभगवत् पार्षदों ने न्यायपूर्वक कहा है। जिसको श्रीबृहद्भागवतामृत के उत्तरखण्ड के द्वारा विशेषतापूर्वक जान लेना चाहिये। उसमें भी "हे देव! अर्थात् हे दिव्य रूप!" यह संबोधन ही दर्शन की इच्छा में कारण है; और "हे दामोदर!" यह संबोधन भक्तवात्सल्य की विशेषता के कारण, साक्षात् दर्शन की योग्यता में कारण है। अतः "हे अनन्त!" यह संबोधन जिससे भक्त का कभी अन्त नहीं होता है, अतः आप अनन्त कहलाते हो। यह कृपादृष्टि द्वारा अनुग्रह करने में हेतु है। "हे प्रभो!" अर्थात् हे अचिन्त्य, अनन्त, अद्भुत, महाशक्तियुक्त!" यह संबोधन इन्द्रियों के अग्राह्य होनेपर भी, नेत्रों के द्वारा दर्शन की योग्यता की संभावना में हेतु है, एवं "हे ईश!" अर्थात् "हे परम स्वतंत्र!" यह संबोधन अयोग्य के प्रति भी, उस प्रकार की कृपा करने में, दूसरे किसी व्यक्ति की भी अपेक्षा के अभाव में जानना चाहिये; और "हे विष्णो!" अर्थात् "हे सर्वव्यापक! अथवा हे वृन्दावन के निकुंज-पुंज आदि में, एवं श्रीगोवर्धन की गुफाओं में प्रविष्ट होने के स्वभाववाले!"यह संबोधन नेत्रों के द्वारा साक्षात् दर्शन देने के लिये; आपको दूर आगमन आदि का कुछ भी श्रम नहीं होगा,

इस भाव को व्यक्त करता है; अथवा "हे अनन्त!" अर्थात् "हे अपरिच्छिन्न, हे विष्णो—हे सर्वव्यापिन्!" तथापि "हे दामोदर!" इत्यादि परम वात्सल्यविशेष द्वारा, आपके लिये कोई भी कार्य अशक्य नहीं है, यह ध्वनि निकलती है ॥६॥

कुबेरात्मजौ बद्धमूर्त्यैव यद्वत्, त्वया मोचितौ भक्तिभाजौ कृतौ च।
तथा प्रेमभक्तिं स्वकां मे प्रयच्छ, न मोक्षे ग्रहो मेऽस्ति दामोदरेह ॥७॥

हे दामोदर! आपने ऊखल से बँधे हुए श्रीविग्रह के द्वारा ही, नलकुबर एवं मणिग्रीव-नामक कुबेरपुत्रों को, जिस प्रकार विमुक्त एवं भक्तियुक्त कर दिया था; उसी प्रकार मेरे लिये भी, अपनी प्रेमभक्ति दे दीजिये; क्योंकि मेरा आग्रह तो आपकी इस प्रेमभक्ति में ही है, किन्तु मोक्ष में नहीं है ॥७॥

भाष्यानुवादः—इस प्रकार प्रेमविशेष से परमोत्कण्ठा के साथ, साक्षात् दर्शन की प्रार्थना करके, उसी कारण तत्काल उत्पन्न प्रेमभक्ति की विशेषता से, उनकी परम दुर्लभता मानते हुए, उसमें भी परम उपायस्वरूप प्रेमलक्षणाभक्ति को जानकर, अथवा एकबार के दर्शन में, मन की अतृप्ति एवं भावि-विरहदुःख की आशंका करके, प्रभु को सदैव वश में करने के लिये, केवल प्रेमलक्षणाभक्ति को ही, मुख्य उपाय समझ कर; उसमें भी "मैं परम अपराधी हूँ, मेरे लिये उस प्रेमलक्षणाभक्ति की प्राप्ति किस प्रकार संभव है?" ऐसी आशंका करके एवं भगवान् के भक्तवात्सल्यगुण की महिमा से, समस्त असंभव कार्य भी संभव हो सकते हैं; ऐसा निश्चय करके, मोक्ष की आशा छोड़कर, "कुबेरात्मजौ" इत्यादि श्लोक से, प्रेमभक्ति की ही याचना करते हैं। माँ यशोदा के द्वारा, ऊखल में बाँधी हुई मूर्ति के द्वारा, अर्थात् परम मनोहर श्रीविग्रह के द्वारा उन दोनों यमलार्जुनों के मध्य में, स्वयं प्रवेश करने के कारण, परमसुन्दर लीलादि विशिष्ट, श्रीहरि के साक्षात् दर्शन, एवं स्पर्शन आदि की सूचना दे दी। "मोचितौ"—शब्द से श्रीनारदजी के शाप से, एवं संसार-सागर से भी, उन दोनों कुबेरपुत्रों को विमुक्त कर दिया, केवल इतना ही अर्थ अभिप्रेत नहीं है; किन्तु उन दोनों के लिये प्रेमलक्षणाभक्ति भी दे दी, यह "भक्तिभाजौ कृतौ"-शब्द से कह दिया, अर्थात् जो भक्ति का ही सेवन करते हैं, तात्पर्य—परमसाध्यरूप से आश्रय लेते हैं, किसी प्रकार भी त्यागते नहीं हैं, वे दोनों इस प्रकार के बना दिये; इस प्रकार प्रेमलक्षणाभक्ति भी दे दी, यही भावार्थ अभिप्रेत है। देखो, श्रीभगवान् का वचन भी "सञ्जातो

मयि भावो वामीप्सितः परमोऽभवः" भा० १०।१०।४२ अर्थात् तुम दोनों का अपेक्षित परमभाव अर्थात् प्रेम, मेरे में भली प्रकार उत्पन्न हो ही गया है, जिसके द्वारा पुनर्जन्म अथवा सांसारिक-दुःख प्राप्त न हो सकेगा। हे दामोदर! उसी प्रकार "स्वकां" (स्वकीय) अर्थात् एकमात्र तुम्हारे चरणारविन्दों की आश्रयस्वरूप, अथवा इस दामोदर रूप को प्रत्यक्ष करानेवाली प्रेमलक्षणाभक्ति, मुझे विशेषरूप से दे दीजिये। यदि कहो कि, इस प्रेमलक्षणाभक्ति में ही तुम्हारा इतना आग्रह क्यों है? कुबेर के पुत्रों की तरह मोक्ष को भी ग्रहण कर लो, अन्यथा जन्म-मरणादिरूप संसार उपस्थित हो जायगा। इसके उत्तर में कहते हैं कि, इस प्रेमलक्षणाभक्ति में ही मेरा विशेष आग्रह है; किन्तु मोक्ष में मेरा आग्रह नहीं है, अर्थात् प्रेमभक्ति द्वारा संसार का ध्वंस यदि होता है, तो भले ही हो जाय; यदि नहीं होता है, तो भले ही न हो; इस विषय में मेरी कोई अपेक्षा नहीं है। यहाँपर गूढ भावार्थ यह है कि, अपने हाथ में चिन्तामणि के स्थित हो जानेपर, सर्व कार्य स्वयं ही सिद्ध हो जायगा, अतः केवल मोक्षमात्र तुच्छ द्रव्य के ग्रहण से क्या लाभ? अथवा हे दामोदर! स्वकीय प्रेमभक्ति प्रदान कीजिये। इस प्रकार रज्जु द्वारा उदर में बँधे हुए भगवान् के निकट, प्रेमभक्ति की प्रार्थना के द्वारा, उन्हीं के उदर में सर्वदा दामबन्धन के आग्रह की आशंका करके कहते हैं कि, मोक्ष में अर्थात् दामवन्धन से आपकी मुक्ति के विषय में मेरा आग्रह नहीं है क्या? अपितु, है ही। किन्तु "इह" अर्थात् इस दामोदर रूप में ही अपनी असाधारण प्रेमभक्ति मुझे दे दीजिये; अथवा "इह" इस वृन्दावन में प्रेमलक्षणाभक्ति दे दीजिये; क्योंकि इस वृन्दावन में ही, उस प्रेमलक्षणाभक्ति के सुखविशेष का आविर्भाव होता है, एवं प्रादुर्भावविशेष भी होता है, एवं श्रीहरि का साक्षात् दर्शनविशेष भी, वह प्रेमभक्ति यहीं करा देती है, तथा इस वृन्दावन में ही विहार करनेवाले श्रीहरि के दर्शन की इच्छाविशेष भी उत्पन्न होती है। उसी वृन्दावन में सदा निवास की प्रार्थना भी जान लेनी चाहिये। गौतमीयतंत्र में भी "वृन्दावने वसेद्धीमान् यावत् कृष्णस्य दर्शनम्" ऐसा कहा है, अर्थात् बुद्धिमान् का कर्तव्य है कि, जबतक श्रीकृष्ण का दर्शन प्राप्त हो, तबतक श्रीवृन्दावन में वास करता रहे ॥७॥

नमस्तेऽस्तु दाम्ने स्फुरद्दीप्तिधाम्ने, त्वदीयोदरायाथ विश्वस्य धाम्ने ।
नमो राधिकायै त्वदीयप्रियायै, नमोऽनन्तलीलाय देवाय तुभ्यम् ॥८॥

हे देव ! प्रकाशमान दीप्तिसमूह के आश्रयस्वरूप आपके उदर में बँधी हुई रज्जु के लिये, एवं जगत् के आधारस्वरूप आपके उदर को भी मेरा बारंबार प्रणाम है। और आपकी परमप्रेयसी श्रीराधिका के लिये मेरा प्रणाम है, तथा अनन्त लीलावाले देवाधिदेव आपके लिये भी मेरा कोटिशः प्रणाम है ॥८॥

भाष्यानुवादः—इस प्रकार स्तुति को समाप्त करते हुए, अपने प्रार्थित विषय की सिद्धि के लिये, अथवा भक्ति की विशेषता के द्वारा, श्रीहरि के असाधारण परिकर, अवयव, एवं परिवार आदि प्रत्येक को, पृथक् पृथक् नमस्कार करते हुए कहते हैं कि, हे दामोदर ! आपके दाम के लिये, अर्थात् उदर के बन्धनरूप महापाश के लिये नमस्कार है। वह रज्जु तेज की आश्रयस्वरूप है। इस प्रकार उस रज्जु की भी ब्रह्मघनस्वरूपता अभिप्रेत है। उसके बाद आपके उदर के लिये नमस्कार है; क्योंकि पाशवन्धन के द्वारा सौन्दर्यादि, वात्सल्यादि, एवं वाल्यलीला आदि का विशेषरूप से प्रादुर्भाव भी उसी उदर से हुआ है; और वह उदर चराचर प्रपंचरूप समस्त विश्व का आधारस्वरूप है; क्योंकि चतुर्दश भुवनात्मक कमल का प्रादुर्भाव तो उस उदर से ही हुआ है, और माता के प्रति, दो बार विश्वरूप का दर्शन भी, उस उदर में ही कराया है। इस प्रकार आपके उदर के बन्धन से विश्वमात्र का बन्धन हो गया। श्रीयशोदा माँ ने विश्वमात्र को अपने वश में कर लिया, यह भाव ध्वनित हो गया, तथा परमेश्वर का बन्धन असंभव होनेपर भी, बन्धन स्वीकार करने से, भगवान् का भक्तवात्सल्यविशेष तथा बन्धन द्वारा, प्रपंच की संकुचित भाव से स्थिति आदि का समावेश, तर्क के अगोचर होने के कारण, ऐश्वर्यविशेष भी ध्वनित हो गया। रज्जु को नमस्कार करने के बाद, उदर को जो नमस्कार करना है, वह उदर के ऊपर रज्जु की वर्तमानता के कारण से, अथवा क्रमशः उत्तरोत्तर उत्कर्ष बताने की इच्छा से है। अब श्रीहरि के प्रियतमजनों की कृपा से, वांछातीत समस्त पदार्थ भी, अनायास सुसिद्ध हो जाते हैं, इस भाव से भगवती श्रीमती राधिका को प्रणाम करते हैं। श्रीराधिका के प्रणाम से, सभी गोपियों उपलक्षित हो जाती हैं, अर्थात् राधिका को प्रणाम करने से, सभी गोपियों का प्रणाम सिद्ध हो जाता है; अथवा यहाँपर उन सब गोपियों में, श्रीराधिका ही मुख्यतम कही गयी हैं। "श्रीराधिका" यह नाम सर्वदा श्रीहरि की आराधनाविशेष करने के कारण सार्थक है, अतएव वे तुम्हारी प्रियतमा हैं; अथवा "राधिका"

यह रूढिसंज्ञा है, इसलिए आराधना आदि की अपेक्षा से रहित होकर भी, वह राधिका आपके नित्य प्रिया हैं। "त्वदीय प्रियायै" (त्वदीया अपि सर्वे जनाः प्रियास्त्वत्प्रीया यस्याः, किमुत वक्तव्यं त्वमिति) अर्थात् आपके सभी भक्तजन, आपके प्रीतिपात्र होने के कारण, जिन को प्रिय लगते हैं; फिर आप, उन राधिका को प्रिय लगेंगे, उस विषय में तो कहना ही क्या है ? इस प्रकार श्रीकृष्ण में, राधिका का प्रेमविशेष सूचित हो गया। उनके लिये मेरा नमस्कार है, अथवा तुम्हारी प्रियतमा राधिका के लिये मेरा नमस्कार है। भावार्थ यह है कि, जिस भक्त को तुम प्रिय लगते हो, वह भी जगद् वन्दनीय हो जाता है। फिर राधिका तो आपकी ही प्रिया है, अतः उनके लिये मेरा नमस्कार है। तदनन्तर राधिका के सहित, परम प्रशंसनीय रासलीला आदि को अन्त में वर्णन करने की इच्छा करते हुए, उसको भी परम गोपनीय होने के कारण, स्पष्ट अभिव्यक्त न करते हुए, "मधुरेण समापयेत्" इस न्याय के अनुसार, संकेत से कुछ दिग्दर्शन करते हुए कहते हैं कि, अनन्त-लीलावाले ! लोकोत्तर देवाधिदेव आपके लिये मेरा प्रणाम है। यहाँपर "देवाय"—शब्द से श्रीहरि की लोकोत्तरता के कारण, उनकी लीलाओं की भी अलौकिकता अभिप्रेत है, अथवा श्रीराधिका के सहित निरन्तर क्रीडापरायण, अतएव अनन्त-लीलावाले आपके लिये नमस्कार है। इस प्रकार व्रजसंबंधी सभी लीलाएँ उद्दिष्ट हो गयीं। उन सभी लीलाओं के लिये मेरा नमस्कार है, यह भावार्थ है ।।८।।

दामोदराष्टकं नाम स्तोत्रं दामोदरार्चनम् ।
नित्यं दामोदराकर्षि पठेत् सत्यव्रतोदितम् ।।

पाद्मे; ह० भ० वि० १६।१९८

दामोदर भगवान् के पूजनस्वरूप एवं दामोदर भगवान् को आकर्षित करनेवाले, तथा सत्यव्रत-नामक मुनि के द्वारा कथित, अथवा अनादिकाल से सिद्ध होकर भी, सत्यव्रतमुनि के द्वारा प्रकटित, इस "दामोदराष्टक" का नित्यप्रति पाठ करना चाहिये। इस अष्टक में "भुजङ्गप्रयात"—नामक छन्द हैं।

दामोदराष्टकवरे लिखितं हि भाष्यं, श्रीमत्सनातनमहोदयविज्ञवर्यैः ।
तस्यैव भावमखिलं परिपातुकाम,-ष्टीकामिमां लिखितवान् वनमालिदासः।।

—*—

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।

श्रीराधाकृष्णयोरष्टकालीयलीला-स्मरणमंगलस्तोत्रम् ।

याम-भजन पद्धतिः ।

प्रथम-याम कीर्तन

[निशान्तलीलाभजन—श्रद्धा]

[६ दण्ड = २.२४ मिनट; ३.२२ से ५.४६ मिनटतक]

रात्र्यन्ते त्रस्तवृन्देरित-बहुविरवैर्बोधितौ कीरशारी-
पद्यैर्हृद्यैरहृद्यैरपि सुखशयनादुत्थितौ तौ सखीभिः ।
दृष्टौ हृष्टौ तदात्वोदित-रतिललितौ कक्खटीगीः-सशंकौ
राधाकृष्णौ सतृष्णावपि निजनिजधाम्न्याप्ततल्पौ स्मरामि ॥१॥
(गोविन्दलीलामृते १।१०)

मैं, उन श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता हूँ कि, जो दोनों, रात्रि के अन्त में "दिवस हो जानेपर राधाकृष्ण की गुप्त-शृङ्गारमयी लीलाएँ अनधिकारीजनों के द्वारा भी जान ली जायँगी" इस कारण भयभीत हुई वृन्दादेवी के द्वारा, प्रेरित किये हुए अनेक प्रकार के पक्षियों की मधुरध्वनियों के द्वारा, तथा शुक-शारिका के द्वारा कर्णप्रिय होने से मनोहर, एवं वियोगजनक होने से अप्रियपद्यों के द्वारा जगाये गये हैं, एवं सुखमयी शय्या से उठे हुए जिन दोनों को, श्रीललिता आदि अन्तरङ्गसखियों ने परस्पर हर्षित एवं तत्कालोचित-रति से मनोहर देखा है। उसके बाद जो दोनों, वहींपर स्थित होकर, फिर भी विलास की तृष्णा से युक्त होकर भी 'कक्खटी'-नामक बानरी की बोली से शंकित होकर, अपने-अपने भवन में शय्यापर पहुँच गये ॥१॥

देखिया अरुणोदय, वृन्दादेवी व्यस्त हय, कुञ्जे नाना रब कराइल ।
शुक-शारी पद्य शुनि, उठे राधा-नीलमणि, सखीगण देखि हृष्ट हैल ॥
कालोचित सुललित, कक्खटिर रबे भीत, राधाकृष्ण सतृष्ण हइया ।
निज निज गृहे गेला, निभृते शयन कैला, दुँहे भजि से लीला स्मरिया ॥

एइ लीला स्मर आर गाओ कृष्णनाम ।
कृष्णलीला प्रेमधन पाबे कृष्णधाम ॥

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दांबुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥
(पद्यावल्याम् २२)

संकीर्तन हैते—पाप-संसार-नाशन ।
चित्तशुद्धि, सर्वभक्तिसाधन-उद्गम ॥
कृष्णप्रेमोद्गम, प्रेमामृत-आस्वादन ।
कृष्णप्राप्ति, सेवामृत-समुद्रे मज्जन ॥
(चैतन्यचरितामृत अ० २०, १३-१४)

झाँपि-लोफा

पीतवरण कलिपावन गोरा । गाओयइ ऐछन भाव-विभोरा ॥१॥
चित्तदर्पण - परिमार्जनकारी । कृष्णकीर्तन जय चित्तविहारी ॥२॥
हेला - भवदाव - निर्वापणवृत्ति । कृष्णकीर्तन जय क्लेशनिवृत्ति ॥३॥
श्रेयः - कुमुदविधु-ज्योत्स्नाप्रकाश । कृष्णकीर्तन जय भक्तिविलास ॥४॥
विशुद्ध विद्यावधू-जीवनरूप । कृष्णकीर्तन जय सिद्धस्वरूप ॥५॥
आनन्दपयोनिधि - वर्धनकीर्ति । कृष्णकीर्तन जय प्लावनमूर्ति ॥६॥
पदे पदे पीयूष-स्वादप्रदाता । कृष्णकीर्तन जय प्रेमविधाता ॥७॥
भक्तिविनोद - स्वात्मस्नपनविधान । कृष्णकीर्तन जय प्रेमनिदान ॥८॥

द्वितीय-याम कीर्तन

[प्रातर्लीलाभजन—साधुसंगे अनर्थ निवृत्ति]

[६ दण्ड=२.२४ मिनट; ५.४६ से ८.१० मिनटतक]

राधां स्नातविभूषितां व्रजपयाहूतां सखीभिः प्रगे
तद्गेहे विहितान्नपाकरचनां कृष्णाऽवशेषाऽशनाम् ।
कृष्णं बुद्धमवाप्तधेनुसदनं निर्व्यूढगोदोहनं
सुस्नातं कृतभोजनं सहचरैस्तां चाथ तं चाश्रये ॥२॥
(गोविन्दलीलामृते २।१)

मैं, उन श्रीमती राधिका का आश्रय लेता हूँ कि, जो प्रातःकालीन स्नान के अनन्तर अलंकृत हुई हैं, एवं व्रजेश्वरी श्रीयशोदा के द्वारा बुलाई गई हैं, तथा उन्हीं के घर में अपनी सखियों के साथ मिलझुल कर, जिन्होंने श्रीकृष्णसेवार्थ रसोई बनाई है, और श्रीकृष्ण

के भोजन कर लेने के बाद, जिन्होंने उनका प्रसाद सेवन किया हैं। एवं मैं, उन श्रीकृष्ण का आश्रय लेता हूँ कि, जिन्होंने प्रातःकाल जागकर गोशाला में जा कर, सखाओं के सहित गोदोहन किया है; तथा भलीप्रकार स्नान करके सखाओं के सहित भोजन किया है ॥२॥

राधा स्नात-विभूषित, श्रीयशोदा समाहूत, सखीसंगे तद्गृहे गमन ।
तथा पाक विरचन, श्रीकृष्णावशेषाशन, मध्ये मध्ये दुँहार मिलन ॥
कृष्ण निद्रा परिहरि, गोष्ठे गोदोहन करि, स्नानाशन सहचर संगे ।
एइ लीला चिन्ता कर, नामप्रेमे गरगर, प्राते भक्तजन संगे रंगे ॥

एइ लीला चिन्त आर कर संकीर्तन ।
अचिरे पाइबे तुमि भाव उद्दीपन ॥

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन्! ममाऽपि
दुर्दैवमीदृशमिहाजनि नाऽनुरागः ॥
(पद्यावल्याम् ३१)

अनेक लोकेर वाञ्छा अनेक प्रकार ।
कृपाते करिल अनेक नामेर प्रचार ॥
खाइते-शुइते यथा-तथा नाम लय ।
देश-काल-नियम नाहि, सर्वसिद्धि हय ॥
सर्वशक्ति नामे दिलेन करिया विभाग ।
आमार दुर्दैव, नामे नाहि अनुराग ॥
(चैतन्यचरितामृत अ० २०, १७-१९)

लोफा

तुहुँ दयासागर तारयिते प्राणी । नाम अनेक तुया शिखाओलि आनि॥१॥
सकल शकति देइ नामे तोहारा । ग्रहणे राखलि नाहि कालविचारा॥२॥
श्रीनामचिन्तामणि तोहारि समाना । विश्वे बिलाओलि करुणा-निदाना॥३
तुया दया ऐछन परम उदारा । अतिशय मन्द, नाथ! भाग हमारा॥४॥
नाहि जनमल नामे अनुराग मोर । भकतिविनोद-चित्त दुःखे विभोर॥५॥

तृतीय-याम कीर्तन

[पूर्वाह्नलीलाभजन—निष्ठ भजन]

[६ दण्ड=२.२४ मिनट; ८.१० से १०.३४ मिनटतक]

पूर्वाह्णे धेनुमित्रैर्विपिनमनुसृतं गोष्ठलोकानुयातं
कृष्णं राधाप्तिलोलं तदभिसृतिकृते प्राप्ततत्कुण्डतीरम् ॥
राधां चालोक्य कृष्णं कृतगृहगमनामार्ययार्कार्चनायै
दिष्टां कृष्णप्रवृत्त्यै प्रहितनिजसखीवर्त्मनेत्रां स्मरामि ॥३॥

(गोविन्दलीलामृते ५।१)

मैं, उन श्रीकृष्णचन्द्र का स्मरण करता हूँ कि, जो पूर्वाह्ण में गो-गण एवं मित्रों के सहित वृन्दावन में चल दिये हैं, एवं श्रीनन्द-यशोदा आदि व्रजवासीलोग जिनके पीछे-पीछे चल रहे हैं, तथा अपनी अनुनय विनय से व्रजवासियों को लौटाकर, श्रीराधिका की प्राप्ति के लिये जो सतृष्ण हो रहे हैं, अतएव श्रीराधिका के अभिसार के लिये जो श्रीराधाकुण्ड के तीरपर पहुँच गये हैं। मैं, उन श्रीमती राधिका का स्मरण करता हूँ कि, जो वन में जाते हुए श्रीकृष्ण को देखकर, अपने घर चली जाती हैं, एवं जटिला-नामक अपनी सास के द्वारा जो सूर्यपूजन के निमित्त वन में भेजी गई हैं, तथा श्रीकृष्ण का वृत्तान्त जानने के लिये, अपने द्वारा भेजी हुईं, अपनी सखियों के मार्ग में, जो अपने नेत्रों को प्रेरित करती रहती हैं ॥३॥

धेनु सहचर संगे, कृष्ण वने याय रंगे, गोष्ठजन अनुव्रत हरि ।
राधासंग लोभे पुनः, राधाकुण्ड तट वन, याय धेनु संगी परिहरि ॥
कृष्णेर इङ्गित पाञा, राधा निज गृहे याञा, जटिलाज्ञा लय सूर्यार्चने ।
गुप्ते कृष्णपथ लखि, कतक्षणे आइसे सखी, व्याकुलिता राधा स्मरि मने॥

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना ।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥

(पद्यावल्याम् ३२)

उत्तम हञा आपनाके माने 'तृणाधम' ।
दुइ प्रकारे सहिष्णुता करे वृक्षसम ॥
वृक्ष येन काटिलेह किछु ना बोलय ।
शुखाइया मैले कारे पानी ना मागय ॥

येइ ये मागये, तारे देय आपन धन।
घर्म-वृष्टि सहे, आनेर करये रक्षण॥
उत्तम हञा वैष्णव हबे निरभिमान।
जीवे सम्मान दिबे जानि 'कृष्ण'-अधिष्ठान॥
एइमत हञा येइ कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णचरणे ताँर प्रेम उपजय॥
(चैतन्यचरितामृत अ० २०, २२-२६)

एकताला

श्रीकृष्णकीर्तने यदि मानस तोहार।
परम यतने तँहि लभ अधिकार॥१॥
तृणाधिक हीन, दीन, अकिञ्चन, छार।
आपने मानबि सदा छाड़ि' अहङ्कार॥२॥
वृक्षसम क्षमागुण करबि साधन।
प्रतिहिंसा त्यजि' अन्ये करबि पालन॥३॥
जीवन-निर्वाहे आने उद्वेग ना दिबे।
पर-उपकारे निज-सुख पासरिबे॥४॥
हइलेओ सर्वगुणे गुणी महाशय।
प्रतिष्ठाशा छाड़ि' कर अमानी हृदय॥५॥
कृष्ण-अधिष्ठान सर्वजीवे जानि' सदा।
करबि सम्मान सबे आदरे सर्वदा॥६॥
दैन्य, दया, अन्ये मान, प्रतिष्ठा-वर्जन।
चारि गुणे गुणी हइ' करह कीर्तन॥७॥
भकतिविनोद काँदि' बले प्रभु-पाय।
हेन अधिकार कबे दिबे हे आमाय॥८॥

चतुर्थ-याम कीर्तन

[मध्याह्नलीलाभजन—रुचि भजन]

[१२ दण्ड=४.४८ मिनट; १०.३४ से ३.२२ मिनटतक]

मध्याह्नेऽन्योन्यसङ्गोदित-विविधविकारादि-भूषाप्रमुग्धौ
वाम्योत्कण्ठातिलोलौ स्मरमख-ललिताद्यालि-नर्माप्तशातौ।
दोलारण्यांबु-वंशीहृतिरतिमधुपानार्क-पूजादिलीलौ
राधाकृष्णौ सतृष्णौ परिजनघटया सेव्यमानौ स्मरामि॥४॥
(गोविन्दलीलामृते ८।१)

मैं, उन श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता हूँ कि, जो मध्याह्नकाल में परस्पर के सङ्ग से प्रगट हुए, अनेक प्रकार के सात्त्विक विकाररूप भूषणों से अत्यन्त मनोहर हो रहे हैं, एवं प्रेममयी कुटिलता तथा परस्पर मिलन की उत्कण्ठा से, जो अतिशय तृष्णायुक्त हो रहे हैं, एवं कन्दर्परूप-यज्ञ में श्रीललिता-विशाखा आदि सखियों के परिहासरूप शाकल्य से जो सुखी हो रहे हैं; एवं जो दोलालीला, वनविहार, जलविहार, वंशीचोरी, रमण, मधुपान, तथा सूर्यपूजा आदि लीलाओं में लगे रहते हैं; और जो अपने अन्तरङ्ग-सेवकसमुदाय के द्वारा समयानुसार सेवित होते रहते हैं ।।४।।

राधाकुण्डे सुमिलन, विकारादि विभूषण, वाम्योत्कण्ठ मुग्धभावलीला ।
संभोग नर्मादि रीति, दोला खेला वंशीहृति, मधुपान सूर्यपूजा खेला ।।
जलखेला वन्याशन, छल सुप्ति वन्याटन, बहु लीलानन्दे दुइजने ।
परिजन सुवेष्ठित, राधाकृष्ण सुसेवित, मध्याह्नकालेते स्मरि मने ।।

न धनं न जनं न सुन्दरीं, कवितां वा जगदीश ! कामये ।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे, भवताद्भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥

(पद्यावल्याम् ९४)

धन, जन नाहि मागों - कविता सुन्दरी ।
शुद्धभक्ति देह' मोरे कृष्ण ! कृपा करि ।।
अति दैन्ये पुनः मागे दास्यभक्ति-दान ।
आपनाके करे संसारी-जीव अभिमान ।।

(चैतन्यचरितामृत अ० २०, ३०-३१)

झाँपि-लोफा

प्रभु ! तव पदयुगे मोर निवेदन ।
नाहि मागि देह-सुख, विद्या, धन, जन ।।१।।
नाहि मागि स्वर्ग, आर मोक्ष नाहि मागि ।
ना करि प्रार्थना कोन विभूतिर लागि' ।।२।।
निजकर्म-गुण-दोषे ये ये जन्म पाइ ।
जन्मे जन्मे येन तव नाम-गुण गाइ ।।३।।
एइमात्र आशा मम तोमार चरणे ।
अहैतुकी भक्ति हृदे जागे अनुक्षणे ।।४।।
विषये ये प्रीति एवे आछ्ये आमार ।
सेइमत प्रीति हउक चरणे तोमार ।।५।।

विपदे संपदे ताहा थाकुक समभावे ।
दिने दिने वृद्धि हउक नामेर प्रभावे ॥६॥
पशु-पक्षी ह'ये थाकि स्वर्गे वा निरये ।
तव भक्ति रहु भक्तिविनोद-हृदये ॥७॥

पञ्चम-याम कीर्तन

[अपराह्णलीलाभजन—कृष्णाऽऽसक्ति]
[६ दण्ड=२.२४ मिनट; ३.२२ से ५.४६ मिनटतक]

श्रीराधां प्राप्तगेहां निजरमणकृते क्लृप्तनानोपहारां
सुस्नातां रम्यवेशां प्रियमुखकमलालोकपूर्णप्रमोदाम् ।
कृष्णं चैवापराह्णे व्रजमनुचलितं धेनुवृन्दैर्वयस्यैः
श्रीराधालोकतृप्तं पितृमुखमिलितं मातृमृष्टं स्मरामि ॥५॥
(गोविन्दलीलामृते १८।१)

मैं, उन श्रीमती राधिका का स्मरण करता हूँ कि, जिन्होंने अपराह्णकाल में अपने घर पहुँच कर, भलीप्रकार स्नान करके, रमणीय वेष धारण कर, अपने प्यारे श्यामसुन्दर के लिये; कर्पूरकेलि एवं अमृतकेलि आदि अनेक प्रकार के भोज्य उपहार बनाये हैं, एवं वन से व्रज में आते समय, प्रियतम श्रीकृष्ण के मुखारविन्द के दर्शन से, जिनको पूर्ण हर्ष प्राप्त हो रहा है। एवं मैं, उन श्रीकृष्ण का स्मरण करता हूँ कि, जो अपराह्ण के समय गो-गण एवं सखाओं के सहित व्रज की ओर चल दिये हैं, एवं मार्ग में मिली हुई श्रीराधिका के दर्शन से तृप्त हो रहे हैं, तथा अपने पिता आदि व्रजवासियों से जो प्रेमपूर्वक मिल रहे हैं, एवं पश्चात् घर जा कर माँ यशोदा ने जिनको स्नान कराया है ॥५॥

श्रीराधिका गृहे गेला, कृष्ण लागि विरचिला, नानाविध खाद्य उपहार ।
स्नात रम्य वेश धरि, प्रियमुखेक्षण करि, पूर्णानन्द पाइल अपार ॥
श्रीकृष्णापराह्णकाले, धेनु मित्र लञा चले, पथे राधामुख निरखिया ।
नन्दादि मिलन करि, यशोदा मार्जित हरि, स्मर मन आनन्दित हञा ॥

अयि नन्दतनूज ! किङ्करं पतितं मां विषमे भवाम्बुधौ ।
कृपया तव पादपङ्कजस्थित-धूली-सदृशं विचिन्तय ॥
(पद्यावल्याम् ७१)

तोमार नित्यदास मुञि, तोमा पासरिया ।
पड़ियाछों भवार्णवे मायाबद्ध हञा ।।
कृपा करि' कर मोरे पदधूलि-सम ।
तोमार सेवक, करों तोमार सेवन ।।
पुन अति-उत्कण्ठा, दैन्य हइल उद्गम ।
कृष्ण-ठाँइ मागे सप्रेम नामसंकीर्तन ।।
(चैतन्यचरितामृत अ० २०, ३३-३५)

छोट दशकुशी

अनादि करम-फले, पडि' भवार्णव-जले,
तरिवारे ना देखि उपाय ।
ए विषय-हलाहले, दिवानिशि हिया ज्वले,
मन कभु सुख नाहि पाय ।।१।।
आशा-पाश शत शत, क्लेश देय अविरत,
प्रवृत्ति-ऊर्मिर ताहे खेला ।
काम क्रोध-आदि छय, बाटपाड़े देय भय,
अवसान हैल आसि' वेला ।।२।।
ज्ञान-कर्म—ठग दुइ, मोरे प्रतारिया लइ',
अवशेषे फेले सिन्धुजले ।
ए हेन समये बन्धु, तुमि कृष्ण कृपासिन्धु,
कृपा करि' तोल मोरे बले ।।३।।
पतित किङ्करे धरि', पादपद्मधूलि करि',
देह' भक्तिविनोदे आश्रय ।
आमि तव नित्यदास, भुलिया मायार पाश,
बद्ध ह'ये आछि, दयामय ।।४।।

षष्ठ-याम कीर्तन

[सायंलीलाभजन—भाव]

[६ दण्ड=२.२४ मिनट; ५.४६ से ८.१० मिनटतक]

सायं राधां स्वसख्या निजरमणकृते प्रेषितानेकभोज्यां
सख्यानीतेश-शेषाशन-मुदितहृदां तां च तं च व्रजेन्दुम् ।
सुस्नातं रम्यवेशं गृहमनु जननीलालितं प्राप्तगोष्ठं
निर्व्यूढोऽस्त्रालिदोहं स्वगृहमनु पुनर्भुक्तवन्तं स्मरामि ।।६।।
(गोविन्दलीलामृते २०।१)

मैं, उन श्रीमती राधिका का स्मरण करता हूँ कि, जिन्होंने सायंकाल में अपनी सखी के द्वारा, अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के लिये, अनेक प्रकार की भोज्यवस्तु भेज दी हैं, पश्चात् उसी सखी के द्वारा लाये हुए, अपने स्वामी श्रीकृष्ण के प्रसाद पाने से जिनका हृदय हर्षित हो रहा है। मैं, उन श्रीकृष्ण का स्मरण करता हूँ कि, जिन्होंने गोचारण के अनन्तर वन से घर में आ कर, भलीप्रकार स्नान किया है, मनोहर वेष धारण किया है, तथा माँ यशोदा के द्वारा जिनके ऊपर लाड़-चाव-प्यार किया गया है। पश्चात् गोशाला में पहुँच कर जिन्होंने गोश्रेणी का दोहन किया है। उसके बाद नन्दभवन में जा कर जिन्होंने रात्रिभोजन किया है ॥६॥

श्रीराधिका सायंकाले, कृष्ण लागि पाठाइले, सखीहस्ते विविध मिष्टान्न।
कृष्णभुक्त शेष आनि, सखी दिल सुख मानि, पाञा राधा हइल प्रसन्न ॥
स्नात रम्यवेश धरि, यशोदा लालित हरि, सखासह गोदोहन करे।
नानाविध पक्व अन्न, पाञा हैल परसन्न, स्मरि आमि परम आदरे ॥

नयनं गलदश्रु-धारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ?॥
(पद्यावल्याम् ६३)

प्रेमधन विना व्यर्थ दरिद्र जीवन।
'दास' करि' वेतन मोरे देह' प्रेमधन ॥
(चैतन्यचरितामृत अ० २०, ३७)

छोट दशकुशी—लोफा

अपराध-फले मम, चित्त भेल वज्रसम,
तुया नामे ना लभे विकार।
हताश हइया, हरि! तव नाम उच्च करि',
बड़ दुःखे डाकि बार बार ॥१॥

दीन दयामय करुणा-निदान। भावबिन्दु देइ' राखह पराण ॥२॥
कब तुया नाम-उच्चारणे मोर। नयने झरब दर दर लोर ॥३॥
गद्गद-स्वर कण्ठे उपजब। मुखे बोल आध आध बाहिरब ॥४॥
पुलके भरब शरीर हामार। स्वेद-कंप-स्तंभ ह'ब बार बार ॥५॥
विवर्ण शरीरे हाराओबुँ ज्ञान। नाम-समाश्रये धरबुँ पराण ॥६॥
मिलव हामार किये ऐछन दिन। रोओये भक्तिविनोद मतिहीन ॥७॥

सप्तम-याम कीर्तन

[प्रदोषलीलाभजन—प्रेम-विप्रलंभ]

[६ दण्ड=२.२४ मिनट; ८.१० से १०.३४ मिनटतक]

राधां सालीगणां तामसित-सित-निशायोग्यवेशां प्रदोषे
दूत्या वृन्दोपदेशादभिसृत-यमुनातीर-कल्पागकुञ्जाम् ।
कृष्णं गोपैः सभायां विहितगुणिकलालोकनं स्निग्धमात्रा
यत्नादानीय संशायितमथ निभृतं प्राप्तकुञ्जं स्मरामि ॥७॥

(गोविन्दलीलामृते २१।१)

मैं, सखियों के सहित उन श्रीमती राधिका का स्मरण करता हूँ कि, जिन्होंने प्रदोषकाल में, कृष्णपक्ष एवं शुक्लपक्ष की रात्रियों में धारण करने योग्य वेष को धारण किया है, एवं वृन्दादेवी के उपदेश से जिन्होंने अपनी अन्तरङ्ग-दूती के साथ, यमुनातीरस्थ कल्पवृक्ष की निकुञ्ज में अभिसरण किया है। एवं मैं, उन श्रीकृष्ण का स्मरण करता हूँ कि, जिन्होंने श्रीनन्दजी की सभा में, समस्त गोपों के सहित, गुणीजनों के द्वारा दिखाई गई, अनेक कलाओं का अवलोकन किया है। पश्चात् स्नेहमयी माता के द्वारा, सभा से यत्नपूर्वक बुलवा कर, दुग्धपान करा कर, जिनका शयन कराया गया है। पश्चात् जो गुप्तरूप से संकेतकुञ्ज में पहुँच जाते हैं ।।७।।

राधा वृन्दा उपदेशे, यमुनोपकुलदेशे, सांकेतिक कुंजे अभिसरे।
सितासित निशायोग्य, धरि वेश कृष्णभोग्य, सखी संगे सानन्द अन्तरे ।।
गोपसभा माझे हरि, नानागुणकला हेरि, मातृयत्ने करिल शयन।
राधासङ्ग सोङरिया, निभृते बाहिर हइया, प्राप्तकुञ्ज करिये स्मरण ।।

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥

(पद्यावल्याम् ३२४)

उद्वेगे दिवस ना याय, 'क्षण' हैल 'युग'-सम ।
वर्षार मेघप्राय अश्रु वरिषे नयन ।।
गोविन्द-विरहे शून्य हैल त्रिभुवन ।
तुषानले पोड़े येन ना याय जीवन ।।

(चैतन्यचरितामृत अ० २०, ४०-४१)

झाँपि-लोफा

गाइते गाइते नाम कि दशा हइल ।
'कृष्ण-नित्यदास मुञि' हृदये स्फुरिल ॥१॥

जानिलाम, मायापाशे ए जड़-जगते ।
गोविन्द-विरहे दुःख पाइ नानामते ॥२॥

आर ये संसार मोर नाहि लागे भाल ।
काँहा याइ' कृष्ण हेरि,-ए चिन्ता विशाल ॥३॥

काँदिते काँदिते मोर आँखि बरिषय ।
वर्षाधारा हेन चक्षे हइल उदय ॥४॥

निमेष हइल मोर शतयुग-सम ।
गोविन्द-विरह आर सहिते अक्षम ॥५॥

दशकुशी

शून्य धरातल, चौदिके देखिये, पराण उदास हय ।
कि करि, कि करि, स्थिर नाहि हय, जीवन नाहिक रय ॥६॥
व्रजवासिगण, मोर प्राण राख, देखाओ श्रीराधानाथे ।
भकतिविनोद, मिनति मानिया, लओ हे ताहार साथे ॥७॥

(अधिकारिभेदे सप्तम गीत)

एकताला

श्रीकृष्ण-विरह आर सहिते ना पारि ।
पराण छाड़िते आर दिन दुइ चारि ॥१॥

दशकुशी

गाइते 'गोविन्द'-नाम, उपजिल भावग्राम, देखिलाम यमुनार कूले ।
वृषभानुसुता-संगे, श्याम नटवर रंगे, बाँशरी बाजाय नीपमूले ॥२॥
देखिया युगल-धन, व्याकुल हइल मन, ज्ञानहारा हइनु तखन ।
कतक्षणे नाहि जानि, ज्ञानलाभ हइल मानि, आर नाहि भेल दरशन॥३॥

झाँपि-लोफा

सखि गो, केमते धरिब पराण ।
निमेष हइल युगेर समान ॥४॥

दशकुशी

श्रावणेर धारा, आँखि बरिषय, शून्य भेल धरातल।
गोविन्द-विरहे, प्राण नाहि रहे, केमने वाँचिब वल ॥५॥
भकतिविनोद, अस्थिर हइया, पुनः नामाश्रय करि'।
डाके, राधानाथ! दिया दरशन, प्राण राख, नहे मरि ॥६॥

अष्टम-याम कीर्तन

[रात्रलीलाभजन—प्रेमभजन-संभोग]

[१२ दण्ड=४.४८ मिनट; १०.३४ से ३.२२ मिनटतक]

तावुत्कौ लब्धसङ्गौ बहुपरिचरणैर्वृन्दयाऽऽराध्यमानौ
प्रेष्ठालीभिर्लसन्तौ विपिनविहरणैर्गानरासादिलास्यैः।
नानालीलानितान्तौ प्रणयिसहचरीवृन्दसंसेव्यमानौ
राधाकृष्णौ निशायां सुकुसुमशयने प्राप्तनिद्रौ स्मरामि ॥८॥
(गोविन्दलीलामृते २२।१)

इति श्रीगौर-गोविन्दलीलाया अद्भुतचित्रकारेण विरचित-
चित्रकाव्यालङ्कारसारेण भक्तिभारेण विनम्रताधारेण
कविराजराजेन श्रीकृष्णदासकविराजेन विरचिते
श्रीगोविन्दलीलामृते श्रीराधाकृष्णयोरष्टकालीय-
लीलास्मरणमङ्गलस्तोत्रं संपूर्णम्।

मैं, उन श्रीराधाकृष्ण का स्मरण करता हूँ कि, जो दोनों, रात्रि में पहले परस्पर मिलने के लिये उत्कण्ठित हो रहे हैं। पश्चात् जिनको परस्पर मिलनं प्राप्त हो गया है, एवं वृन्दादेवी के द्वारा अनेक प्रकार की सेवाओं से जिनकी आराधना हो रही है। पश्चात् अपनी प्रियसखियों के सहित वनविहार, गायन, रासलीला आदि में किये गये नृत्यों से जो सुशोभित हो रहे हैं, तथा अनेक लीलाओं से परिश्रान्त होकर, जो प्रेमभरी सहचरीश्रेणी के द्वारा व्यजन, शीतलजल, तांबूल, एवं पादसंवाहन आदि के द्वारा सेवित हो रहे हैं, पश्चात् मनोहर पुष्पशय्यापर जो शयन कर रहे हैं। इस अष्टकालीनलीला के श्लोकों में "स्रग्धरा"—नामक छन्द हैं ॥८॥

वृन्दा परिचर्या पाञा, प्रेष्ठालिगणेरे लञा, राधाकृष्ण रासादिक लीला ।
गीतलास्य कैल कत, सेवा कैल सखी यत, कुसुमशय्याय दुँहे शुइला ।।
निशाभागे निद्रा गेल, सबे आनन्दित हैल, सखीगण परानन्दे भासे ।
ए सुख-शयन स्मरि, भज मन राधा-हरि, सेइ लीला प्रवेशेर आशे ।।

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा,-मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लंपटो, मत्प्राणनाथस्तु स एव नाऽपरः ॥
(पद्यावल्याम् ३३७)

आमि कृष्णपद-दासी, तेँहो रससुखराशि,
आलिंगिया करे आत्मसाथ ।
किबा ना देय दरशन, जारेन आमार तनुमन,
तबु तेँहो मोर प्राणनाथ ।।
सखि हे ! शुन मोर मनेर निश्चय ।
किवा अनुराग करे, किवा दुःख दिया मारे,
मोर प्राणेश कृष्ण, अन्य नय ।।
(चैतन्यचरितामृत अ० २०, ४८-४९)

दशकुशी

बन्धुगण ! शुनह वचन मोर ।
भावेते विभोर, थाकिये यखन, देखा देय चित्तचोर ।।१।।

विचक्षण करि', देखिते चाहिले, हय आँखि-अगोचर ।
पुनः नाहि देखि', काँदये पराण, दुःखेर ना थाके ओर ।।२।।

जगतेर बन्धु सेइ कभु मोरे लय साथ ।
यथा तथा राखु मोरे आमार से प्राणनाथ ।।३।।

दर्शन-आनन्ददाने; सुख देय मोर प्राणे, बले मोरे प्रणय-वचन ।
पुनः अदर्शन दिया, दग्ध करे मोर हिया, प्राणे मोरे मारे प्राणधन ।।४।।

याहे ता'र सुख हय, सेइ सुख मम ।
निज सुखे दुःखे मोर सर्वदाइ सम ।।५।।
भकतिविनोद, संयोगे वियोगे, ताहे जाने प्राणेश्वर ।
ता'र सुखे सुखी, सेइ प्राणनाथ, से कभु ना हय पर ।।६।।

(अधिकारिभेदे अष्टम गीत)

दशकुशी

योगपीठोपरिस्थित, अष्टसखी-सुवेष्टित, वृन्दारण्ये कदंबकानने ।
राधासह वंशीधारी, विश्वजन-चित्तहारी, प्राण मोर ताँहार चरणे ॥१॥

सखी-आज्ञामत करि दोँहार सेवन ।
पाल्यदासी सदा भावि दोँहार चरण ॥२॥

कभु कृपा करि', मम हस्त धरि', मधुर वचन बले ।
तांबूल लइया, खाय दुइजने, माला लय कुतूहले ॥३॥

अदर्शन हय कखन कि छले ।
ना देखिया दोँहे हिया मोर ज्वले ॥४॥

येखाने सेखाने, थाकुन दु'जने, आमि त' चरण-दासी ।
मिलने आनन्द, विरहे यातना, सकलि समान वासि ॥५॥

राधाकृष्ण प्राण मोर जीवने मरणे ।
मोरे राखि' मारि' सुखे थाकुन दु'जने ॥६॥

भकतिविनोद, आन नाहि जाने, पड़ि' निजसखी-पाय ।
राधिकार गणे, थाकिया सतत, युगल-चरण चाय ॥७॥

श्रीराधिकायै नमः ।

श्रीराधिकाष्टकम् (१) ।

दिशि दिशि रचयन्तीं संचरन्नेत्रलक्ष्मी-
विलसित-खुरलीभिः खञ्जरीटस्य खेलाम् ।
हृदयमधुपमल्लीं बल्लवाधीशसूनो-
रखिल-गुण-गभीरां राधिकामर्चयामि ॥१॥

पितुरिह वृषभानोरन्ववाय-प्रशस्तिं
जगति किल समस्ते सुष्ठु विस्तारयन्तीम् ।
व्रजनृपतिकुमारं खेलयन्तीं सखीभिः
सुरभिणि निजकुण्डे राधिकामर्चयामि ॥२॥

शरदुपचित-राका-कौमुदीनाथ-कीर्ति-
प्रकर-दमनदीक्षा-दक्षिण-स्मेरवक्त्राम् ।
नटदघभिदपाङ्गोत्तुङ्गितानङ्ग-रङ्गां
कलित-रुचि-तरङ्गां राधिकामर्चयामि ॥३॥

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जो प्रत्येक दिशा में विचरण करनेवाले, अपने नेत्रों की शोभारूप विलासों के अभ्यासों के द्वारा, खञ्जनपक्षी के खेल की रचना करती रहती हैं, अर्थात् राधिका जिस दिशा की ओर दृष्टिपात करती हैं, वह दिशा मानो खञ्जनमाला से व्याप्त हो जाती है। तात्पर्य—जिनके दोनों नेत्र खञ्जन के समान हैं, एवं जो नन्दनन्दन श्रीकृष्ण के हृदयरूप-भ्रमर के लिये, मल्लिका के पुष्प के समान है। भ्रमर के लिये मल्लिका जिस प्रकार आनन्ददायिनी है, उसी प्रकार राधिका श्रीकृष्ण के हृदय के लिये आनन्ददायिनी हैं; तथा जो समस्त गुणों के कारण अतिशय गंभीर हैं ॥१॥

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जो अपने पिता श्रीवृषभानुजी के वंश की प्रशंसा को, इस समस्त जगत् में भलीप्रकार विस्तारित करती रहती हैं, एवं जो पुष्पों के पराग से सुगन्धित अपने कुण्ड में, ललिता आदि अपनी सखियों के सहित, व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण के खेल कराती रहती हैं, अर्थात् सखियों सहित श्रीकृष्ण को जल से सींचती रहती हैं ॥२॥

विविध–कुसुम–वृन्दोत्फुल्ल–धम्मिल्ल–धाटी-
विघटित–मद–घूर्णत्–केकि–पिच्छ–प्रशस्तिम् ।
मधुरिपु–मुख–बिम्बोद्‌गीर्ण–ताम्बूल–राग-
स्फुरदमल–कपोलां　　　राधिकामर्चयामि ॥४॥

अमलिन–ललितान्तःस्नेह–सिक्तान्तरङ्गा-
मखिल–विधविशाखा–सख्य–विख्यात–शीलाम् ।
स्फुरदघभिदनर्घ-प्रेम–माणिक्य–पेटीं
धृत–मधुर–विनोदां　　　राधिकामर्चयामि ॥५॥

श्रीराधिका के अनुपम मुखमण्डल का, एवं माधुर्य की आधारता का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीमती राधिका का पूजन करता हूँ कि, जिनका मन्दहास्ययुक्त मुखारविन्द, शरद्‌ऋतु में वृद्धि को प्राप्त, चन्द्रमा की कीर्ति के समूह को, दमन करने की दीक्षा में निपुण है, अर्थात् शरद्‌ऋतु के पूर्णचन्द्रमा से भी परम मनोहर है; एवं श्रीकृष्ण के चञ्चल कटाक्षपात से, जिनका अनङ्गरङ्ग परमवृद्धि को प्राप्त हो रहा है, तथा जिनके श्रीअङ्ग में शोभा की तरङ्गे नृत्य करती रहती हैं ।।३।।

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जो अनेक प्रकार के पुष्पसमूह से सुशोभित, अपने केशपाश के बलपूर्वक आक्रमण के द्वारा, मदमाते मयूर के पंखों की प्रशंसा को तिरस्कृत करनेवाली हैं, एवं जिनके निर्मल कपोल, श्रीकृष्ण के मुखबिंब से निकलते हुए तांबूलरस की लालिमा से स्फूर्ति पा रहे हैं ।।४।।

श्रीराधिका अपनी सखियाँ की एवं अपने नायक की मुख्य प्रेमपात्री हैं, इस भाव को वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जिनका अन्तःकरण ललिता सखी के निर्मल आन्तरिक स्नेह से सिक्त (सरस) रहता है, एवं जिनका शीलस्वभाव विशाखा सखी की समस्त प्रकार की मित्रता से विख्यात है, एवं जो श्रीकृष्ण के दमदमाते हुए प्रेमरूपी अमूल्य रत्नों की मंजूषास्वरूप हैं, तथा जो मधुरविनोद को धारण करती रहती हैं ।।५।।

अतुल-महसि वृन्दारण्यराज्येऽभिषिक्तां
निखिल-समय-भर्तुः कार्तिकस्याधिदेवीम् ।
अपरिमित-मुकुन्द-प्रेयसी-वृन्दमुख्यां
जगदघहर-कीर्तिं राधिकामर्चयामि ॥६॥

हरिपदनख-कोटी-पृष्ठ-पर्यन्त-सीमा-
तटमपि कलयन्तीं प्राणकोटेरभीष्टम् ।
प्रमुदित-मदिराक्षी-वृन्द-वैदग्ध्य-दीक्षा-
गुरुमति-गुरुकीर्तिं राधिकामर्चयामि ॥७॥

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जो अतुलनीय प्रभाववाले एवं महोत्सववाले श्रीवृन्दावन के राज्यपदपर अभिषिक्त हैं (ब्रह्ममोहनलीला में एक कोने में ही करोड़ों ब्रह्माण्डों के दृष्टिगोचर करा देने से, एवं वैकुण्ठ से भी अतिशय श्रेष्ठ मथुरामण्डल के भी उत्तमप्रदेश होने के कारण, वृन्दावन का प्रभाव अतुलनीय है; एवं यह वृन्दावन सर्वदा वसन्तऋतु से सेवित होने के कारण, एवं आनन्दमय श्रीकृष्ण के द्वारा अधिष्ठित होने के कारण, सर्वदा उत्सवरूप बना रहता है); अतः इस प्रकार के वृन्दावन के प्राज्य-राज्य के आधिपत्य से, श्रीराधिका का उत्कर्ष, पराकाष्ठा को प्राप्त कर रहा है (श्रीराधिका के राज्याभिषेक की कथा श्रीरूपगोस्वामि-कृत "श्रीदानकेलिकौमुदी"-नामक ग्रन्थ में निबद्ध है), एवं जो राधिका, सभी मासों की अधिपति कार्तिकमास की अधिष्ठात्री देवी हैं, एवं जो श्रीकृष्ण के असंख्य प्रेयसीवृन्द में मुख्य हैं; अर्थात् जो श्रीकृष्ण की पट्टमहिषी हैं, तथा जिनकी कीर्ति, समस्त जगत् के पापों को हरनेवाली है ।।६।।

श्रीमती राधिका के लोकोत्तर पतिव्रताधर्म को दिखाते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जो श्रीकृष्ण के पादपद्मों के सूक्ष्म नखाग्र-भाग को, अपने करोड़ों प्राणों की अपेक्षा, अधिक प्रियतम जानती हैं, अर्थात् जो कृष्णगतप्राण हैं, एवं उनसे भिन्न कुछ नहीं जानती हैं। एवं जो हर्षभरी गोपाङ्गनाश्रेणी को, अनेक प्रकार की चातुरी की शिक्षा देने में दीक्षागुरु हैं, अतः जिनकी महती कीर्ति विद्यमान है ।।७।।

अमल–कनक–पट्टोद्घृष्ट–काश्मीर–गौरीं
मधुरिम–लहरीभिः संपरीतां किशोरीम् ।
हरिभुज–परिरब्धां लब्ध–रोमाञ्च–पालिं
स्फुरदरुण–दुकूलां राधिकामर्चयामि ॥८॥

तदमल–मधुरिम्णां काममाधाररूपं
परिपठति वरिष्ठं सुष्ठु राधाष्टकं यः ।
अहिम–किरण–पुत्री–कूल–कल्याण–चन्द्रः
स्फुटमखिलमभीष्टं तस्य तुष्टस्तनोति ॥९॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित–स्तवमालायां
श्रीराधिकाष्टकं (१) संपूर्णम् ।

—*—

श्रीराधिकायै नमः ।

श्रीराधिकाष्टकम् (२) ।

रसवलित–मृगाक्षी–मौलिमाणिक्यलक्ष्मीः
प्रमुदित–मुरवैरि–प्रेमवापी–मराली ।
व्रजवर–वृषभानोः पुण्यगीर्वाणवल्ली
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥१॥

श्रीराधिका के माधुर्य का वर्णन करते हुए कहते हैं कि—

मैं, उन श्रीमती राधिका की पूजा करता हूँ कि, जो निर्मल निकष-पाषाणपर पीसे हुए, कुंकुम के समान गौरवर्णवाली हैं; एवं जो माधुर्य की तरङ्गों से परिव्याप्त हैं, नित्य किशोरी हैं, तथा जो श्रीकृष्ण की भुजाओं से आलिङ्गित होते ही, पुलकावली को प्राप्त हो जाती हैं, और जिनकी ओढ़नी चमकीले अरुणवर्णवाली है ।।८।।

जो व्यक्ति, श्रीमती राधिका के स्वरूप-गुण-विभूति आदि माधुर्यों के यथेष्ट आधारस्वरूप, इस उत्कृष्ट "राधिकाष्टक" का भलीप्रकार प्रेमपूर्वक पाठ करता है, उस व्यक्ति के समस्त अभीष्ट को, सूर्यपुत्री यमुना के कमनीय-कूल के कल्याणचन्द्र श्रीकृष्णचन्द्र प्रसन्न होकर, स्पष्ट ही विस्तारित करते रहते हैं । इस अष्टक में "मालिनी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

स्फुरदरुण–दुकूल–द्योतितोद्यन्नितम्ब-
स्थलमभि–वरकाञ्चि–लास्यमुल्लासयन्ती ।
कुचकलस–विलास–स्फीत–मुक्तासर–श्रीः
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥२॥

सरसिजवर–गर्भाखर्व–कान्तिः समुद्यत्-
तरुणिम–घनसाराश्लिष्ट–कैशोर–सीधुः
दर–विकसित–हास्य–स्यन्दि–बिम्बाधराग्रा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥३॥

अति–चटुलतरं तं काननान्तर्मिलन्तं
व्रजनृपतिकुमारं वीक्ष्य शङ्काकुलाक्षी ।
मधुर–मृदु–वचोभिः संस्तुता नेत्रभङ्ग्या
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥४॥

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जो रसिकस्त्रियों के मुकुटस्थ मणियों की शोभास्वरूपा हैं, एवं जो हर्षित हुए श्रीकृष्ण के प्रेमरूप-सरोवर की हंसीस्वरूपा हैं, तथा जो व्रज में सर्वश्रेष्ठ श्रीवृषभानु गोपराज के पुण्य की कल्पलतास्वरूपा हैं ।।१।।

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जो देदीप्यमान रक्तवर्ण के रेशमी वस्त्र से सुशोभित अपने नितंबस्थलपर, श्रेष्ठ करधनी से नृत्य को प्रकाशित करती हुईं, अपने कुचरूप-कलसों के ऊपर शोभायमान स्थूल मुक्ताहार की शोभा से युक्त हैं ।।२।।

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जो श्रेष्ठकमल की कर्णिका के समान विशाल कान्ति से युक्त हैं, एवं जिनका किशोरावस्थारूप-अमृत, प्रगट होनेवाली युवावस्थारूप-कर्पूर से मिश्रित है, तथा जिनके बिंबाधर का अग्रभाग किञ्चित् विकसित हास्यरस का विस्तार करता रहता है ।।३।।

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जिनके दोनों नेत्र, वन में मिलते हुए अतिशय चञ्चल, व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण को देखकर, शंका से व्याकुल

व्रजकुल–महिलानां प्राणभूताखिलानां
पशुप–पति–गृहिण्याः कृष्णवत् प्रेमपात्रम्।
सुललित–ललितान्तःस्नेह–फुल्लान्तरात्मा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥५॥

निरवधि सविशाखा शाखियूथ–प्रसूनैः
स्रजमिह रचयन्ती वैजयन्तीं वनान्ते।
अघ–विजय–वरोरःप्रेयसी श्रेयसी सा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥६॥

प्रकटित–निजवासं स्निग्ध–वेणु–प्रणादै-
द्रुतगति हरिमारात् प्राप्य कुञ्जे स्मिताक्षी।
श्रवण–कुहर–कण्डूं तन्वती नम्रवक्त्रा
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥७॥

हो जाते हैं, एवं जो मधुर तथा कोमल-वचनों के द्वारा, और नेत्रों के इशारे के द्वारा, परिचित हो जाती हैं ।।४।।

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जो समस्त व्रजाङ्गनाओं की प्राणस्वरूपा हैं, एवं जो गोपराजपत्नी-श्रीयशोदा की श्रीकृष्ण के समान स्नेहभाजन हैं, तथा जिनकी अन्तरात्मा, ललिता-सखी के सुमनोहर आन्तरिक स्नेह से, फूली नहीं समाती हैं ।।५।।

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जो श्रीवृन्दावन में सदैव साथ रहनेवाली, विशाखा-सखी के सहित, अनेक वृक्षों के पुष्पों के द्वारा, वैजयन्तीमाला को बनाती हुई विद्यमान रहती हैं, अतएव अघविजयी-श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ वक्षःस्थल की अतिशय प्यारी हैं, एवं परममङ्गलमयी हैं ।।६।।

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जिनके नेत्र, स्निग्ध वंशी की ध्वनियों के द्वारा, निकुञ्ज में अपनी स्थिति को प्रकाशित करनेवाले, श्रीकृष्ण को शीघ्र गति से प्राप्तकर, किञ्चित् विकसित हो जाते हैं, एवं किसी बहाने से, अपने कर्णछिद्र को खुजाती हुईं, अपने मुख को नीचा कर लेती हैं ।।७।।

अमल-कमल-राजि-स्पर्शि-वात-प्रशीते
निजसरसि निदाघे सायमुल्लासिनीयम्।
परिजन-गण-युक्ता क्रीडयन्ती बकारिं
स्नपयति निजदास्ये राधिका मां कदा नु ॥८॥

पठति विमलचेता मृष्टराधाष्टकं यः
परिहृत-निखिलाशा-सन्ततिः कातरः सन्।
पशुप-पति-कुमारः काममामोदितस्तं
निजजन-गणमध्ये राधिकायास्तनोति ॥९॥

इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित-स्तवावल्यां
श्रीराधिकाष्टकं (२) संपूर्णम्।

—*—

श्रीराधिकायै नमः।

श्रीराधिकाष्टकम् (३)।

कुंकुमाक्त-काञ्चनाब्ज-गर्वहारि-गौरभा
पीतनाञ्चिताब्ज-गन्धकीर्ति निन्दि-सौरभा।
बल्लवेश-सूनु-सर्व-वाञ्छितार्थ-साधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥१॥

वे श्रीमती राधिका, मुझ को अपनी सेवा में कब स्नान करायेंगी, अर्थात् निमग्न करेंगी ? कि जो ग्रीष्मऋतु में सायंकाल के समय, उल्लास से युक्त होकर, तथा ललिता आदि अपने सेवकवर्ग से सम्मिलित होकर, निर्मल कमलश्रेणी को स्पर्श करनेवाली वायु के कारण, अतिशय शीतल राधाकुण्ड-नामक अपने सरोवर में, श्रीकृष्ण को क्रीडा कराती रहती हैं ।।८।।

निर्मल चित्तवाला जो व्यक्ति, अन्य समस्त आशाओं की श्रेणी को छोड़कर, कातर होकर, इस विशुद्ध "राधिकाष्टक" का पाठ करता है, उस व्यक्ति को गोपराजकुमार श्रीकृष्ण, यथेष्ट प्रसन्न होकर, श्रीमती राधिका के अपने परिकरवर्ग में सम्मिलित कर लेते हैं। इस अष्टक में "मालिनी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

कौरुविन्द–कान्ति–निन्दि–चित्र–पट्ट–शाटिका
  कृष्ण–मत्तभृङ्ग–केलि–फुल्ल–पुष्प–वाटिका ।
कृष्ण–नित्य–सङ्गमार्थपद्मबन्धु–राधिका
  मह्यमात्म–पादपद्म–दास्यदास्तु राधिका ॥२॥

सौकुमार्य–सृष्ट–पल्लवालि–कीर्ति–निग्रहा
  चन्द्र–चन्दनोत्पलेन्दु–सेव्य–शीत–विग्रहा ।
स्वाभिमर्श–बल्लवीश–काम–ताप–बाधिका
  मह्यमात्म–पादपद्म–दास्यदास्तु राधिका ॥३॥

विश्ववन्द्य–यौवताभिवन्दितापि या रमा
  रूप–नव्य–यौवनादि–सम्पदा न यत्समा ।
शील-हार्द-लीलया च सा यतोऽस्ति नाधिका
  मह्यमात्म–पादपद्म–दास्यदास्तु राधिका ॥४॥

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जिनके श्रीविग्रह की कान्ति, कुंकुम से युक्त सुवर्ण-कमल के गर्व का अपहरण करनेवाली है, एवं जिनके श्रीअंग की सुगन्ध, केसर से युक्त कमल की सुगन्ध के यश का तिरस्कार करनेवाली है, तथा जो गोपराजकुमार श्रीकृष्ण के अभिलषित सभी प्रयोजनों को सिद्ध करनेवाली हैं ।।१।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जिनकी चित्र-विचित्र रेशमी साड़ी प्रवाल की शोभा को तिरस्कृत करनेवाली है, एवं जो श्रीकृष्णरूप-मत्तभ्रमर की क्रीडा के लिये, विकसित पुष्पवाटिका-स्वरूप हैं, तथा श्रीकृष्ण के नित्य मिलन के लिये, जो सूर्य की आराधना करती रहती हैं ।।२।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जो अपनी सुकुमारता के द्वारा, नवपल्लवश्रेणी के यश का तिरस्कार करती रहती हैं, एवं जिनका शीतल श्रीविग्रह चन्द्र-चन्दन-कमल एवं कर्पूर आदि परमशीतल पदार्थों के द्वारा सेवा करने योग्य है, अर्थात् उन सब से भी अधिक शीतल है, तथा जो अपने स्पर्शमात्र सें, गोपीजनवल्लभ श्रीकृष्ण के कन्दर्पजनित ताप को दूर करनेवाली हैं ।।३।।

रास--लास्य गीत--नर्म--सत्कलालि--पण्डिता
प्रेम--रम्य--रूप--वेश--सद्गुणालि-मण्डिता ।
विश्व--नव्य--गोप--योषिदालितोऽपि याधिका
मह्यमात्म--पादपद्म--दास्यदास्तु राधिका ॥५॥

नित्य--नव्य--रूप--केलि--कृष्णभाव--सम्पदा
कृष्णराग--बन्ध--गोप--यौवतेषु--कम्पदा ।
कृष्ण--रूप--वेश--केलि--लग्न--सत्समाधिका
मह्यमात्म--पादपद्म--दास्यदास्तु राधिका ॥६॥

स्वेद--कम्प--कण्टकाश्रु--गद्गदादि--सञ्चिता--
मर्ष--हर्ष--वामतादि--भाव--भूषणाञ्चिता ।
कृष्ण--नेत्र--तोषि--रत्न--मण्डनालि--दाधिका
मह्यमात्म--पादपद्म--दास्यदास्तु राधिका ॥७॥

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जो लक्ष्मीदेवी, विश्ववन्दनीय युवतीसमूह के द्वारा अभिवन्दित होकर भी, अपने रूप एवं नवीनयौवन आदि संपत्ति के द्वारा, जिनके समान नहीं हैं, एवं वही लक्ष्मीदेवी, अपने स्वभाव-प्रेम-तथा क्रीडा आदि के द्वारा भी, जिनसे अधिक नहीं है ।।४।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जो रासलीला में नृत्य-गीत-परिहास आदि सुन्दर कलाश्रेणी में पण्डित हैं, एवं लोकोत्तर-प्रेम, रमणीय रूप, वेषभूषा एवं श्रेष्ठ गुणावली से जो विभूषित हैं, तथा जो समस्त नवीन गोपाङ्गनाश्रेणी से भी अधिक हैं ।।५।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जो अपने नित्य नवीन रूप एवं नित्य नवीन अपनी क्रीडा, तथा नित्य नवीन अपनी कृष्णभावरूपी-संपत्ति के द्वारा, श्रीकृष्ण के अनुराग में बँधी हुईं, गोप-युवतीश्रेणियाँ में कंप देनेवाली हैं, एवं श्रीकृष्ण के रूप-वेष-क्रीडा आदि के अनुभव में, जिनकी सुन्दर सम लग जाती है ।।६।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जो स्वेद-कंप-पुलक-अश्रु एवं गद्गद आदि सात्त्विक-भावों से संयुक्त हैं; एवं प्रणयकोप, हर्ष, तथा प्रेममयी कुटिलता आदि

या क्षणार्ध-कृष्ण-विप्रयोग-सन्ततोदिता-
नेक-दैन्य-चापलादि-भाववृन्द-तोदिता ।
यत्नलब्ध-कृष्णसङ्ग-निर्गताखिलाधिका
मह्यमात्म-पादपद्म-दास्यदास्तु राधिका ॥८॥

अष्टकेन यस्त्वनेन नौति कृष्णवल्लभां
दर्शनेऽपि शैलजादि-योषिदालि-दुर्लभाम् ।
कृष्णसङ्ग-नन्दितात्म-दास्य-सीधु-भाजनं
तं करोति नन्दितालि-सञ्चयाशु सा जनम् ॥९॥

इति श्रीलकृष्णदासकविराजगोस्वामिविरचित-श्रीगोविन्दलीलामृते
मध्याह्नलीलायां (१७ सर्गः, ५९-६७)
श्रीराधिकाष्टकं (३) संपूर्णम् ।

भावरूपी भूषणों से जो विभूषित हैं; तथा जो श्रीकृष्ण के नेत्रों को सन्तुष्ट करनेवाली रत्नजटित भूषणों की श्रेणी को धारण करनेवाली हैं ।।७।।

वे श्रीमती राधिका, मेरे लिये अपने पादपद्मों की सेवा प्रदान करती रहें कि, जो श्रीकृष्ण के आधेक्षण के वियोग से, निरन्तर उदय होनेवाली दीनता-चञ्चलता आदि अनेक भावसमूहों से व्यथित हो जाती हैं, एवं अपने द्वारा अथवा श्रीकृष्ण के द्वारा किये गये, दूतीप्रेषण आदि प्रयत्न के कारण, प्राप्त हुए श्रीकृष्ण के मिलन से, समस्त मानसिक-व्यथाओं से रहित हो जाती हैं ।।८।।

जिनका दर्शन, पार्वती आदि अङ्गनाश्रेणी के लिये भी दुर्लभ है; कृष्णप्रेयसी उन श्रीमती राधिका की स्तुति, जो व्यक्ति, इस अष्टक के द्वारा करता है, उस व्यक्ति को, अपनी सखीसमुदाय को प्रसन्न करनेवाली श्रीमती राधिका, श्रीकृष्ण के सङ्ग से प्रसन्न होकर, शीघ्र ही अपनी सेवारूप-अमृत का पात्र बना लेती हैं। इस अष्टक में "तूणक"—नामक छन्द हैं ।।९।।

—※—

श्रीगान्धर्विकायै नमः ।

श्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकम् ।

वृन्दावने विहरतोरिह केलिकुञ्जे
मत्त–द्विप–प्रवर–कौतुक–विभ्रमेण ।
संदर्शयस्व युवयोर्वदनारविन्द–
द्वन्द्वं विधेहि मयि ! देवि कृपां प्रसीद ॥१॥

हा देवि ! काकुभर–गद्गदयाद्य वाचा
याचे निपत्य भुवि दण्डवदुद्भटार्तिः ।
अस्य प्रसादमबुधस्य जनस्य कृत्वा
गान्धर्विके ! निजगणे गणनां विधेहि ॥२॥

श्यामे ! रमारमण–सुन्दरता–वरिष्ठ–
सौन्दर्य–मोहित–समस्त–जगज्जनस्य ।
श्यामस्य वामभुज–बद्धतनुं कदाहं
त्वामिन्दिरा–विरल–रूपभरां भजामि ?॥३॥

हे देवि राधिके ! तुम दोनों (राधा-कृष्ण) मत्तगजेन्द्र के कौतुक-विलासपूर्वक, इस वृन्दावन में क्रीडाकुञ्ज में, नित्य विहार करते रहते हो, अतः हे गान्धर्विके ! तुम मुझपर प्रसन्न हो जाओ एवं कृपा कर दो, तथा तुम दोनों के युगल मुखारविन्द का दर्शन करा दो ॥१॥

हे देवि गान्धर्विके ! मैं विशिष्ट पीडा से युक्त हूँ, अतः आज भूमिपर दण्ड के समान गिरकर, कातरता से भरी हुई, गद्गद वाणी से प्रार्थना करता हूँ कि, मुझ अज्ञानी जनपर कृपा करके, अपने परिकर में मेरी भी गिनती कर लीजिये ॥२॥

हे श्रीमति श्यामे ! आपका श्रीविग्रह, नारायण भगवान् की सुन्दरता से भी श्रेष्ठ, अपने सौन्दर्य के द्वारा, समस्त जगत् के जनों को मोहित करनेवाले, श्यामसुन्दर की बायीं भुजा से निबद्ध हैं, अर्थात् आप, श्रीकृष्ण के वामाङ्ग में विराजमान हो, एवं आप के रूप की अधिकता, लक्ष्मीदेवी के लिये भी दुर्लभ है; मैं, तुम्हारी इस प्रकार की छवि का कब भजन किया करूँगा ?॥३॥

त्वां प्रच्छदेन मुदिरच्छविना पिधाय
मञ्जीर-मुक्त-चरणां च विधाय देवि ! ।
कुञ्जे व्रजेन्द्र-तनयेन विराजमाने
नक्तं कदा प्रमुदितामभिसारयिष्ये ?॥४॥

कुञ्जे प्रसून-कुल-कल्पित-केलि-तल्पे
संविष्टयोर्मधुर-नर्म-विलास-भाजोः ।
लोक-त्रयाभरणयोश्चरणाम्बुजानि
संवाहयिष्यति कदा युवयोर्जनोऽयम् ?॥५॥

त्वत्कुण्ड-रोधसि विलास-परिश्रमेण
स्वेदाम्बु-चुम्बि-वदनाम्बुरुह-श्रियौ वाम् ।
वृन्दावनेश्वरि ! कदा तरुमूलभाजौ
संवीजयामि चमरीचय-चामरेण ?॥६॥

लीनां निकुञ्जकुहरे भवतीं मुकुन्दे
चित्रैव सूचितवती रुचिराक्षि ! नाहम् ।
भुग्नां भ्रुवं न रचयेति मृषारुषां त्वा-
मग्रे व्रजेन्द्र-तनयस्य कदा नु नेष्ये ?॥७॥

हे देवि राधिके ! मैं, तुम्हारी सखी बनकर, मेघ की सी कान्तिवाली ओढ़नी के द्वारा, तुम्हारे शरीर को ढककर, एवं तुम्हारे चरणों को नूपुरों से रहित बनाकर, प्रसन्न हुई तुम को, नन्दनन्दन से सुशोभित निकुञ्ज में, रात्रि में कब पहुँचाऊँगा, अर्थात् पूर्वोक्त रूपवाली तुम्हारा कब अभिसार कराऊँगा ?॥४॥

हे देवि ! निकुञ्ज में पुष्पसमुदाय के द्वारा बनायी हुई क्रीडामयी शय्यापर शयन करनेवाले, एवं मधुर परिहासमय विलासों का सेवन करनेवाले, तथा तीनों लोकों के आभरणस्वरूप, तुम दोनों के चरणारविन्दों की सेवा, यह जन कब कर पायेगा ? अहह ! ऐसा शुभदिन मुझे कब प्राप्त होगा ?॥५॥

हे वृन्दावनेश्वरि ! तुम्हारे कुण्ड के तीरपर विलास के परिश्रम से, तुम दोनों के मुखारविन्दों की शोभा, पसीने की बूँदों से युक्त हो जायगी, एवं तुम दोनों, जब कल्पवृक्ष के नीचे मणिमय सिंहासनपर विराजमान हो जाओगे, तब मैं, रत्नदण्ड से सुशोभित चँवर के द्वारा संवीजन करूँगा, अर्थात् तुम दोनों के ऊपर मैं कब चँवर डुलाऊँगा ?॥६॥

वाग्युद्ध-केलि-कुतुके व्रजराज-सूनुं
जित्वोन्मदामधिकदर्प-विकासि-जल्पाम् ।
फुल्लाभिरालिभिरनल्पमुदीर्यमाण-
स्तोत्रां कदा नु भवतीमवलोकयिष्ये ?॥८॥

यः कोऽपि सुष्ठु वृषभानु-कुमारिकायाः
संप्रार्थनाष्टकमिदं पठति प्रपन्नः ।
सा प्रेयसा सह समेत्य धृतप्रमोदा
तत्र प्रसाद-लहरीमुररीकरोति ॥९॥

इति श्रीमद्‌रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां
श्रीगान्धर्वासंप्रार्थनाष्टकं संपूर्णम् ।

हे सुन्दरलोचने राधिके ! देखो, तुम जब कौतुकवश निकुञ्ज के गुप्तस्थानरूप-बिल में छिप जाओगी, तब श्रीकृष्ण को तुम्हारे छिपने का पता लग जानेपर, तुम्हारे निकट आ जानेपर, तुम मुझसे पूछोगी कि—"हे रूपमञ्जरि ! श्रीकृष्ण के प्रति मेरे छिपने को तुमने बतलाया है क्या ?" तब मैं उत्तर दूंगी कि—"नहीं, नहीं, मैंने नहीं बताया है; किन्तु तुम्हारे छिपने की सूचना चित्रा सखी ने दी हैं । अतः मेरे ऊपर टेढ़ी भ्रुकुटी न कीजिये ।" इस प्रकार मेरे ऊपर, मिथ्याकोप करनेवाली तुम को देखकर; मैं, श्रीकृष्ण के आगे तुम्हारी अनुनय विनय कब करूँगा ? ऐसा शुभदिन कब उपस्थित होगा ?॥७॥

उस समय, तुम वाणी की युद्धरूप क्रीडाकौतुक में, श्रीकृष्ण को जीतकर, अत्यन्त हर्षित हो जाओगी, एवं तुम्हारा वाग्‌विलास अधिक दर्प को विकसित करनेवाला होगा; तब अपनी स्वामिनी की विजय से प्रफुल्लित हुई सखियाँ, तुम्हारी भारी स्तुति करेंगी, ऐसी स्थिति में मैं, तुम्हारा कब दर्शन करूँगा ? ॥८॥

जो कोई व्यक्ति शरणागत होकर, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका के इस प्रार्थनाष्टक का श्रद्धापूर्वक पाठ करता है, उस पाठक के निकट, प्रसन्न हुई राधिका, अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के सहित उपस्थित होकर, उसके ऊपर अपनी प्रसन्नता की तरङ्गों को अङ्गीकार करती हैं । इस अष्टक में "वसन्ततिलका"-नामक छन्द हैं ॥९॥

श्रीराधिकायै नमः ।

गीतम् ।

भैरवः ।

राधे ! जय जय माधवदयिते !, गोकुल-तरुणीमण्डल-महिते ।
दामोदर-रतिवर्धन-वेशे !, हरिनिष्कुट-वृन्दाविपिनेशे !॥१॥

वृषभानूदधि-नवशशिलेखे !, ललितासखि ! गुणरमितविशाखे ! ।
करुणां कुरु मयि करुणाभरिते !, सनकसनातन-वर्णितचरिते !॥२॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां गीतमिदं संपूर्णम् ।

—※—

भक्तानुरागिणे श्रीकृष्णाय नमः ।

श्रीअनुरागवल्ली ।

देहार्बुदानि भगवन्! युगपत् प्रयच्छ, वक्त्रार्बुदानि च पुनः प्रतिदेहमेव ।
जिह्वार्बुदानि कृपया प्रतिवक्त्रमेव, नृत्यन्तु तेषु तव नाथ! गुणार्बुदानि ॥१

हे कृष्णप्रेयसि ! श्रीमती राधिके ! आप की बारंवार जय-जयकार हो; क्योंकि आप व्रज के तरुणीमण्डल के द्वारा पूजित हो, एवं आप का वेष, श्रीकृष्ण की प्रीति को बढ़ानेवाला है, तथा श्रीकृष्ण के उपवनस्वरूप श्रीवृन्दावन की आप अधीश्वरी हो; ॥१॥

एवं अपने पिता श्रीवृषभानुरूप-समुद्र से उत्पन्न होनेवाली नवीन चन्द्रलेखा हो, ललिता की प्यारी सखी हो; सौहार्द-कारुण्य एवं श्रीकृष्ण की अनुकूलता आदि गुणों के द्वारा, विशाखा को आनन्दित करनेवाली हो, करुणा से परिपूर्ण हो, अतः मेरे ऊपर भी करुणा कर दीजिये; क्योंकि आपका करुणामय चरित्र, श्रीसनक-सनातन आदि ऋषियों के द्वारा वर्णित है ।।२।।

—※—

हे भगवन् श्रीकृष्णचन्द्र ! आप कृपा करके मेरे लिये एकसाथ दस करोड़ शरीर दे दीजिये, एवं उन प्रत्येक शरीरों में, दस-दस करोड़ मुख दे दीजिये, तथा उन दस करोड़ मुखों में, प्रत्येक में दस-दस करोड़ जिह्वा दे दीजिये । हे नाथ ! मेरी उन जिह्वाओंपर आपके अरबों-खरबों गुण नृत्य करते रहें ।।१।।

किमात्मना ? यत्र न देहकोट्यो, देहेन किं ? यत्र न वक्त्रकोट्यः ।
वक्त्रेण किं ? यत्र न कोटिजिह्वाः, किं जिह्वया ? यत्र न नामकोट्यः ॥२॥

आत्मास्तु नित्यं शतदेहवर्ती, देहस्तु नाथास्तु सहस्रवक्त्रः ।
वक्त्रं सदा राजतु लक्षजिह्वं, गृह्णातु जिह्वा तव नामकोटिम् ॥३॥

यदा यदा माधव ! यत्र यत्र, गायन्ति ये ये तव नामलीलाः ।
तत्रैव कर्णायुत-धार्यमाणा, -स्तास्ते सुधा नित्यमहं धयानि ॥४॥

कर्णायुतस्यैव भवन्तु लक्ष, -कोट्यो रसज्ञा भगवंस्तदैव ।
येनैव लीलाः शृणवानि नित्यं, तेनैव गायानि ततः सुखं मे ॥५॥

कर्णायुतन्येक्षण-कोटिरस्या, हृत्कोटिरस्या रसनार्बुदं स्तात् ।
श्रुत्वैव दृष्ट्वा तव रूपसिन्धु, -मालिंग्य माधुर्यमहो ! धयानि ॥६॥

हे प्रभो ! उस जीवात्मा से क्या प्रयोजन कि, जिस जीवात्मा में करोड़ों शरीर न हों ? उस शरीर से भी क्या प्रयोजन कि, जिस शरीर में करोड़ों मुख न हों ? उस मुख से भी क्या प्रयोजन कि, जिस मुख में करोड़ों जिह्वा न हों ? ऐसी जिह्वा से भी क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ कि, जिस जिह्वापर आपके करोड़ों नाम न विद्यमान हों ? अतः मेरे लिये तो समुचित ही व्यवस्था कर दीजिये ॥२॥

हे नाथ! मेरा जीवात्मा तो सदा सैंकड़ों शरीरों में विद्यमान रहे, एवं वह मेरा प्रत्येक शरीर भी हजार मुखवाला हो जाय, तथा वह प्रत्येक मुख भी लाखों जिह्वाओं से युक्त होकर शोभा पाता रहे, और वह मेरी प्रत्येक जिह्वा आपके करोड़ों नामों को लेती रहे । आपके श्रीचरणों में मेरी यही विनम्र प्रार्थना है ॥३॥

हे माधव ! आपके जो जो प्रेमीभक्त, जब-जब जिस-जिस स्थानपर, आपके नाम एवं आपकी लीलाओं का गायन करते हों, उसी स्थानपर दस हजार कानों के द्वारा धारण की गई, आपकी उन नाम-लीलारूप सुधाओं का, मैं नित्य पान करता रहूँ ॥४॥

हे भगवन् ! पूर्वोक्त श्लोक में मैंने आप से दस हजार कानों की प्रार्थना की है । आपके द्वारा प्राप्त, मेरे दस हजार कानों की उसी समय लाखों-करोड़ों जिह्वाएँ बन जायँ, जिससे कि मैं जिन कानों के द्वारा आपकी लीलाओं का नित्य श्रवण कर सकूँ, एवं जिह्वारूप में परिणत उन्हीं कानों के द्वारा, यदि मैं आपकी लीलाओं का गायन करूँ, तब तो मुझे महान् सुख होगा ॥५॥

नेत्रार्बुदस्यैव भवन्तु कर्ण, –नासा–रसज्ञा हृदयार्बुदं वा ।
सौन्दर्य–सौस्वर्य–सुगन्धपूर, –माधुर्य-संश्लेष–रसानुभूत्यै ॥७॥

त्वत्पार्श्वगत्यै पदकोटिरस्तु, सेवां विधातुं मम हस्तकोटिः ।
तां शिक्षितुं स्तादपि बुद्धिकोटि,–रेतान् वरान्मे भगवन् ! प्रयच्छ ॥८॥

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुरविरचित–स्तवामृतलहर्यां
श्रीअनुरागवल्ली संपूर्णा ।

हे प्रभो ! आपके प्रसाद से प्राप्त होनेवाले, मेरे दस हजार कानों के करोड़ों नेत्र हो जायँ, एवं उन्हीं करोड़ों नेत्रों के करोड़ों हृदय हो जायँ, तथा उन्हीं करोड़ों हृदयों के दस करोड़ जिह्वा हो जायँ, ऐसी व्यवस्था कर देने से, मैं आपके लोकोत्तर रूपसिन्धु को दस हजार नेत्रों से सुनकर, एवं तत्काल नेत्ररूप में परिणत हुए करोड़ों नेत्रों के द्वारा, आपके रूपसिन्धु का दर्शन करके, तथा तत्काल हृदयरूप में परिणत करोड़ों हृदयों से आपका आलिंगन कर, और दस करोड़ जिह्वाओं से आपके माधुर्य का पान कर सकूँगा ।।६।।

हे प्रभो ! आपके सौन्दर्यामृत का पान करने के लिये, मेरे दस करोड़ नेत्र हो जायँ; एवं आपके सुमधुर स्वर को सुनने के लिये, मेरे दस करोड़ कान हो जायँ; एवं आपके श्रीविग्रह की लोकोत्तर सुगन्धी को ग्रहण करने के लिये, मेरे दस करोड़ नासिका हो जायँ; एवं आपके नाम-रूप-गुण-लीला आदिकों का आस्वादन करने के लिये, मुझे दस करोड़ जिह्वा प्राप्त हो जायँ; तथा आपका आलिंगनरूप रस का अनुभव करने के लिये, मेरे दस करोड़ हृदय बन जायँ ।।७।।

हे भगवन् ! आप कृपा करके मुझे इन वरों को और दे दीजिये कि, आपके निकट जाने के लिये मेरे करोड़ों चरण हो जायँ, एवं आपकी सेवा करने के लिये मेरे करोड़ों हाथ बन जायँ, तथा आपकी सेवा को सिखाने के लिये मेरे करोड़ों प्रकार की बुद्धि हो जाय । ऐसा करने से मैं महान् सुखी हो जाऊँगा । इन सभी श्लोकों में "अनुरागवल्ली"-कार का भगवान् के नाम-रूप-गुण-लीला आदि के कीर्तन आदि के प्रति, श्रीपृथुजी महाराज की तरह, लोकोत्तर अनुराग प्रदर्शित हुआ है ।।८।।

श्रीकृष्णचैतन्यचन्द्रो विजयतेतमाम् ।

श्रीउपदेशामृतम् ।

वाचो वेगं मनसः क्रोधवेगं
जिह्वावेगमुदरोपस्थवेगम् ।
एतान् वेगान् यो विषहेत धीरः
सर्वामपीमां पृथिवीं स शिष्यात् ॥१॥

श्रीगुरुदेव की कृपारूप-बल से, ईश्वर के संबंध को जानकर, कुछ पुण्यात्मा जीव ही, भगवद्भजन में प्रयत्नशील होते हैं। ऐसे जीवों के लिये ही, श्रीरूप गोस्वामी ने इस उपदेशामृत का उपदेश दिया है; क्योंकि आपने ऐसे सज्जीवों के लिये अपने "श्रीभक्तिरसामृत-सिन्धुः" में उत्तमभक्ति का लक्षण अन्याभिलाषिताशून्य, एवं जीव ईश्वर की एकता अनुसन्धानरूप ज्ञान, एवं भगवत् प्रीतिविहीन कर्म आदि से अनावृत, तथा अनुकूलतापूर्वक श्रीकृष्ण का अनुशीलन ही बताया है। ऐसी उत्तमभक्ति का प्रादुर्भाव भी, काम-क्रोध आदि दोषों से आक्रान्त चित्तवाले जन में, कैसे हो सकता है ? अतः श्रीपद्मपुराण में कहा है "शोकामर्षादिभिर्भावैराक्रान्तं यस्य मानसम्। कथं तत्र मुकुन्दस्य स्फूर्तिसंभावना भवेत् ?।।" अतः

अपने हृदय को शुद्ध बनाने के लिये जो धीर-व्यक्ति, अपनी वाणी के वेग को, मन के वेग को, क्रोध के वेग को, जिह्वा के वेग को, उदर के वेग को, एवं जननेन्द्रिय के वेग को सहन करने में समर्थ हो जाता है; वह, समस्त पृथ्वी का शासन कर सकता है, अर्थात् ऐसे जितेन्द्रिय-व्यक्ति के सभीजन शिष्य हो जाते हैं।

तात्पर्य—काम-क्रोध-लोभ आदि दोष, मानव के मन में उत्पन्न होकर, वाणी के वेग द्वारा अर्थात् प्राणीमात्र को उद्विग्न करनेवाले वचन के प्रयोग के द्वारा; मन के वेग द्वारा अर्थात् अनेक प्रकार के मनोरथों के द्वारा; क्रोध के वेग द्वारा अर्थात् प्रीतिशून्य कटुवचनों के प्रयोग द्वारा; जिह्वा के वेग द्वारा अर्थात् खट्टे-मीठे आदि छः प्रकार के रसों की लालसा द्वारा; उदर के वेग द्वारा अर्थात् अधिक भोजन के द्वारा; उपस्थ के वेग द्वारा अर्थात् स्त्री-पुरुष-संयोगरूप लालसा द्वारा मन को असद्विषयों में आविष्ट कर देते हैं। ऐसे दूषित-मन में शुद्धभक्ति का अनुशीलन नहीं हो पाता। भक्ति-अनुशीलन के

अत्याहारः प्रयासश्च प्रजल्पो नियमाग्रहः ।
जनसंगश्च लौल्यं च षड्भिर्भक्तिर्विनश्यति ॥२॥

उत्साहान्निश्चयाद्धैर्यात्तत्तत्कर्मप्रवर्तनात् ।
संगत्यागात् सतो वृत्तेः षड्भिर्भक्तिःप्रसिध्यति ॥३॥

समय, उक्त छः प्रकार के वेग, कच्चेसाधक के साधन में, भारी रुकावट डालनेवाले हैं। अतः भजनशील-व्यक्ति को इन छः वेगों को रोकने का प्रयत्न करते रहना चाहिये ॥१॥

द्वितीय श्लोक में भक्ति में प्रतिकूलताकारक दोषों का वर्णन है। यथा—अधिक आहार, अधिक परिश्रम, वृथा आलाप, नियमाग्रह, जनसङ्ग, एवं लौल्य। इन छः दोषों से भक्ति विनष्ट हो जाती है।

अर्थात् उदर में चार विभाग हैं, दो भाग अन्न से पूर्ण करने चाहिये, तीसरा जल से, एवं चौथा विभाग वायु के प्रचार के लिये खाली छोड़ देना चाहिये। कहा भी है कि, "द्वौ भागौ पूरयेदन्नैस्तृतीयं तु जलेन वै। वायोश्चैव प्रचारार्थं चतुर्थमवशेषयेत् ।।" इस नियम को छोड़कर, भोजन करना ही 'अत्याहार'-शब्द से कहा जाता है, अथवा भा० ७।१४।८ "यावद् भ्रियेत जठरं तावत् स्वत्वं हि देहिनाम्। अधिकं योऽभिमन्येत स स्तेनो दण्डमर्हति ।।" इस नियम को लांघकर, अधिक अनावश्यक संग्रह करना भी 'अत्याहार'-शब्द से कहा जाता है। सांसारिक विषयों के बटोरने में, एवं भक्तिविरोधी चेष्टाओं में लगे रहना ही 'प्रयास'-शब्द से कहा जाता है। समय का दूरोपयोग करनेवाली अनावश्यक वृथा बातों को करना ही 'प्रजल्प'-शब्द से कहा जाता है। भगवत्-सेवाप्राप्तिरूप उच्चतम अधिकार की प्राप्ति के लिये, निम्नतम स्वर्गादि की प्राप्ति के नियमों में आग्रह करना, एवं भक्तिपोषक नियमों का ग्रहण न करना ही 'नियमाग्रह'-शब्द से कहा जाता है। विशुद्धभक्तों के सङ्ग को छोड़कर, अन्यजनों का सङ्ग करना ही 'जनसङ्ग'-शब्द से कहा जाता है। तुच्छ विषयों में चित्त की चञ्चलता, एवं अनेक मतवादियों के सङ्ग से, अपने मत में अस्थिरता ही 'लौल्य'-शब्द से कही जाती है। इन छः प्रकार के प्रतिकूल साधनों के द्वारा भक्तिदेवी का अदर्शन हो जाता है ॥२॥

जीवनयात्रा का निर्वाह एवं भक्ति का अनुशीलन करना, ये दो बातें आवश्यक हैं। आधे श्लोक में भक्ति के अनुशीलन की अनुकूल-

ददाति प्रतिगृह्णाति गुह्यमाख्याति पृच्छति।
भुंक्ते भोजयते चैव षड्विधं प्रीतिलक्षणम् ॥४॥

कृष्णेति यस्य गिरि तं मनसाद्रियेत
दीक्षास्ति चेत् प्रणतिभिश्च भजन्तमीशम्।
शुश्रूषया भजनविज्ञमनन्यमन्य-
निन्दादिशून्यहृदमीप्सितसंगलब्ध्या ॥५॥

क्रियाओं की व्यवस्था है, और आधे में भक्त के जीवनयात्रा की व्यवस्था है।

भक्तिवर्धक नियमों में उत्साह रखना, शास्त्र एवं शास्त्रानुकूल-गुरुदेव के वचनों में दृढविश्वास रखना, अनेक विघ्न आनेपर भी भक्ति के साधनों में धैर्य रखना; भक्तिविरोधी-मायावादी-निरीश्वरवादी, एवं धर्मध्वजीजनों का सङ्ग छोड़ देना; तथा सज्जनों का सा आचार एवं सज्जनों की सी वृत्ति ग्रहण कर लेना। इन छः प्रकार के साधनों से भक्ति, वृद्धि को प्राप्त हो जाती है ॥३॥

भक्तिविरोधी-जनों से प्रीति रखना भक्तिपक्ष में त्याज्य है; किन्तु विशुद्धभक्तों से प्रीति रखना भक्तिपक्ष में ग्राह्य है। वह प्रीति छः प्रकार की होती है।

विशुद्ध-भक्त को उनकी सेवानुरूप वस्तु को उनके लिये देना, एवं विशुद्ध-भक्त के द्वारा दी हुई प्रसादीवस्तु का प्रतिग्रहण करना, भजनसंबंधी अपने गुप्तरहस्य की बातें भक्त के निकट कह देना, एवं रहस्यमयी गुप्तबातों को भक्त से पूछना, भक्त के द्वारा दिये हुए प्रसाद को प्रेमपूर्वक खाना, एवं भक्त को प्रेमपूर्वक भोजन कराना। ये छः सत्प्रीति के लक्षण हैं ॥४॥

"ईश्वरे तदधीनेषु बालिशेषु द्विषत्सु च। प्रेम-मैत्री-कृपोपेक्षा यः करोति स मध्यमः ॥" भा० ११।२।४६ अर्थात् जो व्यक्ति, ईश्वर में प्रेम करता है, एवं ईश्वर के अधीन भक्तोंपर मित्रता, दुःखी और अज्ञानियोंपर कृपा, तथा ईश्वर से या अपने से द्वेष करनेवालों की उपेक्षा करता है, वह मध्यमकोटि का भक्त कहलाता है। इस भागवतीय शिक्षा के अनुसार इस पञ्चम श्लोक में मध्यम-भक्त के आचरण का निर्देश करते हैं।

दृष्टैः स्वभावजनितैर्वपुषश्च दोषै-
　र्न प्राकृतत्वमिह भक्तजनस्य पश्येत् ।
गंगांभसां न खलु बुद्बुदफेनपंकै-
　र्ब्रह्मद्रवत्वमपगच्छति नीरधर्मैः ॥६॥

स्यात् कृष्ण-नाम-चरितादि-सिताप्यविद्या-
　पित्तोपतप्तरसनस्य न रोचिका नु ।
किन्त्वादरादनुदिनं खलु सैव जुष्टा
　स्वाद्वी क्रमाद्भवति तद्गदमूलहन्त्री ॥७॥

जिसकी वाणीपर "हे कृष्ण !" इत्यादि नामावली विराजमान है, उसका मन-मन से आदर करना चाहिये, एवं "दिव्यं ज्ञानं यतो दद्यात् कुर्यात् पापस्य संक्षयम् । तस्माद्दीक्षेति सा प्रोक्ता देशिकैस्तत्त्वकोविदैः ।।" इसके अनुसार, दीक्षा के तत्त्व को समझ कर, जिस व्यक्ति ने, योग्य गुरुदेव से यदि दीक्षा ग्रहण कर ली है, एवं भगवान् का भजन भी वैष्णवप्रणाली के अनुसार करता है; उस व्यक्ति का आदर, प्रणाम के द्वारा करना चाहिये; और जो व्यक्ति श्रीमद्भागवत आदि वैष्णवस्मृतियाँ के अनुसार भजन के तत्त्व को भलीप्रकार जानता है, अतएव श्रीकृष्ण का अनन्यभक्त है, अतएव दूसरों की निन्दा आदि से शून्य हृदयवाला है, ऐसे विशिष्टव्यक्ति का आदर तो अभीष्ट सङ्गलाभ के कारण, सेवापूर्वक करना चाहिये ।।५।।

शुद्धभक्तों में किसी प्रकार के तात्कालिक दोष देखकर, उनको प्राकृत नहीं मानना चाहिये । षष्ठ श्लोक में ये उपदेश देते हैं—

इस जगत् में भक्तजन में, स्वभाव से जनित कठोरता आदि, एवं शरीर से उत्पन्न कुरूपता आदि दिखाइ देनेवाले दोषों के द्वारा, भक्तजन का प्राकृतपना नहीं देखना चाहिये; क्योंकि अपने से ही उत्पन्न होने होनेवाले जल के स्वाभाविक धर्मरूप बुलबुले, फेन, एवं कीचड़ आदि के संबंध से, गंगाजल का द्रवीभूत ब्रह्मस्वरूपतारूप गुण, दूर नहीं भाग जाता है । इसी प्रकार भक्तजन में, दोषदृष्टि करना उचित नहीं है ।।६।।

श्रीकृष्ण के नाम एवं चरित्र आदि सभी मिस्रीस्वरूप हैं, अर्थात् मिस्री के समान मीठे हैं, तो भी अविद्यारूप-पित्त से सन्तप्त जिह्वावाले व्यक्ति को, वे रुचिकर नहीं हो सकते; किन्तु श्रीकृष्ण के मिस्रीस्वरूप

तन्नाम–रूप–चरितादि–सुकीर्तनानु–
स्मृत्योः क्रमेण रसनामनसी नियोज्य।
तिष्ठन् व्रजे तदनुरागि–जनानुगामी
कालं नयेदखिलमित्युपदेशसारम् ॥८॥

वे नाम एवं चरित्र आदि, आदरपूर्वक प्रतिदिन सेवन करनेपर, क्रमशः मीठे होकर, उस अविद्यारूपी पित्तरोग के विनाशक बन जाते हैं। भावार्थ—यद्यपि जीवमात्र ही श्रीकृष्ण के नित्यदास हैं; अपने नित्यदासत्व को भूल जाने के कारण, अविद्यारूप-रोग से आक्रान्त जिह्वावाले होकर, श्रीकृष्ण के नाम आदिकों में रुचि से शून्य हो गये हैं; किन्तु साधुजन एवं गुरुजनों की कृपा से, श्रीकृष्ण के नाम आदिकों के, प्रतिदिन के सेवन के प्रभाव से, फिर भी अपने स्वरूप का लाभ कर सकते हैं। उसी के कारण, नाम आदिक में रुचि भी बढ़ जाती है। साथ ही अविद्यारूप-रोग भी समूल नष्ट हो जाता है। इस श्लोक में मिस्री ही दृष्टान्तस्थल है, अर्थात् जिसकी जिह्वा पित्तरोग से दूषित है, उसको मिस्री मीठी होनेपर भी अच्छी नहीं लगती; किन्तु प्रतिदिन सेवन करनेपर रोग दूर होते ही, मीठी लगने लग जाती है; अतः भक्तमात्र को परमोत्साह, विश्वास, एवं धैर्य के सहित, श्रीकृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीला आदि का श्रवण-कीर्तन आदि करते रहना चाहिये ॥७॥

इस श्लोक में भजन की प्रणाली, एवं भजन के योग्य स्थान की व्यवस्था का वर्णन है।

भक्तमात्र को चाहिये की, वह अपनी जिह्वा एवं मन को, श्रीकृष्ण के नाम-रूप-गुण-लीला आदि के भलीप्रकार कीर्तन एवं स्मरण में, क्रमशः लगाकर, श्रीव्रजमण्डल में ही रहकर, श्रीकृष्ण के अनुरागीजनों का अनुगामी बनकर, अपने समस्त समय को व्यतीत करता रहे; यही उपदेशों का सार है।

श्रीरूप गोस्वामी ने भ०र०सि० १।२।२९४ में कहा है कि— "कृष्णं स्मरन् जनं चास्य प्रेष्ठं निजसमीहितम्। तत्तत्कथारतश्चासौ कुर्याद् वासं व्रजे सदा॥" अपने भावानुसार प्रियतम श्रीकृष्ण का, एवं अपने भावानुसारी श्रीकृष्ण के भक्तों का स्मरण करता हुआ, तथा अपने भावानुकूल श्रीकृष्ण की कथाओं में संलग्न होकर, भक्तमात्र को सदा व्रजमण्डल में ही निवास करते रहना चाहिये। अर्थात्

शान्तरसवाले भक्त को गो-वेत्र-वेगु-कदंव आदि के अनुगत होकर, एवं दास्यरसवाले भक्त को रक्तक-पत्रक आदि के, सख्यरसवाले भक्त को श्रीबलदेव-श्रीदामा-सुदामा आदि के, वात्सल्यरसवाले भक्त को श्रीनन्द-यशोदा आदि के, एवं शृङ्गाररसवाले भक्त को श्रीराधिका-ललिता आदि के अनुगत होकर, भावसंबंधी उन्हीं की कथाओं में निमग्न होकर, व्रजमण्डल में रहना चाहिये। व्रजमण्डल में रहकर ही भजन करने का तात्पर्य यह है कि, अंगूर-बादाम-केसर आदि लौकिकपदार्थ भी अपनी वृद्धि के लिये, जैसे स्थानविशेष को चाहते हैं, उसी प्रकार लोकोत्तर-भजनीयवस्तु के भजनविशेष के लिये भी, लोकोत्तरस्थान ही चाहिये। व्रजमण्डल से लोकोत्तर कोई भी स्थान भजन के लिये नहीं बतलाया है। इसीलिए ब्रह्मा एवं उद्धव आदि भक्तश्रेष्ठ भी, व्रज में तृणरूप से जन्म लेकर भी, निवास करने की प्रार्थना करते हैं, यथा—"तद् भूरिभाग्य" भा० १०।१४।३४ तथा "आसामहो" भा० १०।४७।६१। ध्रुव के प्रति भजनस्थल का निर्देश करते हुए नारदजी ने भी, ध्रुव को मथुरामण्डल में ही भेजा है, यथा—"तत्तात गच्छ भद्रं ते यमुनायास्तटं शुचि। पुण्यं मधुवनं यत्र सांनिध्यं नित्यदा हरेः।। भा० ४।८।४२। व्रजमण्डल का माहात्म्य प्रतिपादन करते हुए श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती ने भी, 'वृन्दावनमहिमामृत' के नाम से सौ-शतकों का निर्माण किया है, एवं अपने 'सङ्गीतमाधव' १५।२ में भी कहते हैं कि, "चरत विकुण्ठादपि रमणीये। व्रजवलये शिव-विधि-कमनीये।। पुलिने पुलिने तपन-सुतायाः। भ्रमत न यत्र प्रसरति माया।।" हे भक्तो! वैकुण्ठ से भी रमणीय एवं शिव-ब्रह्मा आदिकों के भी वांछनीय, श्रीव्रजमण्डल में विचरण करते रहो, एवं यमुनाजी के प्रत्येक पुलिन में भ्रमण करते रहो; क्योंकि वहाँपर माया का प्रसार नहीं है। आजकल के भक्तों की भी यही भावना है कि—

"कहीं मान प्रतिष्ठा मिलै न मिलै, अपमान गले में बँधाना पड़े।
जल-भोजन की परवाह नहीं, करके व्रत जन्म विताना पड़े।।
अभिलाष नहीं सुख की कुछ भी, दुःख नित्य नवीन उठाना पड़े।
व्रजभूमि से वाहर किन्तु प्रभो!, हम को कभी भूल न जाना पड़े।।"

'श्रीचैतन्यचरितामृत' मध्यलीला ८, २५३ में भी "'सर्व त्यजि' जीवेर कर्तव्य काहाँ वास?।"श्रीवृन्दावनभूमि याहाँ नित्य-लीलारास'।।" 'श्रीअलंकार-कौस्तुभ' किरण ८, २३६ में भी "क्व स्थेयं व्रज एव

वैकुण्ठाज्जनितो वरा मधुपुरी तत्रापि रासोत्सवाद्–
वृन्दारण्यमुदारपाणि–रमणात्तत्रापि गोवर्धनः ।
राधाकुण्डमिहापि गोकुलपतेः प्रेमामृताप्लावनात्
कुर्यादस्य विराजतो गिरितटे सेवां विवेकी न कः ?॥९॥

कर्मिभ्यः परितो हरेः प्रियतया व्यक्तिं ययुर्ज्ञानिन–
स्तेभ्यो ज्ञानविमुक्त–भक्तिपरमाः प्रेमैकनिष्ठास्ततः ।
तेभ्यस्ताः पशुपालपंकजदृशस्ताभ्योऽपि सा राधिका
प्रेष्ठा तद्वदियं तदीय–सरसी तां नाश्रयेत् कः कृती ?॥१०॥

किं श्रवणयोरानन्दि वृन्दावन,–क्रीडैका किमुपास्यमत्र महसी श्रीकृष्णराधाभिधे ।।८।।"

नवम श्लोक में भजनीयस्थानों का तारतम्य दिखलाया है, यथा—

अन्यलोकों की अपेक्षा वैकुण्ठलोक श्रेष्ठ है, अजन्मा-श्रीकृष्ण का जन्म लेने के कारण, मधुपुरी (मथुरा) श्रेष्ठ है; मथुरामण्डल में भी, रासोत्सव होने के कारण, वृन्दावन श्रेष्ठ है; उस वृन्दावन में भी, श्रीकृष्ण की विहारस्थली होने के कारण, अथवा श्रीकृष्ण के करकमल में क्रीडा करने के कारण, गोवर्धन श्रेष्ठ है; इस गोवर्धन में भी, श्रीकृष्ण के प्रेमामृत में स्नान कराने के कारण, राधाकुण्ड श्रेष्ठ है; अतः गोवर्धन के तट में विराजमान राधाकुण्ड का, कौनसा विवेकीव्यक्ति सेवन नहीं करेगा ? अपितु, करेगा ही ।।९।।

स्वेच्छाचार-परायण जीवों की अपेक्षा निष्काम कर्म करनेवाले जन, श्रीकृष्ण के प्रियरूप से प्रसिद्ध हैं, एवं उन कर्मकाण्डियों की अपेक्षा ज्ञानीजन; ज्ञानियों की अपेक्षा "ज्ञाने प्रयासमुदपास्य" भा० १०।१४।३ इस उक्ति के अनुसार, ज्ञान के प्रयास को छोड़कर, केवल भक्ति को ही श्रेष्ठ माननेवाले भक्तजन श्रीकृष्ण के प्यारे हैं; तथा सब प्रकार के भक्तों से, केवल प्रेम की निष्ठावाले भक्तजन प्रिय हैं, उन सब प्रेमीभक्तों की अपेक्षा सब गोपियाँ श्रीकृष्ण की प्रियतमा हैं; उन गोपियाँ की अपेक्षा श्रीमती राधिका जिस प्रकार श्रीकृष्ण की अतिशय प्यारी हैं, उसी प्रकार यह राधाकुण्ड भी श्रीकृष्ण का अतिशय प्यारा है । अतः ऐसा कौन सुचतुर व्यक्ति होगा कि, जो श्रीराधाकुण्ड का आश्रय न लेगा ? अपितु, लेगा ही ।।१०।।

कृष्णस्योच्चैः प्रणयवसतिः प्रेयसीभ्योऽपि राधा
कुण्डं चास्या मुनिभिरभितस्तादृगेव व्यधायि ।
यत् प्रेष्ठैरप्यलमसुलभं किं पुनर्भक्तिभाजां
तत् प्रेमेदं सकृदपि सरः स्नातुराविष्करोति ॥११॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचितं श्रीउपदेशामृतं संपूर्णम् ।

—※—

श्रीकृष्णकुण्डाय नमः ।

श्रीकृष्णकुण्डाष्टकम् ।

किं तपश्चचार तीर्थलक्षमक्षयं पुरा
सुप्रसीदति स्म कृष्ण एव सद्वरं यतः ।
यत्र वासमाप साधु तत् समस्त-दुर्लभे
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥१॥

अन्य प्रियतमा गोपियाँ की अपेक्षा श्रीकृष्ण की, श्रीमती राधिका जिस प्रकार प्रीतिपात्र हैं, उसी प्रकार यह राधाकुण्ड भी उनका अतिशय प्रीतिपात्र है, ऐसा मुनिजनों ने पद्मपुराण में कहा है— "यथा राधा प्रिया विष्णोस्तस्याः कुण्डं प्रियं तथा । सर्वगोपीषु सैवैका विष्णोरत्यन्तवल्लभा ॥" साधकभक्तों का तो कहना ही क्या है ? क्योंकि जो भगवत्संबंधी-प्रेम, भगवान् के अतिशय प्यारेभक्तों के लिये भी अत्यन्त दुर्लभ है; उसी प्रेम को यह राधाकुण्ड, एकबार स्नान करनेवाले व्यक्ति के लिये प्रगट कर देता है ॥११॥

—※—

अहह ! श्रीगङ्गा आदि लाखों तीर्थों ने पहले ऐसा कौनसा अक्षयतप किया है कि, जिसके कारण उनके ऊपर श्रीकृष्ण ही श्रेष्ठ वरदान देते हुए सुप्रसन्न हो गये, एवं उन समस्त तीर्थों के लिये अत्यन्त दुर्लभ जिस कृष्णकुण्ड में भलीप्रकार निवास प्राप्त हो गया, अतः उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही, हमारा प्रशंसनीय निवास होता रहे ॥१॥

यद्यरिष्टदानवोऽपि दानदो महानिधे–
रस्मदादि–दुर्मतिश्च इत्यहोवसीयते ।
यो मृतिच्छलेन यत्र मुक्तिमद्भुतां व्यधात्
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥२॥

गोवधस्य निष्कृतिस्त्रिलोकतीर्थ–कोटिभी–
राधयेत्यवादि तेन ता हरिः समाह्वयत् ।
यत्र पार्ष्णिघातजे ममज्ज च स्वयं मुदा
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥३॥

क्वापि पापनाश एव कर्मबन्ध–बन्धनाद्
ब्रह्मसौख्यमेव विष्णुलोकवासिता क्वचित् ।
प्रेमरत्नमत्ययत्नमेव यत्र लभ्यते
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥४॥

अहो ! यद्यपि वह अरिष्टासुर दानव था, तो भी हम जैसे दुर्बुद्धियों के लिये, महान् निधि का दान करनेवाला वन गया, यह सिद्धान्त ही निश्चित होता है; क्योंकि जिस अरिष्ट ने अपने मरने के बहाने, जिस कृष्णकुण्ड में स्नान करनेवाले प्राणीमात्र के लिये, आश्चर्यमयी मुक्ति का विधान कर दिया, अतः हमारा प्रशंसनीय निवास तो उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही होता रहे ॥२॥

अरिष्टवध के अनन्तर श्रीमती राधिका, श्रीकृष्ण से बोलीं कि, "आप के द्वारा किये गये गो-वध का प्रायश्चित्त, तीनों लोकों में विद्यमान करोड़ों तीर्थों के द्वारा हो सकता है" राधिका की इस उक्ति के कारण श्रीकृष्ण ने, अपनी एड़ी के प्रहार के द्वारा वनाये हुए जिस कृष्णकुण्ड में, करोड़ों तीर्थों को बुला लिया, एवं जिसमें हर्षपूर्वक स्वयं भी स्नान किया, उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही, हमारा प्रशंसनीय निवास होता रहे ॥३॥

देखो, किसी तीर्थ में स्नान करने से तो केवल पापों का ही नाश हो पाता है, एवं किसी में कर्मवन्धनरूप-रज्जु से छुटकारा ही मिल पाता है, एवं किसी तीर्थ में स्नान करने से ब्रह्मानन्द का सुख मिल पाता है, तो किसी में स्नान करने से विष्णुलोक का निवास मिल पाता है; किन्तु जिस कृष्णकुण्ड में स्नान करने मात्र से, प्रेमरूपी-रत्न अनायास ही मिल जाता है, उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही, हमारा प्रशंसनीय निवास होता रहे ॥४॥

फुल्ल–माधवी–रसाल–नीपकुंजमण्डले
भृङ्गकोककोकिलादि–काकली यदश्चति ।
आष्टयामिकावितर्क–कोटिभेद–सौरभं
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥५॥

दोल–केलि–चित्ररास–नृत्यगीतिवादनै–
र्निह्नव–प्रसूनयुद्ध–सीधुपान–कौतुकैः ।
यत्र खेलतः किशोरशेखरौ सहालिभि–
स्तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥६॥

दिव्यरत्ननिर्मितावतार–सारसौष्ठवै–
श्छत्रिका–विराजि–चारु–कुट्टिम–प्रभाभरैः ।
सर्वलोक–लोचनातिधन्यता यतो भवेत्
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥७॥

माथुरं विकुण्ठतोऽपि जन्मधाम दुर्लभं
वासकाननं ततोऽपि पाणिना धृतो गिरिः ।
श्रीहरेस्ततोऽपि यत्परं सरोऽतिपावनं
तत्र कृष्णकुण्ड एव संस्थितिः स्तुतास्तु नः ॥८॥

उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही हमारा प्रशंसनीय निवास होता रहे कि, जिसके तीरपर खिली हुई माधवीलता, आम्र, एवं कदंब आदि वृक्षों के निकुञ्जपुञ्ज में, भृङ्ग-चक्रवाक-कोकिल आदिकों की मधुर-ध्वनियाँ गूँजती रहती हैं; एवं जो कुण्ड, राधा-कृष्ण के अष्टकालीन करोड़ों प्रकार के तर्कवितर्कों से मनोहर सुगन्धमय बना रहता है ।।५।।

उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही हमारा प्रशंसनीय निवास बना रहे कि, जिसके तीरपर किशोरशिरोमणि राधा-कृष्ण की युगलजोड़ी, अपनी सखियों के सहित झूलालीला, अनेक प्रकार की रासलीला, नाचना, गाना, बजाना, आँखमिचौनी, पुष्पयुद्ध, मधुपान आदि खेलों के द्वारा खेलती रहती है ।।६।।

हमारा प्रशंसनीय निवास उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही होता रहे कि, दिव्यरत्नों के द्वारा बनी हुई जिसकी सीढ़ियों की दृढता एवं सुन्दरताओं के द्वारा, एवं चारों ओर विराजमान छतरियों की मनोहर मणिमय भूमियों की अधिक कान्तियों के द्वारा, सभी दर्शकलोगों के नेत्रों की अतिशय धन्यता हो जाती है ।।७।।

कृष्णकुण्डतीरवास–साधकं पठेदिदं
योऽष्टकं धियं निमज्य केलिकुंजराजतोः ।
राधिका–गिरीन्द्रधारिणोः पदांबुजेषु स
प्रेमदास्यमेव शीघ्रमाप्नुयादनामयम् ॥९॥

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुरविरचितं श्रीकृष्णकुण्डाष्टकं संपूर्णम् ।

—*—

श्रीगोवर्धन-पादपद्मेभ्यो नमः ।

श्रीगोवर्धनवासप्रार्थनादशकम् ।

निजपतिभुजदण्डच्छत्रभावं प्रपद्य
प्रतिहतमदधृष्टोद्दण्डदेवेन्द्रगर्वं ! ।
अतुलपृथुलशैलश्रेणिभूप ! प्रियं मे
निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥१॥

श्रीकृष्ण की जन्मभूमि होने के कारण, मथुरापुरी वैकुण्ठ से भी दुर्लभ है; रासविलास आदि अनेक लीलाओं का स्थल होने के कारण, श्रीवृन्दावन तो मथुरा से भी अधिक दुर्लभ है; एवं श्रीकृष्ण के करकमल द्वारा धारण किया हुआ गिरिराज तो, सभी लीलाओं का स्थान होने के कारण, वृन्दावन से भी दुर्लभ माना गया है; तथा श्रीकृष्ण की एड़ी के प्रहार से निर्मित, और सभी तीर्थों का निवासस्थान-स्वरूप परमपावन जो कृष्णकुण्ड है, वह तो गिरिराज से भी दुर्लभ माना गया है; अतः परम प्रसंसनीय हमारा निवास तो, उस कृष्णकुण्ड के तीरपर ही होता रहे ।।८।।

जो व्यक्ति, क्रीडानिकुञ्ज में विराजमान श्रीराधा-कृष्ण के चरणारविन्दों में बुद्धि को लगाकर, कृष्णकुण्ड के तीरपर निवास के साधक, इस कृष्णकुण्डाष्टक का भावपूर्वक पाठ करेगा, तो वह व्यक्ति, प्रभु का प्रेमभरा दास्यभाव, नीरोगतापूर्वक शीघ्र ही प्राप्त कर लेगा । इस अष्टक में "तूणक"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

हे अतुल विस्तारवाली पर्वतश्रेणी के भूप ! श्रीमन् गोवर्धन ! आप, मुझ को अपने निकट निवास प्रदान कीजिये । आपके निकट रहना ही मुझ को प्रिय लगता है; क्योंकि आप अपने स्वामी श्रीकृष्ण

प्रमदमदनलीलाः कन्दरे कन्दरे ते
  रचयति नवयूनोर्द्वन्द्वमस्मिन्नमन्दम्।
इति किल कलनार्थं लग्नकस्तद्द्वयोर्मे
  निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥२॥

अनुपम–मणिवेदी–रत्नसिंहासनोर्वी–
  रुहझर–दरसानुद्रोणि–संघेषु रंगैः।
सह बल–सखिभिः संखेलयन् स्वप्रियं मे
  निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥३॥

रसनिधि–नवयूनोः साक्षिणीं दानकेले–
  द्यु तिपरिमलविद्धां श्यामवेदीं प्रकाश्य।
रसिकवरकुलानां मोदमास्फालयन्मे
  निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥४॥

के भुजारूप-दण्ड के ऊपर छत्रभाव को प्राप्त होकर, ऐश्वर्य के मद से धृष्ट एवं उद्दण्ड, देवेन्द्र के गर्व को विनष्ट करनेवाले हो !॥१॥

हे गोवर्धन ! आप, मुझ को अपने निकट ही निवास प्रदान कीजिये; क्योंकि नवयुवकस्वरूप श्रीराधा-कृष्ण की युगलजोड़ी, आपकी प्रत्येक कन्दरा में, हर्षप्रद प्रेममयी लीलाओं को विशेषरूप से करती रहती है। मैं, उन दोनों की लीलाओं को देखने के लिये मध्यस्थ बनना चाहता हूँ ॥२॥

हे गोवर्धन ! आप, मुझे अपने निकट ही निवासस्थान दे दीजिये। यदि कहो कि, श्रीराधाकृष्ण की लीलाएँ तो संकेत आदि वनों में भी होती हैं, उनके निकट ही क्यों नहीं रहना चाहते हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि, आप तो अपने प्यारे श्रीकृष्ण को अपनी अनुपम मणिमयी वेदियोंपर, रत्नमय सिंहासनपर, वृक्षों के नीचे, एवं झरनों में, दरारों में, शिखरों के ऊपर, तथा गुफाओं की श्रेणी में, बलदेव एवं श्रीदामा आदि सखाओं के सहित, कौतुकपूर्वक क्रीडा कराते हुए प्रसन्न करते रहते हो ॥३॥

हे गोवर्धन ! आप, मुझे अपने निकट ही निवासस्थान दे दीजिये; क्योंकि आप रसनिधि नवयुवक-श्रीराधाकृष्ण की दानकेलि की साक्षिणी एवं कान्ति तथा मनोहर गन्ध से युक्त, श्यामवेदी को प्रकाशित करके, रसिकश्रेष्ठ श्रीकृष्णभक्तों के आनन्द को बढ़ाते हुए विद्यमान हो ॥४॥

हरिदयितमपूर्वं राधिका-कुण्डमात्म-
प्रियसखमिह कण्ठे नर्मणाऽऽलिङ्गय गुप्तः।
नवयुवयुग-खेलास्तत्र पश्यन् रहो मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥५॥

स्थल-जल-तल-शष्पैर्भूरुहच्छायया च
प्रतिपदमनुकालं हन्त संवर्धयन् गाः।
त्रिजगति निजगोत्रं सार्थकं ख्यापयन्मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥६॥

सुरपतिकृत-दीर्घद्रोहतो गोष्ठरक्षां
तव नव-गृहरूपस्यान्तरे कुर्वतैव।
अघ-बक-रिपुणोच्चैर्दत्तमान ! द्रुतं मे
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥७॥

यदि कहो कि, मेरे निकटवर्ती बहुतसे स्थान हैं, तुम कौनसे स्थान में रहना चाहते हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

हे गोवर्धन ! आप, मुझे अपने निकटवर्ती राधाकुण्ड में निवास दे दीजिये; क्योंकि वह राधाकुण्ड, श्रीकृष्ण का अतिशय प्रिय है, अतः अपूर्व है; और तुम्हारा भी प्यारा सखा है; इसी कारण आप, उस राधाकुण्ड को परिहासपूर्वक कण्ठ में आलिङ्गन करके, उसी राधाकुण्ड में गुप्त होकर, नवयुवक-श्रीराधाकृष्ण की क्रीडाओं को देखते रहते हो। मेरे लिये भी वही एकान्तस्थान उचित है। मैं भी वहींपर बैठकर, राधा-कृष्ण की लीलाओं को आपकी तरह अनुभव करता रहूँ ।।५।।

हे गोवर्धन ! आप, मुझे अपने निकट ही निवासस्थान दे दीजिये; क्योंकि आप स्थल-जल-तल-तृण-एवं वृक्षों की छाया के द्वारा, प्रतिक्षण पद-पदपर, गोगण की वृद्धि करते हुए "गाः वर्धयतीति" इस व्युत्पत्ति के अनुसार, अपने गोवर्धन नाम को, तीनों लोकों में सार्थक विख्यात करते रहते हो। अतः आप के निकट निवास प्राप्त हो जाने से, आप के निकट गोचारणार्थ आनेवाले, मेरे इष्टदेव श्रीकृष्ण का दर्शन, मुझे भी संभव हो सकता है ।।६।।

यदि कहो कि, तुम अपने मन में, जो-जो भावना करके, मेरे निकट निवास चाहते हो, उन भावनाओं की पूर्ति तो, श्रीवृन्दावन के किसी प्रदेश में निवास करनेपर भी हो सकती है, फिर मेरे निकट ही क्यों निवास करना चाहते हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

गिरिनृप ! हरिदासश्रेणिवर्येति–नामा–
मृतमिदमुदितं श्रीराधिकावक्त्रचन्द्रात् ।
व्रजनव–तिलकत्वे क्लृप्त ! वेदैः स्फुटं मे
निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥८॥

निज–जनयुत–राधाकृष्णमैत्रीरसाक्त–
व्रजनर–पशु–पक्षि–व्रात–सौख्यैकदातः ।
अगणित–करुणत्वान्मामुरीकृत्य तान्तं
निज–निकट–निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥९॥

हे गोवर्धन ! आप, मुझे अपने निकट शीघ्र ही निवास दे दीजिये; क्योंकि नवीन गृहरूप आप के भीतर स्थापित किये हुए व्रज की, इन्द्र के द्वारा किये गये विशाल द्रोह से, रक्षा करते हुए, अघारि एवं बकारि श्रीकृष्ण ने, आपके लिये विशेष सम्मान दिया है। श्रीकृष्ण का यह स्वभाव है कि, अपने द्वारा सम्मानित जन के निकट निवास करनेवाले, अयोग्य जनपर भी, कृपा कर देते हैं; अतः आप के निकट रहने से, मेरे ऊपर भी श्रीकृष्ण की कृपा हो सकती है ।।७।।

यदि कहो कि, "पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्" इत्यादि उक्ति में, श्रीकृष्ण के देहरूप से निरूपित, श्रीवृन्दावन के किसी प्रदेश में निवास करने से, सभी अभीष्टों की सिद्धि हो जायगी, फिर मेरे निकट ही क्यों निवास करना चाहते हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

हे गिरिराज महाराज ! देखो, श्रीमती राधिका के मुखचन्द्र से "हन्तायमद्रिरबला हरिदासवर्यः" भा० १०।२१।१८ इत्यादिरूप से, आपका "आप हरिदासों की श्रेणी में श्रेष्ठ हो" यह नामरूपी-अमृत प्रगट हुआ है; अतः सब वेदों ने आपको, व्रज के अभिनव तिलकरूप से प्रतिष्ठित कर दिया है, यह बात स्पष्ट है। इसलिए "अधिकस्याधिकं फलम्" इस न्याय के अनुसार, श्रेष्ठतम के निकट निवास करना ही योग्य है; अतः हे गोवर्धन ! मुझे अपने निकट ही निवासस्थान प्रदान कर दीजिये ।।८।।

यदि कहो कि, अपने अभीष्ट को, किसी दूसरे व्रजवासी से ही माँग लो, मेरी प्रार्थना से क्या प्रयोजन है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

निरुपधि-करुणेन श्रीशचीनन्दनेन
त्वयि कपटि-शठोऽपि त्वत्प्रियेणार्पितोऽस्मि।
इति खलु मम योग्यायोग्यतां तामगृह्णन्
निज-निकट-निवासं देहि गोवर्धन ! त्वम् ॥१०॥

रसद-दशकमस्य श्रील-गोवर्धनस्य
क्षितिधर-कुलभर्तुर्यः प्रयत्नादधीते।
स सपदि सुखदेऽस्मिन् वासमासाद्य साक्षा-
च्छुभद-युगलसेवारत्नमाप्नोति तूर्णम् ॥११॥

इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित-स्तवावल्यां
श्रीगोवर्धनवासप्रार्थनादशकं संपूर्णम्।

आप तो सखी-सखागणरूप अपने जनों से परिवेष्टित, श्रीराधाकृष्ण की मित्रतारूप-रस से युक्त, व्रज के नर-नारी, पशु-पक्षी आदि प्राणीमात्र के अद्वितीय सुखदाता हो, अर्थात् परमदयालु होने के कारण, श्रीकृष्ण के हस्त के स्पर्शमात्र से स्वयं उठकर, श्रीकृष्ण के वाम-हस्तपर विराजमान होकर, व्रजवासीमात्र की रक्षा करनेवाले हो; अतः ऐसे दयालु को छोड़कर, दूसरे कौनसे व्यक्ति से, अपने अभीष्ट की प्रार्थना करूँ ? यदि कहो कि, मैंने अपने नीचे प्रविष्ट करके, जिन व्रजवासियों की रक्षा की थी, वे तो श्रीकृष्ण की प्रीति से युक्त थे; तुम तो उस प्रीति के लेश से रहित हो; अतः तुम्हारे लिये अपने निकट किस प्रकार निवास दूं ? इसके उत्तर में कहते हैं कि, हे गोवर्धन ! आप अनन्त करुणा से युक्त हो; अतः मुझ दीनदुःखी को भी अङ्गीकार करके, अपने निकट निवासस्थान दे दीजिये। तात्पर्य—आप अपनी सहज करुणा से अपने निकट बसा कर, मुझ को श्रीकृष्ण का प्रीतिपात्र भी बना दोगे।।९।।

मुझ जैसे अयोग्य व्यक्ति के लिये, अपने निकट निवास देने के विषय में मुख्यकारण सुनिये। यद्यपि मैं कपटी एवं शठ हूँ, तो भी परमदयालु शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्यदेव ने तुम्हारे निकट अर्पित कर दिया हूँ। श्रीशचीनन्दन आप के परमप्रिय हैं; अतः प्रिय के वाक्य, प्रियजन को अवश्य ही मान लेने चाहियें। यदि कहो कि, पुरुषोत्तमक्षेत्र से तुम को यहाँ भेजनेवाले श्रीशचीनन्दन का कुछ प्रयोजन अवश्य होगा, सो बात नहीं है; क्योंकि वे तो अकारण करुणा-वरुणालय हैं। इसलिए हे गोवर्धन ! मेरी उस योग्यता एवं अयोग्यता को न ग्रहण

श्रीमद्भागवताय नमः ।

श्रीमद्भागवतमहिमस्तोत्रम् ।

सर्वशास्त्राब्धिपीयूष !   सर्ववेदैकसत्फल ! ।
सर्वसिद्धान्तरत्नाढ्य !   सर्वलोकैकदृक्प्रद ! ॥
सर्वभागवतप्राण !   श्रीमद्भागवत !   प्रभो ! ।
कलिध्वान्तोदितादित्य !   श्रीकृष्णपरिवर्तित ! ॥
परमानन्दपाठाय   प्रेमवर्ष्यक्षराय   ते ।
सर्वदा सर्वसेव्याय श्रीकृष्णाय नमोऽस्तु मे ॥
मदेकबन्धो ! मत्सङ्गिन् ! मद्गुरो ! मन्महाधन! ।
मन्निस्तारक ! मद्भाग्य—मदानन्द ! नमोऽस्तु ते ॥
असाधुसाधुतादायिन्नतिनीचोच्चताकर !   ।
हा न मुञ्च कदाचिन्मां प्रेम्णा हृत्कण्ठयोः स्फुर ॥१॥

इति श्रीमत्सनातनगोस्वामि—विनिर्मित श्रीकृष्णलीलास्तवे
श्रीमद्भागवतमहिमस्तोत्रं संपूर्णम् ।

करते हुए, आप मुझे कृपया अपने निकट ही निवासस्थान प्रदान कर दीजिये ।।१०।।

यह "गोवर्धनवासप्रार्थनादशक" भक्तिरस को देनेवाला है; अतः जो व्यक्ति, पर्वतकुल के स्वामी श्रीमान् गोवर्धन के, इस दशक का प्रयत्नपूर्वक अध्ययन करता है; वह व्यक्ति, सुखप्रद इस गोवर्धन में शीघ्र ही साक्षात् निवास पा कर, शुभप्रद श्रीराधाकृष्ण की सेवारूप-रत्न को, शीघ्र ही प्राप्त कर लेता है । इस प्रार्थनादशक में "मालिनी"-नामक छन्द हैं ।।११।।

—*—

हे श्रीमद्भागवतरूप महाप्रभो ! आप अपने में ही सभी शास्त्रों का समन्वय होने के कारण, समस्त शास्त्ररूप-समुद्रों के अमृतरूप हो ! समस्त वेदों के मुख्य एवं सुन्दर फलस्वरूप हो ! सिद्धान्तरूपी समस्त सिद्धान्तों से युक्त हो ! सभीजनों के लिये केवल विशुद्ध भक्तिरूप नेत्रों को देनेवाले हो ! अतः भगवद्भक्तमात्र के प्राणस्वरूप हो ! कलिकाल-रूप अन्धकार को मिटाने के लिये सूर्यस्वरूप हो ! एवं श्रीकृष्ण के द्वारा परिवर्तित हो ! अर्थात् अपने धाम में प्रवेश करते समय श्रीउद्धवजी ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की थी कि, प्रभो ! आपके विरह में

श्रीमथुरायै नमः।

श्रीमथुरास्तवः।

मुक्तेर्गोविन्दभक्तेर्वितरणचतुरं सच्चिदानन्दरूपं
यस्यां विद्योति विद्यायुगलमुदयते तारकं पारकं च।
कृष्णस्योत्पत्तिलीलाखनिरखिलजगन्मौलिरत्नस्य सा ते
वैकुण्ठोरुप्रतिष्ठा प्रथयतु मथुरा मंगलानां कलापम् ॥१॥

भक्तों का क्या आधार होगा ? इस के उत्तर में श्रीकृष्ण ने कहा था कि, "मेरा जो तेज है, मैं उसको श्रीमद्भागवत में रखकर जाता हूँ", ऐसा कहते ही श्रीकृष्ण एक रूप से श्रीमद्भागवत में प्रविष्ट हो गये, अतः हे श्रीमद्भागवत ! आप उसी दिन से श्रीकृष्ण के प्रतिनिधिरूप हो ! प्रमाणं यथा—"कृष्णे स्वधामोपगते धर्मज्ञानादिभिः सह ।। कलौ नष्टदृशामेष पुराणार्कोऽधुनोदितः । भा० १।३।४३-४४"; "स्वकीयं यद्भवेत्तेजस्तच्च भागवतेऽदधात् । तिरोधाय प्रविष्टोऽयं श्रीमद्भागवतार्णवम् ।। प० पु०, भा० मा० अ० ३।६१" । अतएव आपका पठन-पाठन परमानन्द-स्वरूप है, आपके प्रत्येक अक्षर प्रेम की वर्षा करनेवाले हैं, अतएव आप सर्वदा सर्वजन द्वारा सेवन करने योग्य हो, अधिक क्या कहूँ ? आप तो साक्षात् श्रीकृष्णस्वरूप हो, एवंगुणविशिष्ट आपके लिये मेरा बारंवार प्रणाम है; क्योंकि आप ही तो मेरे मुख्यबन्धु हो ! मेरे सङ्गी हो ! एवं सर्वत्र मेरे अज्ञान के निवर्तक होने के कारण, एवं भक्ति का मार्ग दिखाने के नाते, मेरे परमगुरु हो! तथा पुरुषार्थ शिरोमणि होने के कारण, मेरे महान् धनस्वरूप हो ! मेरे निस्तारक हो ! मेरे भाग्यस्वरूप हो ! मेरे लिये आनन्दस्वरूप हो ! आपके लिये बारंवार नमस्कार है । और हे श्रीमद्भागवत ! आप असाधु-व्यक्तियों को भी साधुता देनेवाले हो ! एवं अतिनीच प्राणियों को भी उच्च पदपर पहुँचानेवाले हो ! हा प्रभो ! मेरी तो आपके श्रीचरणों में यही प्रार्थना है कि, आप मुझे किसी अवस्था में भी छोड़ना नहीं; अपितु, प्रीतिपूर्वक मेरे हृदय एवं कण्ठ में स्फूर्ति पाते रहिये ।।१।।

—*—

वह मथुरापुरी तुम्हारे मङ्गलों का समुदाय विस्तारित करती रहे कि, जिसकी प्रतिष्ठा वैकुण्ठ से भी अधिक है, एवं जिस मथुरापुरी में मुक्ति तथा श्रीकृष्णभक्ति को देने में चतुर, सच्चिदानन्द रूपवाली,

कोटीन्दुस्पष्टकान्ती रभसयुतभवक्लेशयोधैरयोध्या
मायावित्रासिवासा मुनिहृदयमुषो दिव्यलीलाः स्रवन्ती ।
साशीः काशीशमुख्यामरपतिभिरलं प्रार्थितद्वारकार्या
वैकुण्ठोद्गीतकीर्तिर्दिशतु मधुपुरी प्रेमभक्तिश्रियं वः ॥२॥

अविद्या को समूल जला देने के कारण परम प्रकाशवाली, एवं 'तारक' 'पारक'-नामवाली दो विद्याएँ, सर्वदा प्रगट होती रहती हैं, तथा समस्त जगत् के मुकुटमणि ब्रह्मा-शंकर आदिकों के भी मस्तकोंपर, रत्न के समान धारण किये जानेवाले, श्रीकृष्ण भगवान् की भी जो (मथुरा) उत्पत्ति एवं उनकी लीलाओं की भी उत्पत्तिस्थान-स्वरूप है।

इस श्लोक में 'तारक'-शब्द से श्रीरामनाम का ग्रहण है, एवं 'पारक'-शब्द से श्रीकृष्णनाम का ग्रहण है; क्योंकि ये दोनों नाम ही 'तारक-पारक'-नामवाली विद्या के रूप से कहे जाते हैं। पद्मपुराण के पातालखण्ड में पार्वती के प्रति शंकरजी ने कहा है कि, "तारकं पारकं तस्य प्रभावोऽयमनाहतः । तारकात् जायते मुक्तिः प्रेमभक्तिस्तु पारकात् ।।" 'तारक-पारक'-रूप विद्या का प्रभाव निरंकुश है; क्योंकि तारकविद्यारूप 'श्रीरामनाम' से केवल मुक्ति ही होती है; किन्तु प्रेमलक्षणाभक्ति तो पारकविद्यारूप 'श्रीकृष्णनाम' से होती है। इस विषय में श्रीचैतन्यचरितामृत के अन्त्य तृतीय परिच्छेद में मायादेवीने श्रीहरिदास ठाकुर के प्रति यह कहा है कि, "हे हरिदास ! मैं साक्षात् मायादेवी हूँ, तुम्हारी परीक्षा लेने के लिये यहाँ आई हूँ। मैंने ब्रह्मा आदिक सब जीव तो मोहित कर लिये; किन्तु केवल तुम को मोहित करने के लिये मैं समर्थ नहीं हूँ। तुम महाभागवत हो। तुम्हारे दर्शन से एवं तुम्हारे मुख से श्रीकृष्ण-नामसंकीर्तन के श्रवण से, मेरा चित्त विशुद्ध हो गया है। यद्यपि मैंने पहले शिवजी के द्वारा 'श्रीरामनाम' प्राप्त कर लिया है, तो भी अव तुम्हारे सत्सङ्ग से 'श्रीकृष्णनाम' लेना चाहती हूँ; क्योंकि रामनामवाला तारकब्रह्म तो केवल मुक्ति को ही देता है; किन्तु यह कृष्णनामवाला पारकब्रह्म तो प्रेमरूप-संपत्ति को भी देता है, अतः कृपा करके मेरे लिये भी 'कृष्णनाम' का दान कर दीजिये, जिससे कि मैं भी, श्रीकृष्णप्रेमरूप-नदी में सदैव गोता लगाती रहूँ।।१।।

तारक एवं पारक की आधार होने से, एवं श्रीकृष्ण की जन्मादि लीलाओं की उत्पत्तिभूमि होने के कारण, मथुरापुरी अपने से भिन्न

बीजं मुक्तितरोरनर्थपटलीनिस्तारकं तारकं
धाम प्रेमरसस्य वाञ्छितधुरासंपारकं पारकम्।
एतद्यत्र निवासिनामुदयते चिच्छक्तिवृत्तिद्वयं
मथ्नातु व्यसनानि माथुरपुरी सा वः श्रियं च क्रियात्॥३॥

सभी पुरियों सें श्रेष्ठ है, इस भाव को व्यक्त करते हुए श्रीरूप गोस्वामी, मथुरापुरी से अपनी अभीष्ट प्रेमलक्षणाभक्ति की ही माँग करते हैं—

वह मथुरापुरी, तुम सब के लिये प्रेमलक्षणाभक्तिरूप-संपत्ति का दान करे कि, जिसकी कान्ति करोड़ों चन्द्रमाओं से भी अधिक है, एवं जो वेग से युक्त सांसारिक क्लेशरूप योद्धाओं के द्वारा भी युद्ध करने योग्य नहीं है, अर्थात् जिस मथुरापुरी में निवास करनेवालों के, सभी सांसारिक क्लेश विनष्ट हो जाते हैं; एवं जिसका निवास, माया अर्थात् अविद्या को भी भयभीत कर देनेवाला है; एवं जो मथुरा, श्रीशुकदेव आदि मुनियों के मन को भी चुरानेवाली, श्रीकृष्ण की दिव्यलीलाओं को प्रकाशित करनेवाली है, एवं अपने उपासकों की कामनाओं को धारण करनेवाली है, तथा काशीपति शिव आदि देवश्रेष्ठ भी जिसके श्रेष्ठ द्वारपाल बनने की प्रार्थना करते रहते हैं, और भगवान् वराह ने भी जिसकी कीर्ति का गायन किया है।

श्लेषपक्ष में यह अर्थ है कि, आधे चन्द्रमा के समान स्पष्ट कान्तिवाली काञ्चीपुरी भी जिसमें विद्यमान है, अर्थात् आधे चन्द्रमा के समान कान्तिवाली काञ्चीपुरी से भी मथुरापुरी विशिष्ट है; एवं प्रेमभक्ति के हेतुभूत 'पारक' के सङ्ग के कारण, मथुरापुरी का वैशिष्ट्य अयोध्यापुरी से भी अधिक है; एवं जिसका निवास करना मायापुरी (हरिद्वार) को भी भयभीत कर देता है, अर्थात् मथुरापुरी का निवास मायापुरी (हरिद्वार) के निवास से भी अधिक है; एवं मथुरापुरी, अवन्तीपुरी (उज्जैन) से भी श्रेष्ठ है, क्योंकि अवन्तीपुरी तो श्रीकृष्ण के गुरुकुल-वास एवं लकड़ी लाना आदि व्यापार को ही प्रकाशित करती है; किन्तु मथुरापुरी तो मुनियों के मन को चुरानेवाली, श्रीकृष्ण की अनेक लीलाओं को प्रकाशित करती है; एवं कामना से युक्त काशीपति (शिव) आदि देवश्रेष्ठों के द्वारा भी जिसकी प्रार्थना की जाती है; अतः मथुरापुरी, काशीपुरी से भी विशिष्ट है: और द्वारकापुरी से भी आर्या अर्थात् श्रेष्ठ है; अतः मथुरापुरी, द्वारकापुरी से भी विशिष्ट है॥२॥

यदि कहो कि, जिस प्रकार यज्ञ भी निष्कामव्यक्ति के लिये स्वर्गादि फल नहीं देता, उसी प्रकार मथुरापुरी भी निष्कामव्यक्ति के लिये जब मुक्ति नहीं देगी, तब प्रकृति के बन्धन से मुक्ति किस प्रकार होगी ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

वह मथुरापुरी, तुम सब भक्तों के व्यसनों को अर्थात् लिङ्गशरीरपर्यन्त पापों को नष्ट करती रहे, एवं प्रेमरूप-संपत्ति का दान भी करती रहे कि, जिस मथुरापुरी में निवास करनेवाले प्राणियों के लिये, श्रीहरि की चित्शक्ति अर्थात् पराशक्ति की संवित्-आह्लाद-नामक दोनों वृत्तियाँ, स्वतः प्रगट होती रहती हैं; अतः अनजान में स्पर्श की हुई अग्नि की तरह, उन दोनों वृत्तियों के द्वारा लिङ्गशरीर का दाह हो जाने के कारण, मुक्ति तो मानो हाथ में ही धरी है; अतः निष्काम होनेपर भी, मुक्ति हो ही जायगी। उन दोनों वृत्तियों में से श्रीरामजी के षडाक्षरमंत्र-स्वरूपा 'तारक'-नामवाली जो वृत्ति है, वह मुक्तिरूप-वृक्ष की तो बीजस्वरूपा है, एवं अनर्थों की समुदायरूपा प्रकृति से जीव का निस्तार करनेवाली है; और श्रीकृष्ण के अष्टादशाक्षर-गोपालमंत्रस्वरूपा 'पारक'-नामवाली जो वृत्ति है, वह भगवत्संबंधी प्रेमरस की स्थानस्वरूपा अथवा प्रकाशस्वरूपा है, एवं भक्तों के अभिलाषारूप-भार को परिपूर्ण करनेवाली है। 'तारक-पारक'-नामक दोनों वृत्तियों का माहात्म्य पद्मपुराण के पातालखण्ड में इस प्रकार मिलता है—"उभौ मंत्रावुभे नाम्नी मदीयप्राणवल्लभे। नाना नामानि मंत्राश्च तन्मध्ये सारमुच्यते॥ अज्ञातमथवा ज्ञातं तारकं जपते यदि। यत्र तत्र भवेन्मृत्युः काश्यां तु फलमादिशेत्॥ वर्तते यस्य जिह्वाग्रे स पुमाँल्लोकपावनः। छिनत्ति सर्वपापानि काशीवासफलं लभेत्॥ इति तारकमंत्रोऽयं यस्तु काश्यां प्रवर्तते। स एव माथुरे देवि! वर्ततेऽत्र वरानने!॥ अथ तारकमुच्येत यथामंत्रं यथाबलम्। पारकं यत्र वर्तेत ऋद्धिसिद्धिसमागमः॥ पूज्यो भवति त्रैलोक्ये शतायुर्जायते पुमान्। अष्टसिद्धिसमायुक्तो वर्तते यत्र पारकम्॥ पारकं यस्य जिह्वाग्रे तस्य सन्तोषवर्तिता। परिपूर्णो भवेत् कामः सत्यसंकल्पता तथा॥ विविधप्रेमभक्तिस्तु श्रुतं दृष्टं तथैव च। अखण्डपरमानन्दस्तद्गतो ज्ञेयलक्षणः॥ अश्रुपातः क्वचिन्नृत्यं क्वचित् प्रेमातिविह्वलः॥३॥

अद्यावन्ति ! पतद्ग्रहं कुरु करे माये ! शनैर्वीजय
च्छत्रं काञ्चि ! गृहाण काशि ! पुरतः पादूयुगं धारय ।
नाऽयोध्ये ! भज संभ्रमं स्तुतिकथां नोद्गारय द्वारके !
देवीयं भवतीषु हन्त मथुरा दृष्टिप्रसादं दधे ॥४॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित–स्तवमालायां
श्रीमथुरास्तवः संपूर्णः ।

—❀—

तारक आदि मंत्रों की आधार होने के कारण, एवं श्रीकृष्ण की जन्मादि लीलाओं की खान होने के कारण, तथा वैकुण्ठ से भी उत्कृष्ट होने के कारण, मथुरापुरी सभी पुरियों से अधिक है, यह बात दूसरे श्लोक में कही थी । अब उसीको चतुर्थश्लोक में व्यक्त करते हैं—

हे अवन्तीपुरि ! तुम आज तुम्हारी पटरानी मथुरापुरी की सेवा के लिये पीकदान अपने हाथ में ले लो, हे मायापुरि ! तुम आज चँवर के द्वारा धीरे-धीरे बीजन करो, हे काञ्चीपुरि ! तुम आज सुवर्णदण्ड से सुशोभित छत्र को अपने हाथ में ले लो, हे काशीपुरि ! तुम आज दोनों पादुकाओं को मथुरापुरी के सामने ही अपने हाथ में लिये रहो, हे अयोध्यापुरि ! तुम आज संभ्रम (भय अथवा हड़बड़ाहट) को मत धारण करो, हे द्वारकापुरि ! तुम आज स्तुति की बातों को मत प्रगट करो; क्योंकि तुम सब दासियों के ऊपर या सखियों के ऊपर, तुम्हारी पटरानी यह मथुरादेवी, कृपादृष्टि धारण कर रही है; अर्थात् तुम्हारी सेवा से अत्यन्त प्रसन्न होकर, तुम्हारे ऊपर कृपादृष्टि वृष्टि कर रही है, यह बड़े हर्ष की बात है । अतएव आदिवराह पुराण में "काश्यादिपुर्यो यदि सन्ति लोके तासां तु मध्ये मथुरैव धन्या । या जन्ममौञ्जीव्रतमृत्युदाहैर्नृणां चतुर्धा विदधाति मोक्षम् ।।" पद्मपुराण में भी कहा है कि, "एवं सप्तपुरीणां तु सर्वोत्कृष्टं तु माथुरम् ।" अतः मथुरापुरी को, अन्य पुरियों के समान मानना दोषप्रद है—यथा "मथुरायां प्रकुर्वन्ति पुरीसाधारणीदृशम् । ये नरास्ते तु विज्ञेया पापराशिभिरन्विताः ।।" श्रुति भगवती तो, मथुरापुरी को भगवत्स्वरूप एवं प्रपञ्चातीत कहती है—"साक्षाद्ब्रह्म गोपालपुरी, चक्रेण रक्षिता हि वै मथुरा इति" । इस स्तव में पहले दो श्लोकों में "स्रग्धरा"-नामक छन्द हैं, एवं अन्त के दो श्लोकों में "शार्दूलविक्रीडित"-नामक छन्द हैं ।।४।।

—❀—

श्रीगान्धर्वा-गिरिधराभ्यां नमः।

श्रीमनःशिक्षा।

गुरौ गोष्ठे गोष्ठालयिषु सुजने भूसुरगणे
स्वमंत्रे श्रीनाम्नि व्रजनवयुवद्वन्द्वशरणे।
सदा दंभं हित्वा कुरु रतिमपूर्वामतितरा-
मये स्वान्तर्भ्रातश्चटुभिरभियाचे धृतपदः ॥१॥

श्रीरघुनाथदास गोस्वामी लोकमात्र के हितैषी होने के नाते, अपने मन की शिक्षा के बहाने, अन्य साधकजनों को उपदेश देते हुए कहते हैं कि—

हे मेरे प्यारे भैया मन! मैं तुम्हारे चरणों को पकड़ कर, नम्रतापूर्वक प्रियवाक्यों से तुम्हारी प्रार्थना करता हूँ कि, तुम दंभ को त्यागकर अपने श्रीगुरुदेव में, व्रजधाम में, व्रजवासीजनों में, वैष्णवों में, ब्राह्मणगण में, अपने दीक्षामंत्र में, श्रीभगवन्नाम में, व्रज के नवीनयुवक एवं अपने रक्षक श्रीराधा-कृष्ण की युगलजोड़ी में, लोकोत्तर प्रीति को सदैव विशेषतापूर्वक करते रहो।

तात्पर्यार्थ यह है कि, श्रीगुरुदेव में मनुष्यबुद्धि छोड़कर प्रीति करनी चाहिये। एवं "दूसरी जगह रहकर भी भजन हो सकता है, एवं भगवद्भजन में ही शास्त्रों का तात्पर्य भी है; फिर व्रजवास से ही क्या प्रयोजन है?" इस प्रकार की विरुद्ध-बुद्धि को छोड़कर व्रज में ही स्नेह करना चाहिये; क्योंकि 'श्रीगोपालचम्पूः' ग्रन्थ में व्रजवास के प्रति, द्वारकावासी श्रीकृष्ण की भी महती लालसा देखी जाती है, और वह लालसा भी पुनः व्रज में आ कर ही शान्त होती है। एवं "मैं सदाचारी हूँ, भगवद्भक्त हूँ, ये व्रजवासी तो इस प्रकार के नहीं दीखते हैं", इस प्रकार की दोषमयी-बुद्धि को त्यागकर व्रजवासियों में प्रेम करना चाहिये, उन में दोषदृष्टि नहीं करनी चाहिये, ये लौकिक होकर भी अलौकिक हैं, इसीलिए तो ब्रह्मा एवं उद्धवजी ने इनकी चरणरज की प्रार्थना की है। एवं वैष्णव में भी "मैं और यह वैष्णव भगवद्भक्त है; अतः दोनों समान है", इस प्रकार की तुल्यता को छोड़कर प्रीति करनी चाहिये, अपने से तो वैष्णवमात्र को बड़ा ही समझना चाहिये। एवं ब्राह्मणगण में " 'श्वपाकमिव नेक्षेत लोके विप्रमवैष्णवम्' अर्थात् अवैष्णव-ब्राह्मण को संसार में चाण्डाल की तरह नहीं देखना चाहिये"

इस प्रकार की हेयताबुद्धि को छोड़कर ही श्रद्धा रखनी चाहिये । यदि कहो कि, अवैष्णव-ब्राह्मण का जब दर्शन भी निषिद्ध है, तब उस में श्रद्धा करना कैसे बन सकता है ? इसके उत्तर में द्वारकावासियों को समझाते हुए श्रीकृष्ण कहते हैं कि, "विप्रं कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामकाः । घ्नन्तं बहु शपन्तं वा नमस्कुरुत नित्यशः ।।" भा० १०।६४।४१ अर्थात् हे मेरे प्रियजनो ! अपराधी-ब्राह्मण से भी द्वेष मत करो, चाहे वह ताड़ना करता रहे, या शाप देता रहे, तो भी उसको नित्य नमस्कार करते रहो । तथा श्रीगुरुदेव के द्वारा दिये हुए अपने दीक्षामंत्र में "तथा विधि निषेधौ तु मुक्तं नैवोपसर्पतः", अर्थात् मुक्तव्यक्ति को विधि-निषेध नहीं लगते हैं, इस उक्ति के अनुसार विधिमार्ग के अन्तर्गत दीक्षामंत्र के जप से कोई प्रयोजन नहीं है", इस प्रकार की बुरी-धारणा त्याग देनी चाहिये; क्योंकि **श्रीगुरुदेव के द्वारा प्राप्त हुआ मंत्र, श्रीकृष्ण को आकर्षित करनेवाला एवं श्रीकृष्ण में प्रेम देनेवाला है; अतः सर्वथा जपने योग्य है,** इसलिये आधुनिक मत परास्त हो गया । तथा श्रीनामसंकीर्तन के विषय में भी "साक्षात् प्रेमसाधक ध्यान को छोड़कर, श्रीनाम-संकीर्तनमात्र से क्या होगा ?" इस प्रकार की उच्छृङ्खल धारणा को त्यागकर, **श्रीनामसंकीर्तन को ही, प्रेमप्राप्ति का द्वार समझ कर, सदैव श्रीनामसंकीर्तन में तत्पर रहना चाहिये ।** श्रीराधाकृष्ण की शरणागति के विषय में भी "यथा तरोर्मूल-निषेचनेन" भा० ४।३१।१४ इत्यादि प्रमाण से केवल श्रीकृष्ण के भजन से ही सर्वार्थ सिद्धि हो जायगी, फिर श्रीराधिका के भजन से क्या प्रयोजन?" इस प्रकार का कु-विचार त्याग देना चाहिये; क्योंकि "विना राधा प्रसादेन हरिभक्तिः सुदुर्लभा", अर्थात् श्रीराधिका की प्रसन्नता के बिना श्रीकृष्णभक्ति अतिशय दुर्लभ है, इत्यादि प्रमाण से श्रीराधिका के भजन से ही श्रीकृष्ण की कृपा सुलभ हो सकती है, अन्यथा नहीं । और दंभ छोड़ने का तात्पर्य यह है कि, दंभी-व्यक्ति से साधारणजन भी जब दूर भागते हैं, तब सर्वज्ञ-श्रीहरि, दंभी के निकट कैसे आ सकते हैं ? दूसरे को ठगना, या लाभ पूजा आदि के उद्देश्य से अपनी महत्ता की ख्याति करना, अथवा दिखानेमात्र के लिये धर्माचरण करना ही 'दंभ' कहलाता है । यह दंभ 'मृषा' (मिथ्या)-नाम की पत्नी से 'अधर्म' के द्वारा उत्पन्न हुआ है । महापुरुषों की सेवा से ही दंभपर विजय होती है "दंभं महदुपासया" भा० ७।१५।२३ । और "गुरौ गोष्ठे" इस श्लोक में कहे गये श्रीगुरुसेवा आदि विषयों में अनेक प्रकार के कुतर्क प्रगट

न धर्मं नाधर्मं श्रुतिगणनिरुक्तं किल कुरु
व्रजे राधाकृष्ण-प्रचुरपरिचर्यामिह तनु ।
शचीसूनुं नन्दीश्वरपतिसुतत्वे गुरुवरं
मुकुन्दप्रेष्ठत्वे स्मर परमजस्रं ननु मनः ॥२॥

करना भी दंभ कहलाता है । अतः इस प्रकार के दंभ को छोड़कर ही, पूर्वोक्त वस्तुओं में प्रीति करनी चाहिये ॥१॥

यदि कहो कि, मैं तो श्रुतियों में कहे हुए नित्य-नैमित्तिक कर्मों के करने में ही सदा व्याकुल रहता हूँ; अतः मुझ से गुरु आदि में प्रीति किस प्रकार हो सकती है ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

हे मेरे प्यारे मन ! तुम श्रुतिसमूह में कहे हुए धर्म एवं अधर्म इन दोनों का कुछ भी पालन मत करो, किन्तु "स्मर्तव्यः सततं विष्णुर्विस्मर्तव्यो न जातुचित् । सर्वे विधिनिषेधाः स्युरेतयोरेव किङ्कराः ॥" पद्मपुराणे; ह० भ० वि० १।२।८, अर्थात् श्रीकृष्ण को निरन्तर स्मरण करते रहना चाहिये, एवं उनको कभी भी नहीं भूलना चाहिये; क्योंकि वेदादि शास्त्रोक्त समस्त विधि-निषेध इन्हीं दो विधि-निषेधों के सेवक हैं, अर्थात् इन्हीं के अन्तर्गत हैं । इस प्रमाण के अनुसार इसी जन्म में "कृष्णं स्मरन्···कुर्याद् वासं व्रजे सदा" भ० र० सि० १।२।२९४ इस उक्ति के अनुसार सदा व्रज में ही रहकर, श्रीराधाकृष्ण की प्रचुर परिचर्या (सेवापूजा) आदि का विस्तार करते रहो, एवं शचीनन्दन श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु को श्रीनन्दनन्दन के रूप से ही स्मरण करते रहो, तथा श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्ण के अतिशय-प्रिय रूप से ही निरन्तर स्मरण करते रहो ।

यदि कहो कि, "आचार्यं मां विजानीयान्नावमन्येत कर्हिचित् । न मर्त्यबुद्ध्याऽसूयेत सर्वदेवमयो गुरुः ॥" भा० ११।१७।२७ इस उक्ति के अनुसार श्रीगुरुदेव को श्रीकृष्ण के अभेद रूप से ही स्मरण करना उचित है, फिर श्रीकृष्ण के प्रिय रूप से मनन करना क्यों वतला रहे हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि, "प्रथमं तु गुरुं पूज्य ततश्चैव ममार्चनम् । कुर्वन् सिद्धिमवाप्नोति ह्यन्यथा निष्फलं भवेत् ॥" ह० भ० वि० ४।३४४ अर्थात् श्रीकृष्ण कहते हैं कि, पहले श्रीगुरुदेव की पूजा करके, पश्चात् मेरा पूजन करता हुआ भक्तजन, सिद्धि को प्राप्त करता है, अन्यथा मेरा पूजन निष्फल हो जाता है । इस उक्ति से श्रीकृष्ण एवं गुरुदेव में भेद ही प्रतिपादन किया है । और "आचार्यं

यदीच्छेरावासं व्रजभुवि सरागं प्रतिजनु-
युं वद्वन्द्वं तच्चेत् परिचरितुमारादभिलषेः ।
स्वरूपं श्रीरूपं सगणमिह तस्याग्रजमपि
स्फुटं प्रेम्णा नित्यं स्मर नम तदा त्वं शृणु मनः ॥३॥

असद्वार्तावेश्या विसृज मतिसर्वस्वहरणीः
कथा मुक्ति-व्याघ्रया न शृणु किल सर्वात्मगिलनीः ।
अपि त्यक्त्वा लक्ष्मीपतिरतिमितो व्योमनयनीं
व्रजे राधाकृष्णौ स्वरतिमणिदौ त्वं भज मनः ॥४॥

मां" इस श्लोक में जो अभेद प्रतिपादित है, वह तो श्रीकृष्ण जिस प्रकार परमपूजनीय हैं, उसी प्रकार श्रीगुरुदेव भी परमपूजनीय हैं; इसी विषय का प्रतिपादक है। अन्यथा एक के स्मरण एवं भजन से दोनों का स्मरण-भजन मान लेने के कारण, दोनों का ही स्मरण-भजन नहीं बन पायेगा ।।२।।

हे मेरे प्रिय मन ! मेरी बात सुनो। देखो, भैया ! यदि तुम प्रत्येक जन्म में अनुरागपूर्वक व्रजभूमि में ही निवास करना चाहते हो, और यदि श्रीराधाकृष्णरूप नवल-युगलकिशोर की, निकट से ही सेवा करना चाहते हो, तो श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी को, श्रीरूप गोस्वामी को एवं उनके बड़े भाई श्रीसनातन गोस्वामी को परिकर सहित, नित्य ही स्पष्टरूप से स्मरण करते रहो एवं नमस्कार करते रहो ।।३।।

साररूप से संगृहीत कुछ अनिर्वचनीय सिद्धान्त को समझाते हुए अपने मन से कहते हैं कि—

हे मेरे मन ! असज्जनों के साथ रहन-सहन या वार्तालापरूप-वेश्याओं को त्याग दो; क्योंकि साधारण वेश्याएँ तो केवल धन-बल का ही अपहरण करती हैं; किन्तु असद्वार्तारूप वेश्याएँ तो बुद्धिरूप सर्वस्व धन को हरनेवाली हैं। एवं मुक्तिरूपी व्याघ्री की कथाओं को बिलकुल मत सुनो; क्योंकि अनन्य-भक्त के लिये मुक्ति-संबंधिनी कथाएँ सर्वतोभाव से निगल लेनेवाली हैं; और सायुज्य-मुक्ति में तो भगवत्कैङ्कर्यरूप संबंध का गन्ध भी नहीं रह पाता। ऐसे भक्तों को लक्ष्य करके श्रीकपिलदेवजी ने भी कहा है कि, "सालोक्यसार्ष्टिसामीप्य-सारूप्यैकत्वमप्युत । दीयमानं न गृह्णन्ति विना मत्सेवनं जनाः ।।" भा० ३।२९।१३ । और माधुर्य उपासनामयी इस व्रजभूमि से

असच्चेष्टा–कष्टप्रदविकट–पाशालिभिरिह
प्रकामं कामादि-प्रकट-पथपातिव्यतिकरैः।
गले बद्ध्वा हन्येऽहमिति बकभिद्वर्त्मपगणे
कुरु त्वं फूत्कारानवति स यथा त्वां मन इतः ॥५॥

अरे चेतः प्रोद्यत्कपटकुटिनाटीभर–खर–
क्षरन्मूत्रे स्नात्वा दहसि कथमात्मानमपि माम्।
सदा त्वं गान्धर्वा–गिरिधरपदप्रेमविलसत्–
सुधांभोधौ स्नात्वा स्वमपि नितरां मां च सुखय ॥६॥

ऐश्वर्यप्रधान परव्योम (वैकुण्ठ) में ले जानेवाली श्रीनारायण की प्रीति को छोड़कर, अपनी प्रीतिरूप-मणि को देनेवाले श्रीराधाकृष्ण का इस व्रज में ही भजन कर; क्योंकि यह व्रज सर्वोपरि-सर्वोत्कृष्ट-सर्वातीत-अनिर्वचनीय महावैकुण्ठ है ।।४।।

और हे मन ! संसाररूप-मार्ग में सहसा आक्रमण करनेवाले काम-क्रोधादिरूप लुटेरे अपनी बुरी चेष्टाओं से, कष्टप्रद भयङ्कर रज्जुश्रेणियों के द्वारा, इच्छापूर्वक गले में बाँधकर, मुझ को मार डालेंगे; इस कारण तुम, बकारि-श्रीकृष्ण के भक्तिमार्ग की रक्षा करनेवाले भक्तगणों के निकट, कातरतापूर्वक लंबे-लंबे श्वासों को छोड़, जिससे कि वे भक्तगण उन कामादिरूप-लुटेरों से तुम्हारी रक्षा कर देंगे ।।५।।

यदि कहो कि, विषयों की चेष्टा से तत्काल दिखाई देनेवाला सुख तो भी मिलता है, उसको छोड़कर अदृष्ट सुख मिलेगा या नहीं ? इसमें सन्देह है; अतः दृष्ट सुख में अप्रीति क्यों करे ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

अरे दुष्ट मन ! देख, कपटभाव से जनित कुटिलता की अधिकतारूप—गधे के बहते हुए मूत में स्वयं स्नान करके अपने को, एवं मुझ को भी क्यों जला रहा है ? यदि मुझ से पूछो कि, मैं अब क्या करूँ ? तो मैं बताता हूँ कि, अब तो तुम श्रीराधाकृष्ण के चरणकमल-विषयक प्रेम से शोभायमान अमृतरूप-समुद्र में स्वयं गोता लगा कर अपने को, एवं मुझ को भी विशेष सुखी कर दो। तात्पर्य—तात्कालिक दृष्ट वैषयिक-सुख तो यहाँपर गधे के मूत में स्नान करने के समान महान् दुःखदायी है, एवं भगवत्संबंधी अदृष्ट-सुख ही यहाँपर अमृतसमुद्र में स्नान करने के समान लोकोत्तर सुखदायी है; अतः

प्रतिष्ठाशा धृष्टा श्वपचरमणी मे हृदि नटेत्
कथं साधु-प्रेमा स्पृशति शुचिरेतन्ननु मनः ।
सदा त्वं सेवस्व प्रभुदयित-सामन्तमतुलं
यथा तां निष्काश्य त्वरितमिह तं वेशयति सः ॥७॥

यथा दुष्टत्वं मे दवयति शठस्यापि कृपया
यथा मह्यं प्रेमामृतमपि ददात्युज्ज्वलमसौ ।
यथा श्रीगान्धर्वा-भजन-विधये प्रेरयति मां
तथा गोष्ठे काक्वा गिरिधरमिह त्वं भज मनः ॥८॥

मदीशानाथत्वे व्रजविपिनचन्द्रं व्रजवने-
श्वरीं तन्नाथत्वे तदतुल-सखीत्वे तु ललिताम् ।
विशाखां शिक्षाली-वितरण-गुरुत्वे प्रियसरो-
गिरीन्द्रौ तत्प्रेक्षा-ललित-रतिदत्वे स्मर मनः ॥९॥

तात्कालिक सुख में न फँसकर, पीछें होनेवाले भगवत्संबंधी अविनश्वर अनन्तसुख की अभिलाषा करते रहो ।।६।।

यदि कहो कि, तुम चुपचाप रहकर भजन करते रहो, मुझ मन) को शिक्षा क्यों दे रहे हो ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—

हे मेरे मन ! देख, भैया ! मेरे हृदय में प्रतिष्ठा की आशारूप-ढीठ चाण्डालिनी जब नृत्य कर रही है, तब साधुजनोचित परमपवित्र यह प्रेम, उस हृदय को कैसे छू सकता है ? अतः तुम्हारे लिये शिक्षा देता हूँ कि, अब तो तुम प्रभु के प्यारे अतुलनीय भक्तरूप-राजा की सदैव सेवा करते रहो,जिससे कि वह भक्तरूप-राजा अपने सदुपदेशरूपी-दण्डों के द्वारा उस प्रतिष्ठाशारूप-ढीठ चाण्डलिनी को शीघ्र ही निकाल कर, मेरे हृदय में उस साधुजनोचित प्रेमको प्रविष्ट करा देगा ।।७।

हे मन ! मैं तुम से एक बात और समझाता हूँ कि, तुम इस व्रज में कातरवाणीपूर्वक गिरिधारी श्रीकृष्ण का उस प्रकार भजन करो कि, जिस प्रकार वे श्रीकृष्ण, मुझपर प्रसन्न होकर, मुझ शठ की दुष्टता को अपनी अहैतुकी कृपा के द्वारा दूर कर दें; एवं अपने निर्मल प्रेमामृत को भी मुझे दे दें, तथा श्रीमती राधिका के भजन की विधि के लिये मुझे प्रेरित कर दें ।।८।।

अकस्मात् प्रगट होते हुए परिकर सहित, अपने इष्ट का अनुभव करते हुए, परमानन्दपूर्वक अपने मन को शिक्षा देते हैं कि—

रतिं गौरी-लीले अपि तपति सौन्दर्यकिरणैः
शची-लक्ष्मी-सत्याः परिभवति सौभाग्यवलनैः ।
वशीकारैश्चन्द्रावलिमुख-नवीनव्रजसतीः
क्षिपत्याराद्या तां हरिदयितराधां भज मनः ॥१०॥

समं श्रीरूपेण स्मरविवश-राधागिरिभृतो-
र्व्रजे साक्षात्-सेवालभनःविधये तद्गणयुजोः ।
तदिज्याख्या-ध्यान-श्रवण-नति-पंचामृतमिदं
धयन्नीत्या गोवर्धनमनुदिनं त्वं भज मनः ॥११॥

हे मेरे प्रिय मन ! वृन्दावनचन्द्र श्रीकृष्ण को तुम, मेरी स्वामिनी श्रीराधिका के स्वामीरूप से स्मरण करो, एवं वृन्दावनेश्वरी श्रीमती राधिका को अपनी स्वामिनी के रूप से स्मरण करो, एवं ललिता को श्रीराधिका की अतुलनीय सखी के रूप से स्मरण करो, एवं विशाखा को शिक्षाश्रेणी के वितरण करने में गुरुरूप से स्मरण करो, तथा राधाकुण्ड एवं गिरिराज-गोवर्धन इन दोनों को श्रीराधाकृष्ण के दर्शन एवं उनकी मनोहर प्रीति देनेवाले के रूप में स्मरण करो ।।९।।

अन्य भजनीय के स्मरण की आसक्ति को छुड़ाकर, गुप्त-उपदेश देते हुए कहते हैं कि—

हे मेरे मन ! तुम सब में से आसक्ति को त्यागकर, श्रीकृष्ण की अतिशय-प्रिया उन्हीं श्रीमती राधिका का भजन करते रहो कि, जो (राधिका) अपने सौन्दर्यरूप-सूर्य की किरणों के द्वारा कामपत्नी रति को, शिवपत्नी गौरी को, एवं वैकुण्ठनाथ की शक्तिविशेष लीलादेवी को भी सन्तप्त करती रहती हैं, एवं जो अपने सौभाग्य की समृद्धि के द्वारा इन्द्रपत्नी शची को, नारायणपत्नी लक्ष्मी को, एवं द्वारकानाथ की पत्नी सत्यभामा को तुच्छ बनाती रहती हैं, तथा जो श्रीकृष्ण को भी वश में करनेवाले अपने गुणों के द्वारा, चन्द्रावली आदि व्रज की नवीन सतियों को भी दूर हटाती रहती हैं ।।१०।।

अपने द्वारा की हुई, अपने इष्टदेव की सेवा की दृढता के लिये, अपने गुरुदेव श्रीरूप गोस्वामी की सङ्गति का उपदेश करते हुए कहते हैं कि—

हे मेरे प्रिय मन ! देखो, ललिता-विशाखा आदि सखीगण, एवं सुबल-श्रीदामा आदि सखागण से युक्त, एवं परस्पर के अलौकिक प्रेम के

मनःशिक्षादैकादशक-वरमेतन्मधुरया
गिरा गायत्युच्चैः समधिगत-सर्वार्थततति यः ।
सयूथः श्रीरूपानुग इह भवन् गोकुलवने
जनो राधाकृष्णातुलभजनरत्नं स लभते ॥१२॥

इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित-स्तवावल्यां
श्रीमनःशिक्षाख्यमेकादशकं संपूर्णम् ।

—*—

श्रीयमुनायै नमः ।

श्रीयमुनाष्टकम् ।

भ्रातुरन्तकस्य पत्तनेऽभिपत्तिहारिणी
प्रेक्षयातिपापिनोऽपि पापसिन्धुतारिणी ।
नीरमाधुरीभिरप्यशेषचित्तबन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥१॥

वशीभूत हुए, श्रीराधाकृष्ण की व्रज में ही साक्षात् सेवाप्राप्ति की विधि के लिये—उनकी पूजा, उनका नामसंकीर्तन, उनका ध्यान, उनके गुणों के श्रवण, एवं उनको नमस्कार करनारूप—इस पञ्चामृत को श्रीरूप गोस्वामी के साथ पान करते हुए भक्ति की नीतिपूर्वक प्रतिदिन श्रीगोवर्धन का सेवन करते रहो ।।११।।

इस प्रकार अपने मन को शिक्षा दे कर, अन्य भक्तों को भी इस 'मनःशिक्षा' स्तोत्र के पाठ में प्रवृत्त करने के लिये प्रोत्साहित करते हैं कि—

जो व्यक्ति, मन को शिक्षा देनेवाले परमश्रेष्ठ इन ग्यारह श्लोकों को, समस्त पुरुषार्थों के समूह को जानकर, अपने परिकर के सहित, मधुरवाणी से ताल-लयपूर्वक उच्चस्वर से गायन करता है; वह व्यक्ति, श्रीरूप गोस्वामी का अनुगामी होकर, श्रीवृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण के अतुलनीय भजनरूप-रत्न को प्राप्त कर लेता है। इस स्तोत्र में "शिखरिणी"—नामक छन्द हैं ।।१२।।

—*—

हारिवारिधारयाभिमण्डितोरुखाण्डवा
पुण्डरीकमण्डलोद्यदण्डजालिताण्डवा ।
स्नानकामपामरोग्रपापसंपदन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥२॥

शीकराभिमृष्टजन्तु–दुर्विपाकमर्दिनी
नन्दनन्दनान्तरंगभक्तिपूरवर्धिनी ।
तीरसंगमाभिलाषिमंगलानुबन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥३॥

द्वीपचक्रवालजुष्टसप्तसिन्धुभेदिनी
श्रीमुकुन्दनिर्मितोरुदिव्यकेलिवेदिनी ।
कान्तिकन्दलीभिरिन्द्रनीलवृन्दनिन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥४॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जो अपने भाई यमराज के नगर में, अर्थात् यमालय में जाने से रोकनेवाली है, एवं अपने दर्शनमात्र से पापीजनों को भी पापसिन्धु से पार लगानेवाली है, अपने जल की माधुरीश्रेणी के द्वारा सभीजनों के चित्त को अपने में निवद्ध करनेवाली है ॥१॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जिसने अपनी मनोहर जलधारा के द्वारा, इन्द्र के विशाल खाण्डव-नामक वन को विभूषित कर दिया है, एवं अपने ऊपर खिले हुए श्वेतकमलवृन्दों में, खञ्जन आदि पक्षीवृन्दों के नृत्य जिसमें होते रहते हैं, तथा अपने में स्नान करने की इच्छावाले पापियों के भयंकर पापरूपी-संपत्ति को जो अन्धी बना देती है, अर्थात् जो अपने में स्नान करने की इच्छामात्र से महापातकों को विनष्ट करनेवाली है ॥२॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जो अपने जलबिन्दु से स्पर्श करनेवाले प्राणीमात्र के, दुष्कर्मजनित फल को विनष्ट करनेवाली है, एवं नन्दनन्दन श्रीकृष्ण की अन्तरङ्गभक्ति, अर्थात् रागानुगाभक्ति की धारा को बढ़ानेवाली है, तथा अपने तटपर निवास करने की अभिलाषावाले जनमात्र का कल्याण करनेवाली है ॥३॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जो सप्तद्वीपमण्डल से सेवित सातों समुद्रों का भेदन करनेवाली है, अर्थात्

माथुरेण मण्डलेन चारुणाभिमण्डिता
प्रेमनद्धवैष्णवाध्ववर्धनाय पण्डिता ।
ऊर्मिदोर्विलासपद्मनाभपादवन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥५॥

रम्यतीररंभमाणगोकदम्बभूषिता
दिव्यगन्धभाक्कदम्बपुष्पराजिरूषिता ।
नन्दसूनुभक्तसंघसंगमाभिनन्दिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥६॥

सातों समुद्रों को फोड कर, दूसरी नदियों की तरह उनमें विलीन न होकर, पार जानेवाली है; अतः अचिन्त्य प्रभाववाली है, एवं जो श्रीकृष्ण के द्वारा निर्मित विशाल दिव्यक्रीडाओं को जाननेवाली है, अर्थात् अपना आश्रय करनेवाले जनों के हृदय में उन दिव्यलीलाओं को प्रकटित करनेवाली है, तथा अपनी शोभा की ध्वजाओं के द्वारा इन्द्रनीलमणियों के समूह का तिरस्कार करनेवाली है, अर्थात् जिसका जल, इन्द्रनीलमणियों से भी सुन्दर श्यामवर्णवाला है। नैयायिक लोग यमुना जल में शुक्ल रूप की जो कल्पना करते हैं, वह इस उक्ति से निरस्त हो जाती है; क्योंकि अचिन्त्यवस्तु में तर्क करना उचित नहीं है। आकाश में फेंके हुए यमुना जल में शुक्लता की उपलब्धि तो सूर्य एवं नक्षत्रों की प्रभा से कही जा सकती है ॥४॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जो परम मनोहर मथुरामण्डल के द्वारा मण्डित है, एवं प्रेम से बँधे हुए वैष्णवमार्ग को, अर्थात् रागानुगी भक्तिसंप्रदाय को बढ़ाने के लिये पंडित (निपुण) है, अर्थात् अपने में स्नान करनेवाले वैष्णव के हृदय में, रागानुगाभक्ति को स्वयं प्रगट करनेवाली है, तथा अपनी तरङ्गरूप भुजाओं के विलास के द्वारा, श्रीकृष्ण के चरणकमलों की वन्दना करनेवाली है ॥५॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र वनाती रहे कि, जो परमरमणीय अपने दोनों तीरोंपर रँभाते हुए गोगण से विभूषित है, एवं दिव्यगन्ध से युक्त कदंबपुष्पों की पंक्ति से युक्त है, तथा नन्दलाल के भक्तवृन्द के सम्मेलन से हर्षित होती रहता है ॥६॥

फुल्लपक्षमल्लिकाक्षहंसलक्षकूजिता
भक्तिविद्धदेवसिद्धकिन्नरालिपूजिता ।
तीरगन्धवाहगन्धजन्मबन्धरन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥७॥

चिद्विलासवारिपूरभूर्भुवःस्वरापिनी
कीर्तितापि दुर्मदोरुपापमर्मतापिनी ।
बल्लवेन्द्रनन्दनाङ्गरागभङ्गगन्धिनी
मां पुनातु सर्वदारविन्दबन्धुनन्दिनी ॥८॥

तुष्टबुद्धिरष्टकेन निर्मलोर्मिचेष्टितां
त्वामनेन भानुपुत्रि ! सर्वदेववेष्टिताम् ।
यः स्तवीति वर्धयस्व सर्वपापमोचने
भक्तिपूरमस्य देवि ! पुण्डरीकलोचने ॥९॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित–स्तवमालायां
श्रीयमुनाष्टकं संपूर्णम् ।

—❋—

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जो फूले हुए पंखोंवाले लाखों राजहंसों के द्वारा शब्दायमान है, अर्थात् जिसके ऊपर लाखों राजहंस गूंजते रहते हैं; एवं जो हरिसेवा में आसक्त मनवाले देव-सिद्ध-नर-किन्नर आदि की पंक्ति से पूजित है, तथा अपने तीरपर बहनेवाले वायु के लेशमात्र संबंध से, प्राणियों के पुनर्जन्म के बन्धन को काटनेवाली है ॥७॥

सूर्यपुत्री वह यमुना, मुझे सदैव पवित्र बनाती रहे कि, जो चिद्विलास अर्थात् ब्रह्मविद्या में अपने जलप्रवाह के द्वारा भूः, भुवः, स्वः-नामक तीनों लोकों को व्याप्त करनेवाली है, अर्थात् सातों समुद्रों की तरह, भू आदि तीनों लोकों को भेद कर पार जानेवाली है, एवं अपना नामसंकीर्तन करनेमात्र से भी दुर्दमनीय विशाल पापों के मर्म को जलानेवाली है, तथा व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण के अङ्गराग के गिरने से परम सुगन्धित है ॥८॥

हे सूर्यपुत्रि ! देवि ! यमुने ! सन्तुष्ट बुद्धिवाला जो व्यक्ति, इस अष्टक के द्वारा निर्मल तरङ्गरूप चेष्टावाली एवं सभी देवताओं से

श्रीमते राधाकुण्डाय नमः ।

श्रीराधाकुण्डाष्टकम् ।

वृषभदनुजनाशान्नर्मधर्मोक्तिरङ्गै-
निखिल-निजसखीभिर्यत् स्वहस्तेन पूर्णम् ।
प्रकटितमपि वृन्दारण्यराज्ञ्या प्रमोदै-
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥१॥

परिवेष्टित स्वरूपवाली तुम्हारी स्तुति करता है, उस पाठक व्यक्ति के भक्तिप्रवाह को तुम, अविद्यापर्यन्त समस्त पापों से विमुक्त करनेवाले कमलनयन श्रीकृष्ण में बढाती रहो । आपके श्रीचरणों में मेरी यही प्रार्थना है । इस अष्टक में "तूणक"-नामक छन्द है ।।८।।

—*—

श्रीकृष्ण को श्रीमती राधिका जिस प्रकार प्रिय हैं, उसी प्रकार उनका कुण्ड भी प्रिय है; अतः उसीका आश्रय लेने की आकांक्षा से प्रार्थना करते हुए, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं कि—

अतिशय सुगन्धीवाला मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जो श्रीवृन्दावन की महारानी श्रीराधिका ने हर्षपूर्वक प्रगट किया है, तथा अरिष्टासुर के नाश के बाद, राधिका की समस्त सखियोंने, श्रीकृष्ण के साथ हास-परिहासमयी धर्मोक्तियों के राग-रङ्ग के सहित, अपने हाथों से परिपूर्ण किया है ।

श्रीकृष्ण का सखियाँ के साथ परिहास (श्रीगोपालचम्पूः, पूर्व, पूरग ३१, पृष्ठ ७३० से) इस प्रकार है—श्रीकृष्ण राधिका से बोले—हे राधिके ! देखो, मैंने तो श्यामकुण्ड बना कर कृतार्थता प्राप्त कर ली है, किन्तु तुमने तो ऐसा पुण्यमय कोई भी कार्य नहीं किया है, अतः गुणियों के बीच में तुम्हारी गणना किस प्रकार होगी ? इसके उत्तर में श्रीराधिका की सखी हसती हुई बोली—बैल को मारकर तुमने ही पाप कमाया है, अतः तुम्ही प्रायश्चित्त करने के अधिकारी हो, हम सब नहीं । श्रीकृष्ण हँसकर बोले—यह वृष अर्थात् धर्म या बैल नहीं था; किन्तु बैल का सा बहाना बनानेवाला यह असुर तो धर्म का एवं गो-समूह का विरोधी था, अतः उसकी पक्षपातिनी होने के कारण, उसका पाप तुम्हारे ऊपर ही लगता है, इसलिए प्रायश्चित्त करना तुम्हारा ही कर्तव्य है । उसमें भी "प्रजा का किया हुआ पाप, राजा

व्रजभुवि मुरशत्रोः प्रेयसीनां निकामै-
रसुलभमपि तूर्णं प्रेमकल्पद्रुमं तम् ।
जनयति हृदि भूमौ स्नातुरुच्चैः प्रियं य-
त्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥२॥

अघरिपुरपि यत्नादत्र देव्याः प्रसाद-
प्रसरकृतकटाक्षप्राप्तिकामः प्रकामम् ।
अनुसरति यदुच्चैःस्नानसेवानुबन्धै-
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥३॥

व्रजभुवनसुधांशोः प्रेमभूमिर्निकामं
व्रजमधुरकिशोरीमौलिरत्नप्रियेव ।
परिचितमपि नाम्ना यच्च तेनैव तस्या-
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥४॥

को ही लगता हैं" इस नीति के अनुसार, वह पाप तुम्हारी महारानी राधिका को ही लगता है, अतः उनको ही कुण्डनिर्माणरूप प्रायश्चित्त करना चाहिये । इसके उत्तर में सखियाँ बोलीं—अच्छा, जो हो; तो भी यह दोष तो आपके संबंध से ही प्राप्त हुआ है, अतः उसको दूर करने के लिये, हम को भी आपके किये हुए कार्य का ही अनुकरण करना चाहिये । यह कहकर राधिका के साथ मिलकर सभी सखियों ने, राधाकुण्ड का निर्माण परिपूर्ण किया ॥१॥

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जो अपने में स्नान करनेवाले जन के हृदयरूप-भूमि में उस प्रेमरूप-कल्पवृक्ष को शीघ्र ही उत्पन्न कर देता है कि, जो अतिशय प्रिय प्रेमरूप-कल्पवृक्ष, श्रीकृष्ण की द्वारकावासिनी पटरानियों के विशिष्ट मनोरथों के द्वारा भी, व्रजभूमि में प्राप्त करना दुर्लभ है, अर्थात् सत्यभामा के संबंध से द्वारकावासिनी पटरानियों ने साधारण कल्पवृक्ष तो प्राप्त कर लिया था; किन्तु व्रजवासियों का सा लोकोत्तर प्रेमरूप-कल्पवृक्ष तो नहीं प्राप्त कर पाईं ॥२॥

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, श्रीमती राधिका की प्रसन्नता से विस्तारित, उन्हीं के कृपाकटाक्ष को पाने की कामनावाले श्रीकृष्ण भी, अतिशय स्नानरूप-नित्यसेवा के द्वारा, जिस राधाकुण्ड का प्रयत्नपूर्वक यथेष्ट अनुसरण करते रहते हैं ॥३॥

अपि जन इह कश्चिद् यस्य सेवाप्रसादैः
प्रणयसुरलता स्यात्तस्य गोष्ठेन्द्रसूनोः ।
सपदि किल मदीशा–दास्यपुष्पप्रशस्या
तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥५॥

तटमधुरनिकुञ्जाः क्लृप्तनामान उच्चै–
र्निजपरिजनवर्गैः संविभज्याश्रितास्तैः ।
मधुकर–रुतरम्या यस्य राजन्ति काम्या–
स्तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥६॥

तटभुवि वरवेद्यां यस्य नर्मातिहृद्यां
मधुरमधुरवार्तां गोष्ठचन्द्रस्य भंग्या ।
प्रथयति मिथ ईशा प्राणसख्यालिभिः सा
तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥७॥

अतिशय मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जो व्रजरूप-भुवन के चन्द्रमा का अर्थात् श्रीकृष्णचन्द्र का व्रजाङ्गनाओं की शिरोमणिस्वरूपा प्रियतमा राधिका की तरह यथेष्ट प्रीतिपात्र है, एवं जिसको श्रीकृष्ण ने ही श्रीराधिका के नाम से परिचित किया है ॥४॥

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरा आश्रय बन जाय कि, जिसकी सेवा की कृपा से इस संसार में कोई भी व्यक्ति, व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण की प्रेमरूप-कल्पलता शीघ्र ही बन सकता है; वह कल्पलता मेरी स्वामिनी श्रीमती राधिका के दासभावरूप पुष्प से प्रशंसनीय है ॥५॥

परम मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरे जीवन का आधार है कि, जिसके तटपर मधुर-रस के उद्दीपक निकुञ्जसमूह शोभा पा रहे हैं। वे निकुञ्जसमूह श्रीराधिका के निजीसेवकवर्गों के द्वारा अपने-अपने नाम निर्देशपूर्वक बाँट कर आश्रित किये हैं, अर्थात् पूर्वतट में चित्रासुखद, अग्निकोण में इन्दुलेखासुखद, दक्षिण में चंपकलतासुखद, नैऋत्यकोणमें रङ्गदेवीसुखद, पश्चिम में तुङ्गविद्यासुखद, वायुकोण में सुदेवीसुखद, उत्तर में ललितासुखद, एवं ईशानकोण में विशाखासुखद-नामवाले निकुञ्जसमूह विशेषरूप से अधिकृत हैं, एवं भ्रमरों की गुञ्जार से रमणीय हैं तथा सभी के वांछनीय हैं ॥६॥

अनुदिनमतिरङ्गैः प्रेममत्तालिसंघै-
र्वरसरसिजगन्धैर्हारिवारिप्रपूर्णे ।
विहरत इह यस्मिन् दम्पती तौ प्रमत्तौ
तदतिसुरभि राधाकुण्डमेवाश्रयो मे ॥८॥

अविकलमति देव्याश्चारु कुण्डाष्टकं यः
परिपठति तदीयोल्लासिदास्यार्पितात्मा ।
अचिरमिह शरीरे दर्शयत्येव तस्मै
मधुरिपुरतिमोदैः श्लिष्यमाणां प्रियां ताम् ॥९॥

इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित-स्तवावल्यां
श्रीराधाकुण्डाष्टकं संपूर्णम् ।

अतिशय मनोहर वह राधाकुण्ड ही मेरे जीवन का आधार है कि, जिसके तट की भूमिपर, श्रेष्ठ वेदीपर विराजमान हमारी स्वामिनी श्रीमती राधिका, अपनी प्राणप्यारी सखियों के सहित, व्रजचन्द्र श्रीकृष्ण की परिहासमयी अतिशय मनोहर मीठी-मीठी बात को, इशारेपूर्वक परस्पर विस्तारित करती रहती हैं ।।७।।

अतिशय मनोहर या विशेष सुगन्धित वह राधाकुण्ड ही मेरे जीवन का अवलंबन है कि, उत्तम कमलों की सुगन्धि के कारण, मनोहर जल से परिपूर्ण जिस राधाकुण्ड में, श्रीराधा-कृष्णरूप वे दोनों दंपती प्रेमोन्मत्त होकर, प्रेम से मत्त हुई अपनी सखीश्रेणी के सहित, प्रतिदिन विशेष राग-रङ्गपूर्वक विहार करते रहते हैं ।।८।।

जो व्यक्ति, श्रीराधिका के मनोहर दास्यभाव में, अपने मन को लगा कर, श्रीराधिका के इस मनोहर राधाकुण्ड के अष्टक को, स्थिरबुद्धिपूर्वक भाव से पढ़ता है, उस व्यक्ति के लिये श्रीकृष्ण, इस शरीर में ही अतिशय हर्ष-परंपरा से युक्त, निज प्रेयसी श्रीराधिका का शीघ्र ही दर्शन करा देते हैं। इस अष्टक में "मालिनी"-नामक छन्द हैं ।।९।।

श्रीवृन्दादेव्यै नमः ।

श्रीवृन्दादेव्यष्टकम् ।

गांगेय–चांपेय–तडिद्‌विनिन्दि,–रोचिः–प्रवाह–स्नपितात्मवृन्दे ! ।
बन्धूक-बन्धु-द्युति-दिव्यवासो, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥१॥

बिंबाधरोदित्वर–मन्दहास्य,–नासाग्र–मुक्ताद्युति–दीपितास्ये ! ।
विचित्र–रत्नाभरणश्रियाढ्ये !, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥२॥

समस्त-वैकुण्ठ-शिरोमणौ श्री,–कृष्णस्य वृन्दावन-धन्य-धाम्नि ।
दत्ताधिकारे ! वृषभानु–पुत्र्या, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥३॥

त्वदाज्ञया पल्लव–पुष्प–भृङ्ग,–मृगादिभिर्माधव–केलिकुञ्जाः ।
मध्वादिभिर्भान्ति विभूष्यमाणा, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥४॥

बन्धूक एवं बन्धु-नामक पुष्पों की सी कान्तिवाले दिव्यवस्त्रों को धारण करनेवाली देवि ! वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को नमस्कार करते हैं; क्योंकि तुम सुवर्ण, चमेली के पुष्प, एवं बिजली की कान्ति को तिरस्कृत करनेवाली अपनी कान्ति के प्रवाह के द्वारा, अपने परिकर को सराबोर कर देनेवाली हो ! ।।१।।

रत्नमय आभरणों की विचित्र शोभा से युक्त, हे वृन्दे ! देवि ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को नमस्कार करते हैं; क्योंकि तुम्हारा श्रीमुख, बिम्बफल के समान रक्तवर्णवाले ओष्ठों से निकलनेवाले मन्दहास्य से युक्त है, एवं नासिका के अग्रभाग में विराजमान मोती की कान्ति से प्रकाशमान है ।।२।।

हे वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को नमस्कार करते हैं; क्योंकि श्रीकृष्ण के परमधन्य उस वृन्दावनधाम में, वृषभानुनन्दिनी श्रीराधिका ने तुम को अधिकार दिया है कि, जो धाम समस्त वैकुण्ठों का भी शिरोमणि है ।।३।।

हे वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को प्रणाम करते हैं; क्योंकि तुम्हारी आज्ञा के द्वारा पत्र-पुष्प-भृङ्ग-एवं मृग आदि, तथा वसन्त आदि समस्त ऋतुओं के द्वारा अलंकृत किये जानेवाले श्रीकृष्ण के क्रीडानिकुञ्ज, सदैव शोभा पाते रहते हैं ।।४।।

त्वदीय-दूत्येन निकुञ्ज-यूनो, –रत्युत्कयोःकेलि-विलास-सिद्धिः ।
त्वत्-सौभगं केन निरुच्यतां तद्, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥५॥

रासाभिलाषो वसतिश्च वृन्दा,–वने त्वदीशांघ्रि-सरोज-सेवा ।
लभ्या च पुंसां कृपया तवैव, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥६॥

त्वं कीर्त्यसे सात्वत-तंत्रविद्भि,–र्लीलाभिधाना किल कृष्ण-शक्तिः ।
तवैव मूर्तिस्तुलसी नृलोके, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥७॥

भक्त्या विहीना अपराध-लक्षैः, क्षिप्ताश्च कामादि-तरंग-मध्ये ।
कृपामयि ! त्वां शरणं प्रपन्ना, वृन्दे ! नुमस्ते चरणारविन्दम् ॥८॥

वृन्दाष्टकं यः शृणुयात् पठेद् वा, वृन्दावनाधीश-पदाब्ज-भृङ्गः ।
स प्राप्य वृन्दावन-नित्यवासं, तत् प्रेमसेवां लभते कृतार्थः ॥९॥

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुरविरचित–स्तवामृतलहर्यां
श्रीवृन्दादेव्यष्टकं संपूर्णम् ।

—*—

हे वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को बारंबार प्रणाम करते हैं; क्योंकि रतिक्रीडा के उत्सुक, निकुञ्ज के युवक श्रीराधा-कृष्ण की क्रीडाविलास की सिद्धि, तुम्हारे दूतभाव से ही सिद्ध हो पाती है, अतः तुम्हारे सौभाग्य को कौन वर्णन कर सकता है ? ॥५॥

हे वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणों को साष्टाङ्ग प्रणाम करते हैं; क्योंकि श्रीरासलीला के दर्शन की अभिलाषा, वृन्दावन में वास, एवं तुम्हारे स्वामी श्रीराधाकृष्ण के चरणारविन्दों की सेवा, मनुष्यों को तुम्हारी कृपा से ही उपलब्ध होती है ॥६॥

हे वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को नमस्कार करते हैं; क्योंकि वैष्णवसिद्धान्त के विज्ञजन, तुम को श्रीकृष्ण की लीलाशक्ति के नाम से पुकारते हैं, एवं मनुष्यलोक में वृक्षरूपवाली तुलसीदेवी भी तुम्हारी ही मूर्ति मानी जाती है ॥७॥

हे कृपामयी देवि ! वृन्दे ! हम तुम्हारे चरणारविन्दों को भावपूर्वक प्रणाम करते हैं; क्योंकि हम सब श्रीहरिभक्ति से विहीन हैं, अतएव लाखों प्रकार के अपराधों से काम आदि दुस्तर समुद्रों की तरंगों में फेंके जा रहे हैं, अतएव आपकी शरण में आ रहे हैं ॥८॥

श्रीवृन्दावनधाम्ने नमः ।

श्रीवृन्दावनाष्टकम् (१) ।

मुकुन्दमुरलीरव–श्रवणफुल्लहृद्वल्लवी–
कदम्बककरम्बितप्रतिकदम्बकुंजान्तरा ।
कलिन्दगिरिनन्दिनीकमलकन्दलान्दोलिना
सुगन्धिरनिलेन मे शरणमस्तु वृन्दाटवी ।।१।।

जो व्यक्ति, वृन्दावनेश्वर श्रीराधागोविन्द के चरणारविन्दों का भ्रमर बनकर, वृन्दादेवी के इस अष्टक को भावपूर्वक सुनता है या इसका पाठ करता है; वह व्यक्ति, वृन्दावन में नित्यनिवास पा कर, कृतकृत्य होकर, श्रीराधागोविन्द की प्रेममयी सेवा को प्राप्त कर लेता है ।।८।।

—*—

हे वृन्दाटवीदेवि ! मेरे अपराधों को क्षमा कर दीजिये, एवं अपने में अजस्र निवास प्रदान कीजिये । मातः ! आप तो दया से कोमल चित्तवाली हो, मेरे मनोरथ को अवश्य पूरा करोगी; क्योंकि आपकी प्रसन्नता के कारणस्वरूप आप के परमपवित्र स्तोत्र की, मैं भक्तिपूर्वक व्याख्या करता हूँ—

"शरणं गृह-रक्षित्रोः" अमरकोष के इस प्रमाण के अनुसार वृन्दाटवीदेवी "शीर्यन्ते दुःखान्यस्मिन्निति व्युत्पत्त र्मूलाऽविद्यापर्यन्तानां दुःखानां विनाशिनी भूयादित्यर्थः । निवासस्थानमस्त्विति चार्थः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार मेरी रक्षिका बन जाय, अर्थात् जन्म-मरण की मूलभूत अविद्यापर्यन्त दुःखों को विनष्ट करनेवाली बन जाय, एवं निवासस्थान-स्वरूप होजाय । तात्पर्य—मेरा नित्य वृन्दावन-वास होता रहे । इस वृन्दाटवी की कदंब के वृक्षों से बनी हुई प्रत्येक निकुञ्जों का मध्यभाग, श्रीकृष्ण की मधुर मुरली की ध्वनि के श्रवण से, प्रफुल्लित हृदयवाली गोपियों के समुदाय से युक्त है, एवं यह वृन्दाटवी श्रीयमुना के कमलों को संचालित करनेवाली वायु के द्वारा विशिष्ट सुगन्धी से युक्त है, अर्थात् शीतल-मन्द-सुगन्ध पवन से युक्त है ।।१।।

विकुण्ठपुरसंश्रयाद्विपिनतोऽपि निःश्रेयसात्
सहस्रगुणितां श्रियं प्रदुहती रसश्रेयसीम्।
चतुर्मुखमुखैरपि स्पृहिततार्णदेहोद्भवा
जगद्गुरुभिरग्रिमैः शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥२॥

अनारतविकस्वरव्रततिपुंजपुष्पावली-
विसारिवरसौरभोद्‌गम-रमाचमत्कारिणी।
अमन्दमकरन्दभृद्विटपिवृन्दवन्दीकृत-
द्विरेफकुलवन्दिता शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥३॥

यह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जो वैकुण्ठपुर में विद्यमान "निःश्रेयस"-नामक वन से भी हजारगुणी शोभा को पूर्ण करनेवाली है, अर्थात् दास्य-सख्य-वात्सल्य-श्रृङ्गार-नामक भक्ति के चारों रसों से युक्त, अतः सर्वश्रेष्ठ आनन्दमयी संपत्ति को परिपूर्ण करनेवाली है; क्योंकि वैकुण्ठ के निःश्रेयस-नामक वन में तो शान्त एवं दास्य-नामक दो ही रस उपलब्ध हैं, श्रृङ्गाररस तो वहाँ दुर्लक्ष्य ही है; अतः ऐसा प्रतीत होता है कि, दास्यादि चारों रसों को उद्दीप्त करने के लिये, स्वयं श्रीकृष्ण ही अपनी सङ्कल्पशक्ति के द्वारा, अनादिकाल से श्रीवृन्दाटवी के रूप से विद्यमान हैं। बृहद्‌गौतमीयतंत्र में श्रीकृष्ण के "पञ्चयोजनमेवास्ति वनं मे देहरूपकम्" इस वचन में पाँच योजन के विस्तारवाला यह वृन्दावन मेरा देहस्वरूप है, ऐसा कहा है। अतः इस वृन्दाटवी में "तद्भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद्गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोऽभिषेकम्" भा० १०।१४।३४ "आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्" भा०१०॥४७।६१ इत्यादि अपनी-अपनी प्रार्थना के द्वारा जगद्‌गुरु ब्रह्मा एवं भक्तश्रेष्ठ उद्धव आदि भी तृणसंबंधि जन्म की अभिलाषा करते रहते हैं ॥२॥

सर्वदा रहनेवाली पुष्पादिकों की शोभा को वर्णन करते हुए, श्रीरूप गोस्वामी कहते हैं—

वह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जो निरन्तर विकसनशील लतासमूहों के पुष्पश्रेणियों से फैलनेवाली "वैकुण्ठस्थ निःश्रेयस-नामक वन में न मिलनेवाली" सुगन्धि के प्रादुर्भाव से, लक्ष्मीदेवी को भी आश्चर्यान्वित कर देनेवाली है, एवं उत्तम मकरन्द (पुष्परस) को धारण करनेवाले वृक्षसमूह के द्वारा,

क्षणद्युतिघनश्रियोर्व्रजनवीनयूनोः पदैः
सुवल्गुभिरलंकृता ललितलक्ष्मलक्ष्मीभरैः।
तयोर्नखरमण्डलीशिखरकेलिचर्योचितै-
र्वृता किशलयांकुरैः शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥४॥

व्रजेन्द्रसखनन्दिनीशुभतराधिकारक्रिया-
प्रभावजसुखोत्सवस्फुरितजङ्गमस्थावरा ।
प्रलम्बदमनानुजध्वनितवंशिका-काकली-
रसज्ञमृगमण्डला शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥५॥

अमन्दमुदिरार्बुदाभ्यधिकमाधुरीमेदुर-
व्रजेन्द्रसुतवीक्षणोन्नटितनीलकण्ठोत्करा ।
दिनेशसुहृदात्मजाकृतनिजाभिमानोल्लस-
ल्लताखगमृगाङ्गना शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥६॥

बन्दी बनाये हुए भ्रमरसमूहों के द्वारा जो वन्दित है, अर्थात् गूंजते हुए भ्रमरों के द्वारा, वन्दीजनों की तरह जिसकी स्तुति होती रहती है ॥३॥

श्रीमती राधिका के सहित स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से सनाथ होने के कारण जो विशेषता है, उसको दिखाते हुए कहते हैं—

वह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जो विद्युत एवं मेघ की सी कान्तिवाले व्रज के नवीनयुवक श्रीराधाकृष्ण के अतिशय सुन्दर उन चरणारविन्दों से अलंकृत है कि, जो चरणारविन्द वज्र-अंकुश आदि अनेक मनोहर चिह्नों की शोभा से परिपूर्ण हैं, एवं जो वृन्दाटवी श्रीराधाकृष्ण की नखपंक्तियों के अग्रभाग के समान शोभायमान नवपल्लव एवं अंकुरों से परिपूर्ण है ॥४॥

वह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जो श्रीनन्द के प्रियमित्र, श्रीवृषभानु-गोप की कुमारी, श्रीराधिका की मङ्गलमयी आज्ञा के प्रभाव से उत्पन्न सुख एवं उत्सवों से स्फूर्ति पानेवाले, स्थावर-जङ्गमात्मक प्राणियों से युक्त है, तथा प्रलंब दैत्य को मारनेवाले श्रीबलदेव के छोटे भाई, श्रीकृष्ण के द्वारा बजायी गयी वंशी की सूक्ष्म एवं सुमधुर ध्वनि के रस को जाननेवाले मृगमण्डल जिसमें विद्यमान हैं ॥५॥

वह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जो अतिशय उत्तम करोड़ों मेघों से भी अधिक मनोहर, श्याम छवि से

अगण्यगुणनागरीगण—गरिष्ठगान्धर्विका—
मनोजरणचातुरीपिशुनकुंजपुंजोज्ज्वला ।
जगत्त्रयकलागुरोर्ललितलास्यवल्गत्पद—
प्रयोगविधिसाक्षिणी शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥७॥

वरिष्ठहरिदासतापदसमृद्ध—गोवर्धना
मधूद्वहवधूचमत्कृति–निवासरासस्थला ।
अगूढगहनश्रियो मधुरिमव्रजेनोज्ज्वला
व्रजस्य सहजेन मे शरणमस्तु वृन्दाटवी ॥८॥

चिक्कण वर्णवाले, व्रजराजकुमार श्रीकृष्ण के दर्शन से नाचते हुए मयूरवृन्द से युक्त है, एवं जिसमें सूर्य के मित्र श्रीवृषभानुजी की पुत्री श्रीराधिका के द्वारा किये गये "यह वृन्दाटवी मेरी ही है" इस प्रकार के निजाभिमान से उल्लसित लताएँ एवं पशु-पक्षियों की स्त्रियाँ हर्षपूर्वक विद्यमान हैं। तात्पर्य—स्त्री के राज्य में स्त्रियाँ प्राय हर्षित रहती हैं ॥६॥

रासक्रीडा की आधार होने से जो वैशिष्ट्य है, उसको वर्णन करते हुए कहते हैं—

वह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जो अगणित गुणसंपन्न नागरीगण में सर्वोत्तम श्रीमती राधिका के कामयुद्ध की चातुरी के सूचक निकुञ्जपुञ्ज से विराजमान है, तथा जो तीनों लोकों की कलाओं के शिक्षक श्रीकृष्ण के मनोहर नृत्य में चलनेवाले चपल-चरणों के प्रयोग-विधि की साक्षी देनेवाली है ॥७॥

वह वृन्दाटवी मेरी रक्षक एवं निवासस्थान बन जाय कि, जिसमें सर्वश्रेष्ठ हरिदासता-पद से, अर्थात् भगवत् कैङ्कर्यरूप वस्तु के द्वारा समृद्धिमान् सर्वपूजनीय गिरिराज—श्रीगोवर्धन विद्यमान है; एवं व्रजाङ्गनाओं के आश्चर्यों के आधारस्वरूप रासस्थल जिसमें विद्यमान हैं, अर्थात् अपना नित्य अनुभव करनेवाली गोपियों के लिये भी चमत्कारजनक होने के नाते, जो वृन्दाटवी नित्य-नूतन-विचित्र कान्तियों से युक्त रासस्थलियों से विराजमान है; अथवा जो वृन्दाटवी, अपने स्वामी श्रीकृष्ण के मुख से, वृन्दावन की महिमा को सुननेवाली श्रीरुक्मिणी सत्यभामा आदि कृष्णकान्ताओं के भी आश्चर्यकारी रासस्थानों से युक्त है, तथा अनेक वनों की प्रगट शोभावाले व्रजमण्डल के स्वाभाविक माधुर्यसमूह से जो विशेष प्रकाशित है। चारों ओर

इदं निखिलनिष्कुटावलिवरिष्ठवृन्दाटवी-
गुणस्मरणकारि यः पठति सुष्ठु पद्याष्टकम् ।
वसन् व्यसनमुक्तधीरनिशमत्र सद्वासनः
स पीतवसने वशी रतिमवाप्य विक्रीडति ॥६॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां
श्रीवृन्दावनाष्टकं (१) संपूर्णम् ।

—•—

श्रीवृन्दावनाय नमः ।

श्रीवृन्दावनाष्टकम् (२) ।

न योगसिद्धिर्न ममास्तु मोक्षो, वैकुण्ठलोकेऽपि न पार्षदत्वम् ।
प्रेमापि न स्यादिति चेत्तरां तु, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥१॥

तार्णं जनुर्यत्र विधिर्ययाचे, सद्भक्तचूडामणिरुद्धवोऽपि ।
वीक्ष्यैव माधुर्यधुरां तदस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥२॥

अत्यन्त रमणीय वनश्रेणी के द्वारा परिवेष्टित होने के कारण, वृन्दाटवी का अतिशय गांभीर्य व्यक्त होता है ।।८।।

स्वर्गस्थ नन्दनवन से लेकर वैकुण्ठस्थ निःश्रेयस-नामक वनपर्यन्त, समस्त उपवनश्रेणी से श्रेष्ठ, श्रीवृन्दाटवी के लोकोत्तर गुणों के स्मरण करानेवाले, इस पद्याष्टक का जो व्यक्ति भलीप्रकार पाठ करता है; वह व्यक्ति, इस वृन्दाटवी में निरन्तर वास करता हुआ, अनेक प्रकार के व्यसनों से रहित बुद्धिवाला होकर, श्रीकृष्ण-भजनरूप सुन्दर वासना से विशिष्ट होकर, जितेन्द्रिय बनकर, पीतांबरधारी श्रीकृष्ण में अनुराग को प्राप्त करके, परमसुख में विहार करता रहता है । इस अष्टक में "पृथ्वी"-नामक छन्द हैं ।।६।।

—•—

यदि योगसिद्धि मुझे न प्राप्त हो तो इसकी मुझे कोई परवाह नहीं है, यदि मेरी मुक्ति न हो तो इससे भी मेरी हानि नहीं है, यदि वैकुण्ठलोक में मुझे पार्षदभाव न मिले तो भी मेरी कोई क्षति नहीं है, और यदि भगवद्विषयक विशाल प्रेम भी मेरे हृदय में न हो तो भी, मेरा निवास तो श्रीवृन्दावन में ही होता रहे ।।१।।

किं ते कृतं हन्त तपः क्षितीति, गोप्योऽपि भूमेस्तुवते स्म कीर्तिम्।
येनैव कृष्णांघ्रिपदांकितेऽस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥३॥
गोपांगनालंपटतैव यत्र, यस्यां रसः पूर्णतमत्वमाप।
यतो रसो वै स इति श्रुतिस्त,-न्ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥४॥
भाण्डीर-गोवर्धन-रासपीठै,-स्त्रिसीमके योजन-पंचकेन।
मिते विभुत्वादमितेऽपि चास्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥५॥
यत्राधिपत्यं वृषभानुपुत्र्या, येनोदयेत् प्रेमसुखं जनानाम्।
यस्मिन्ममाशा बलवत्यतोऽस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥६॥

जिस वृन्दावन के माधुर्य की विशालता को देखकर, जगद्गुरु ब्रह्मा एवं श्रेष्ठभक्तों के चूडामणि उद्धव ने भी, जिस वृन्दावन में तृणसंबंधी जन्म की याचना की थी, अतः मेरा निवास तो इस वृन्दावन में ही होता रहे ।।२।।

रासलीला में श्रीकृष्ण के अन्तर्हित हो जानेपर, प्रेम की पताकारूपा-गोपियाँ ने भी "किं ते कृतं क्षिति ! तपो" भा० १०।३०।१० अर्थात् हे पृथ्वीदेवि ! तुमने ऐसा कौनसा अपूर्व तप किया है कि, जिससे तुम वृन्दावन में श्रीकृष्ण के चरणों के स्पर्शरूप उत्सव से पुलकित रोमाञ्चों से सुशोभित हो रही हो, इत्यादिरूप से भूमि के यश की स्तुति जिस ध्येय से की थी, उसी ध्येय से मेरा नित्यनिवास तो श्रीकृष्णचरणचिह्नों से अंकित इस वृन्दावन में ही होता रहे ।।३।।

गोपाङ्गनाओं की प्रेममयी आसक्ति ही जिसमें प्रधान है, एवं प्रेममयी जिस आसक्ति में ही रस को परिपूर्णता मिली है; क्योंकि "निश्चितरूप से रस के मूर्तिमान स्वरूप तो रसिकशेखर वे नन्दनन्दन ही हैं" इस भाव को कहनेवाली 'रसो वै सः' इत्यादि रूपवाली श्रुति भी जिसमें प्रमाण है; अतः मेरा निवास तो उस वृन्दावन में ही होता रहे ।।४।।

मेरा नित्यनिवास तो इस वृन्दावन में ही होता रहे कि—जो भाण्डीरवट, गोवर्धन, एवं रासपीठ इन तीन विशिष्टस्थलों के कारण तीन सीमावाला है; एवं व्यापक होने के कारण, अपरिमित होकर भी, जो पाँच योजन से परिमित है ।।५।।

जिस वृन्दावन में श्रीवृषभानुनन्दिनी का आधिपत्य है, एवं जिस वृन्दावन के द्वारा भक्तजनमात्र को भगवत्संबंधी प्रेमसुख प्रगट हो

यस्मिन् महारासविलासलीला, न प्राप यां श्रीरपि सा तपोभिः ।
तत्रोल्लसन्मंजु–निकुंजपुंजे, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥७॥
सदा रुरु–न्यंकुमुखा विशंकं, खेलन्ति कूजन्ति पिकालिकीराः ।
शिखण्डिनो यत्र नटन्ति तस्मिन्, ममास्तु वृन्दावन एव वासः ॥८॥
वृन्दावनस्याष्टकमेतदुच्चैः, पठन्ति ये निश्चलबुद्धयस्ते ।
वृन्दावनेशांघ्रि–सरोजसेवां, साक्षाल्लभन्ते जनुषोऽन्त एव ॥९॥

इति श्रीमद्विश्वनाथचक्रवर्तिठक्कुरविरचितं
श्रीवृन्दावनाष्टकं (२) संपूर्णम् ।

—*—

श्रीमते वृन्दावनाय नमः ।

श्रीवृन्दावनाष्टकम् (३) ।

श्रीकृष्णवेणुरवफुल्ललताविताम !
गुञ्जन्मधुव्रतपिकालिपरीतकुञ्ज ! ।
सौरीसरोरुहसमर्चितवातगन्ध !
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥१॥

सकता है, तथा जिस वृन्दावन में मेरी बलवती आशा है; अतः मेरा नित्यनिवास तो इस वृन्दावन में ही होता रहे ।।६।।

महारासविलास की जिस लीला को नारायणपत्नी लक्ष्मीदेवी, अनेक तपस्याओं के द्वारा भी नहीं प्राप्त कर पाईं, वह महारासविलास-लीला जिस वृन्दावन में नित्य ही होती रहती है; अतः मेरा नित्यनिवास तो शोभायमान एवं मनोहर निकुञ्जपुञ्ज से युक्त उस वृन्दावन में ही होता रहे ।।७।।

जिस वृन्दावन में रुरु (काला मृग), न्यंकु (अनेक सींगोंवाला मृग) आदि अनेक मृग, निःशंक खेलते रहते हैं; एवं कोयल-भ्रमर-तोता आदि अनेक पक्षी जिसमें गूंजते रहते हैं, एवं मयूरगण जिसमें नाचते रहते हैं, उस वृन्दावन में ही मेरा नित्यनिवास होता रहे ।।८।।

निश्चलबुद्धिवाले जो व्यक्ति, वृन्दावन के इस अष्टक का ऊँचेस्वर से भावपूर्वक पाठ करते हैं, वे व्यक्ति, वृन्दावनाधीश्वर श्रीराधाकृष्ण के पादपद्मों की सेवा को, इसजन्म के अन्त में ही साक्षात् प्राप्त कर लेते हैं । इस अष्टक में "उपजाति"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

निःश्रेयसाख्यवनतोऽपि विकुण्ठपूःस्थात्
शोभां सहस्रगुणितां दधदप्रमेय ! ।
यद्रामकृष्णचरणाङ्कसमचिताङ्ग !
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥२॥

अश्रान्तपुष्पितलताव्रजपुष्पपुञ्ज-
विस्तारिसौरभचमत्कृतचंचलाक ! ।
वैकुण्ठनाथपरिकीर्तितकीर्तिमाल !
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥३॥

गोविन्दवेणुकलगीतरसज्ञलोक !
श्यामाङ्गदर्शननटद्बहुनीलकण्ठ ! ।
हे मर्त्यलोकसुभगत्वप्रसिद्धकेतो !
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥४॥

श्रीकृष्णचन्द्र के मधुर वेणुनाद से प्रफुल्लित लता-वितानयुक्त ! गूंजते हुए मधुकरों की मधुर गुंजार से एवं कोकिलों के सुमधुर कलरव से व्याप्त कुंजवाले ! और श्रीयमुनाजी में खिले हुए नील-पीत-श्वेत--रक्त चतुर्विध कमलों से चर्चित वायु के कारण सुगन्धमय प्रदेशवाले ! हे श्रीवृन्दावन ! मेरे मानसिक-रोग को कृपया शीघ्र दूर कर दीजिये ॥१॥

वैकुण्ठ में विराजमान 'निःश्रेयस'-नामक वन से भी हजारोंगुणी शोभा को धारण करने के कारण अप्रमेय ! और श्रीकृष्ण-बलदेव के चरणारविन्दों में विद्यमान वज्र-अंकुश-ध्वज-कमल आदि चिह्नों से सुशोभित सर्वाङ्ग हे श्रीवृन्दावन ! मेरी मनोव्यथा को शीघ्र ही दूर कर दीजिये ॥२॥

सब ऋतुओं के एक ही साथ रहने के कारण, निरन्तर पुष्पित लतासमूहों के पुष्पसमुदाय के मनोहर सुगन्धमय वायु की सुगन्ध से, श्रीलक्ष्मीजी के चित्त को चंचलित कर देनेवाले ! और श्रीवैकुण्ठनाथ भी जिनकी कीर्तिमाला का गायन करते रहते हैं, एवंगुणविशिष्ट शिष्टजन-सेव्य हे श्रीवृन्दावनधाम ! मेरे मन की सब पीडाओं को शीघ्र ही हर लीजिये ॥३॥

गोपाललाल श्रीव्रजराजकुमार के वेणु के सुमधुर गायन के रसज्ञ-लोग ही जिसमें निवास करते हैं, एवं श्रीश्यामसुन्दर भगवान् के श्यामअङ्ग दर्शन से श्याममेघ की भ्रान्ति के कारण, सदा ही

श्रीराधिकारसविवर्धकरासलीला-
तौर्यत्रिकोत्पुलकिताङ्गरुहैर्मनोज्ञ ! ।
सर्वज्ञकृष्णनटलास्यप्रयोगसाक्षिन् !
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥५॥

गोवर्धनो विजयते हरिदासवर्यः
सूर्यात्मजा च सुषमामधिकीकरोति ।
यत्राऽच्युतोऽपि विजहार सखिव्रजेन
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥६॥

सर्वत्र नष्टविभवा हरिभक्तिरत्र-
नृत्यं करोति किल वैष्णवमानसेषु ।
दिव्याङ्ग ! दिव्यपशुपक्षिलतादिलोक !
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥७॥

मयूरगण नृत्य करते रहते हैं जिसमें, और हे मर्त्यलोक के सौभाग्य के सुप्रसिद्ध ध्वजस्वरूप श्रीवृन्दावन ! मेरे मानसिक--कष्टों को शीघ्र ही शान्त कर दीजिये ॥४॥

श्रीमती राधिकाजी के रस की वृद्धिकारिका जो रासलीला, उसमें होनेवाले जो नृत्य-गीत-वाद्य, उनके कारण पुलकित रोमांचस्वरूप विविध वृक्षों से सुशोभित ! और सर्वज्ञ-शिरोमणि नटवर श्रीकृष्णचन्द्र के नृत्यप्रयोग के साक्षिन् हे श्रीवृन्दावन ! मेरी मानसिक सब बाधाओं को शीघ्र ही दूर कर दीजिये ॥५॥

श्रीहरिसेवको में श्रेष्ठ श्रीगोवर्धन-पर्वतराज भी जहाँ विराजमान है, और श्रीयमुनाजी भी जिसकी विशिष्ट शोभा को बढ़ा रही है, एवं जहाँपर श्रीअच्युत भगवान् ने भी सखामण्डल के सहित यथेष्ट विहार किया एवंगुणविशिष्ट ! शिष्टजन-वांछित रजकण ! हे श्रीवृन्दावन ! मेरे मानसिक सभी रोगों को शीघ्र ही दूर कर दीजिये ॥६॥

जिन भक्ति-महारानी का वैभव, संपूर्ण विश्व में नष्ट प्राय हो गया था, वे ही भक्तिदेवी जहाँपर वैष्णवों के मानस-मंचपर नृत्य करती रहती हैं; और जिसके संपूर्ण अंग दिव्य हैं, एवं दिव्य ही मानव-पशु-पक्षी-लता-वृक्षादि जहाँपर हैं, जिनमें से एक कोई हो जाने के लिये ब्रह्मा-उद्धव आदि प्रार्थना करते हैं, ऐसे गुणों के खजाने हे श्रीवृन्दावन ! मेरे ऊपर कृपा करके, मेरी मनःपीडा को शीघ्र ही दूर कर दीजिये ॥७॥

यत्त्यक्तुमिच्छति हरिर्न मनागपि त्वाम्
यत्रोद्धवो विधिरपीच्छति जन्म तार्णम् ।
कस्ते वनाधिप ! गुणान्कथयत्वतो विद्
वृन्दावन ! प्रशमयाऽऽशु मनोरुजं मे ॥८॥

वृन्दावनाष्टकमिदं स्थितधीर्मनुष्यः
श्रद्धाऽन्वितोऽनुशृणुयादथकीर्तयेद् यः ।
वृन्दावनस्य कृपया भुवि लब्धभोगो
भूत्वा हरिप्रणयभाजनमस्तु चान्ते ॥९॥

इति श्रीगोपालचम्पूटीकाकार-महाकवि-श्रीवनमालिदासशास्त्रिविरचितं श्रीवृन्दावनाष्टकं (३) संपूर्णम् ।

—*—

श्रीमते चैतन्यचन्द्राय नमः ।

श्रीशिक्षाष्टकम् ।

चेतोदर्पणमार्जनं भवमहादावाग्निनिर्वापणं
श्रेयःकैरवचन्द्रिकावितरणं विद्यावधूजीवनम् ।
आनन्दाम्बुधिवर्धनं प्रतिपदं पूर्णामृतास्वादनं
सर्वात्मस्नपनं परं विजयते श्रीकृष्णसंकीर्तनम् ॥१॥

श्रीकृष्ण भी जिसको किंचित्‌काल भी छोड़ना नहीं चाहते हैं, यथा—"व्रज तजि अनत न जाइ हों, यही हमारी टेक ।
भूतल-भार उतारि हों, धरि हों रूप अनेक ।।"

और जहाँपर ब्रह्मा-उद्धव आदि भी तृणसंबंधी जन्म सदा चाहते रहते हैं, अतः हे वनराज ! ऐसा कौन विद्वान् है; जो यथार्थरूपेण, साकल्यरूपेण वा आप के गुणों का वर्णन कर सके ? (देखो, 'श्रीउपदेशामृतम्' श्लोक ८, पृष्ठ १५६) ।।८।।

इस श्रीवृन्दावनाष्टक को, स्थिरबुद्धिवाला जो कोई भी मनुष्य, यदि श्रद्धायुक्त होकर सुनेगा या वर्णन करेगा, वह वनराज श्रीवृन्दावन की कृपा से पृथ्वी में सब भोगों का भागी होकर, अन्त में श्रीकृष्ण का प्रीतिपात्र हो जायगा । इस अष्टक में "वसन्ततिलका"-नामक छन्द हैं ।।९।।

—*—

नाम्नामकारि बहुधा निजसर्वशक्ति-
स्तत्रार्पिता नियमितः स्मरणे न कालः ।
एतादृशी तव कृपा भगवन् ! ममापि
दुर्दैवमीदृशमिहाऽजनि नानुरागः ॥२॥

नाम-माहात्म्य के विषय में, कलियुगपावनावतारी भगवान् श्रीचैतन्यमहाप्रभु की उक्ति तो सर्वोत्कृष्ट है, यथा—

[इस मायामय जगत् में श्रीकृष्णसंकीर्तन ही विजय को प्राप्त होता है १. यही चित्तरूपी-दर्पण का शोधन करनेवाला है, २. संसारस्वरूप महादावानल को मिटानेवाला है, ३. कल्याणरूपिणी कुमुदिनी के विकास के लिये चन्द्रिका का विस्तार करनेवाला है, ४. विद्यारूप-वधू का जीवनस्वरूप है, ५. आनन्दरूपी-समुद्र का वढ़ानेवाला है, ६. पद-पदपर पूर्ण अमृत का आस्वाद करानेवाला है, एवं ७. बाहर-भीतर से सर्वतोभावेन अन्तःकरगपर्यन्त स्नान करा देता है, अर्थात् जीव के अन्तःकरण के समस्त पाप-ताप नष्ट कर देता है। इस प्रकार श्रीनामसंकीर्तन की सात भूमिकाएँ हैं। आचाण्डाल पामरपर्यन्त को, इन सात भूमिकाओंपर यथाधिकार पहुँचा देने के कारण, कर्म-ज्ञानादि साधनों की अपेक्षा, श्रीनामसंकीर्तन की ही इस जगत् में पूर्ण विजय है। "परं विजयते"-पद से श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने यह भी शिक्षा दी है कि—जैसे ज्ञान, कर्म आदिक साधन, भक्ति की सहायता के विना दुर्वल रहते हैं, और अपना पूर्ण फल नहीं दे सकते। किन्तु भक्तिबीज-श्रीनामसंकीर्तन ऐसा परापेक्षी नहीं है, अर्थात् यह कर्म, ज्ञान आदि की सहायता की अपेक्षा नहीं करता है, उनके विना ही परं-केवलं--विजयते (पद्यावली श्लोक २२) ॥१॥]

श्रीचैतन्यमहाप्रभु विषाद और दैन्य में कहते हैं कि—

हे भगवन् ! जीवों की भिन्न-भिन्न रुचि को रखने के लिये ही तो, आपने अपने मुकुन्द, माधव, गोविन्द, दामोदर, घनश्याम, श्यामसुन्दर, यशोदानन्दन इत्यादि नाम रखे, और प्रत्येक नाम में अपनी संपूर्ण शक्ति भी स्थापित कर दी, एवं स्मरण के विषय में देश-काल-शुद्धाशुद्धी का भी नियम बन्धन तोड़ दिया। हाय प्रभो ! आपकी तो जीवोंपर ऐसी अहैतुकी कृपादृष्टि वृष्टि है, तथापि मेरा तो ऐसा दुर्भाग्य है कि, आपके नाम में अनुराग उत्पन्न नहीं हुआ (पद्यावली श्लोक ३१) ॥२॥

तृणादपि सुनीचेन तरोरपि सहिष्णुना।
अमानिना मानदेन कीर्तनीयः सदा हरिः ॥३॥

न धनं न जनं न सुन्दरीं कवितां वा जगदीश ! कामये।
मम जन्मनि जन्मनीश्वरे भवताद् भक्तिरहैतुकी त्वयि ॥४॥

अयि नन्दतनूज ! किङ्करं पतितं मां विषमे भवांबुधौ।
कृपया तव पादपंकजस्थित-धूलीसदृशं विचिन्तय ॥५॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु कहते हैं कि—

अपने को तृण से भी नीचा समझकर, वृक्ष से भी सहनशील बनकर, स्वयं अमानी होकर, दूसरों के मान देनेवाला बनकर, सदैव श्रीहरिनामसंकीर्तन करता रहे (पद्यावली श्लोक ३२) ॥३॥

हे जगदीश ! मैं, न धन चाहता हूँ, न जन चाहता हूँ, न सुन्दर कविता ही चाहता हूँ। चाहता हूँ केवल, हे प्राणेश्वर ! आपके श्रीचरणकमलों में मेरी जन्म-जन्म में अहैतुकी भक्ति हो (पद्यावली श्लोक ९४) ॥४॥

हे नन्दनन्दन ! वस्तुतः मैं आपका नित्यकिङ्कर हूँ, किन्तु अब निज कर्मदोष से विषय संसार-सागर में पड़ा हूँ। काम, क्रोध, मत्सरादि ग्राह मुझे निगलने को दौड़ रहे हैं। दुराशा दुश्चिन्ता की तरङ्गों में इधर-उधर बह रहा हूँ। कुसङ्गरूप-प्रबलवायु और भी व्याकुल कर रहा है। ऐसी दशा में आपके बिना मेरा कोई आश्रय नहीं है। कर्म, ज्ञान, योग, तप आदिक तृण-गुच्छों के समान इधर-उधर तैर रहे हैं, पर क्या उनका आश्रय ले कर कोई संसार-सागर के पार जा सकता है ? हाँ, कभी-कभी ऐसा तो होता है कि, संसार-सागर में डूबता हुआ जन, उनको भी पकड़ कर, अपने साथ डुबा लेता है। आपकी कृपा के बिना और कोई आश्रय नहीं हो सकता है। केवल आपका नाम ही ऐसी दृढ नौका है, जिसके आश्रय से यह जीव, संसारसिन्धु को पार कर सकता है, पर उसका आश्रय मिले यह भी आपकी कृपापर निर्भर है। आप शरणागतवत्सल हैं; मुझ अनाश्रित को, अपने चरणकमलों में संलग्न रजकण के समान जानें, आपकी करुणा के बिना, मुझ साधनशून्य का, संसार से निस्तार का कोई उपाय नहीं है (पद्यावली श्लोक ७१) ॥५॥

नयनं गलदश्रुधारया वदनं गद्गदरुद्धया गिरा ।
पुलकैर्निचितं वपुः कदा तव नामग्रहणे भविष्यति ?॥६॥

युगायितं निमेषेण चक्षुषा प्रावृषायितम् ।
शून्यायितं जगत् सर्वं गोविन्दविरहेण मे ॥७॥

आश्लिष्य वा पादरतां पिनष्टु मा-
मदर्शनान्मर्महतां करोतु वा ।
यथा तथा वा विदधातु लंपटो
मत्प्राणनाथस्तु स एव नापरः ॥८॥

इति श्रीचैतन्यचरितामृतान्त्यखण्डविंशपरिच्छेदोद्धृतं कलियुगपावन-स्वभजन-विभजन-प्रयोजनावतीर्णमहावदान्य-श्रीश्रीभगवद्गौरचन्द्र-महाप्रभोः प्रेमोद्भावितहर्षेर्षोद्वेगदैन्यार्तिमिश्रित-लपितान्तर्भूतं "श्रीशिक्षाष्टकम्" इति प्रसिद्धतां गतमष्टकं संपूर्णम् ।

[हे प्रभो ! आपका नाम ग्रहण करते समय, मेरे नयन अश्रुधारा से, मेरा मुख गद्गद वाणी से, और मेरा शरीर पुलकावलियों से कब व्याप्त होगा ? (पद्यावली श्लोक ९३) ॥६॥

हे सखि ! गोविन्द के विरह से, मेरा निमेषमात्र काल भी युग के समान प्रतीत होता है, मेरी आँखों ने वर्षाऋतु का सा रूप धारण कर लिया है, और यह समस्त जगत् मुझे शून्य सा प्रतीत होता है (पद्यावली श्लोक ३२४) ॥७॥

वह लंपट अपनी पादसेवा में आसक्त, मुझ दासी को प्रगाढ आलिङ्गन से भींचे, किंवा अपने दर्शन न देकर, मुझे मर्माहत करते हुए पीड़ा भी पहुँचाय, या अपनी जो अभिरुचि हो सो करे, परन्तु वही मेरा प्राणनाथ है । उनके अतिरिक्त दूसरा कोई नहीं है (पद्यावली श्लोक ३३७) ॥८॥]

श्रीगौरचन्द्राय नमः ।

श्रीस्वनियमदशकम् ।

गुरौ मंत्रे नाम्नि प्रभुवर-शचीगर्भजपदे
स्वरूपे श्रीरूपे गणयुजि तदीय-प्रथमजे ।
गिरीन्द्रे गान्धर्वासरसि मधुपुर्यां व्रजवने
व्रजे भक्ते गोष्ठालयिषु परमास्तां मम रतिः ॥१॥

न चान्यत्र क्षेत्रे हरितनु-सनाथेऽपि सुजनाद्
रसास्वादं प्रेम्णा दधदपि वसामि क्षणमपि ।
समं त्वेतद् ग्राम्यावलिभिरभितन्वन्नपि कथां
विधास्ये संवासं व्रजभुवन एव प्रतिभवम् ॥२॥

अपने भजन के नियमों को, रागानुगीय मार्गानुगामी भक्तजनों के प्रति उपदेश देते हुए, श्रीरघुनाथदास गोस्वामी कहते हैं कि—

अपने श्रीगुरुदेव में, उनके द्वारा दिये हुए दीक्षामंत्र में, श्रीहरिनाम में, महाप्रभु शचीनन्दन श्रीगौराङ्गदेव के श्रीचरणों में, श्रीस्वरूपदामोदर गोस्वामी में, श्रीरूप गोस्वामी में, एवं परिकर सहित श्रीसनातन गोस्वामी में, पर्वतराज श्रीगोवर्धन में, श्रीराधाकुण्ड में, श्रीमथुरापुरी में, श्रीवृन्दावन में, श्रीव्रजमण्डल में, भक्तमात्र में, तथा व्रजवासियों में, मेरी महती प्रीति बनी रहे (देखो, श्रीमनःशिक्षा, श्लोक १, पृष्ठ १७३) ॥१॥

यदि कहो कि, श्रीबदरिकाश्रम आदि धामों में बहुत से सिद्धों के समाज में निवास करो, उसी से सर्वार्थ सिद्धि हो जायगी, फिर व्रजवास की प्रार्थना क्यों करते हो ? इसके उत्तर में, व्रजवास की निष्ठा की पराकाष्ठा प्रदर्शित करते हुए कहते हैं कि—

श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह से युक्त होनेपर भी, दूसरे क्षेत्र में वैष्णवजन के द्वारा प्रेमपूर्वक रसास्वादन करता हुआ भी, मैं एकक्षण भी निवास नहीं करूँगा; किन्तु इस व्रजमण्डल में तो, व्रज के साधारण ग्रामीणजनोंकी श्रेणी के साथ भी, साधारण बातचीत करते हुए, मैं प्रत्येक जन्म में निवास करूँगा ।

ब्रह्मा एवं उद्धव तो व्रज में, तृणरूप से जन्म लेकर भी, निवास करने की प्रार्थना करते हैं, यथा—"तद् भूरिभाग्यमिह जन्म किमप्यटव्यां यद् गोकुलेऽपि कतमांघ्रिरजोऽभिषेकम्" भा० १०।१४।३४;

सदा राधाकृष्णोच्छलदतुल-खेलास्थलयुजं
व्रजं संत्यज्यैतद्युगविरहितोऽपि त्रुटिमपि ।
पुनर्द्वारावत्यां यदुपतिमपि प्रौढविभवैः
स्फुरन्तं तद्वाचापि च न हि चलामीक्षितुमपि ॥३॥

गतोन्मादै राधा स्फुरति हरिणा श्लिष्टहृदया
स्फुटं द्वारावत्यामिति यदि शृणोमि श्रुतितटे ।
तदाहं तत्रैवोद्धतमति पतामि व्रजपुरात्
समुड्डीय स्वान्ताधिकगति-खगेन्द्रादपि जवात् ॥४॥

"आसामहो चरणरेणुजुषामहं स्यां वृन्दावने किमपि गुल्मलतौषधीनाम्" भा० १०।४७।६१ (देखो, श्रीउपदेशामृतम् श्लोक ८, पृष्ठ १५६)।

श्रीरसखान भी इसी प्रकार की प्रार्थना करते हैं, यथा—

"मानुष हों तो वही रसखान बसों व्रज-गोकुल गाँव के ग्वारन ।
जो पशु हों तो कहा वश मेरो चरों नित नन्द की धेनु मझारन ।।
पाहन हों तो वही गिरि को जो धरचो कर छत्र पुरन्दर कारन ।
जो खग हों तो बसेरो करौं नित कालिन्दी कूल कदंब की डारन" ।।
"या लकुटी अरु कामरिया पर राज तिहूँपुर को तजि डारूँ ।
आठहु सिद्धि नवोंनिधि को सुख नन्द की गाय चराय बिसारूँ ।।
रसखान कबों इन नैनन सों व्रज के बन बाग तड़ाग निहारूँ ।
कोटिकहू कलधौत के धाम करील की कुञ्जन ऊपर वारूँ" ।।२।।

मैं, इस व्रज में श्रीराधा-कृष्ण की युगलजोड़ी के विरह से युक्त होकर भी, श्रीराधाकृष्ण के धारावाहिक लीलास्थलों से युक्त, इस व्रजमण्डल को छोड़कर "हे रघुनाथदास ! तुम इतने दुःखी क्यों हो रहे हो ? द्वारका में आ कर मेरे वैभव का दर्शन करो, एवं मेरी परिचर्या करो"—यदुपति श्रीकृष्ण की इस प्रकार की वाणी के द्वारा भी, द्वारका में विशाल वैभवों से स्फूर्ति पानेवाले, यदुपति श्रीकृष्ण को देखने के लिये, क्षणभर भी नहीं चलूंगा; यही मेरी निष्ठा है ।

श्रीप्रबोधानन्द सरस्वती की भी ऐसी ही निष्ठा है, यथा—
"मिलन्तु चिन्तामणि-कोटिकोटयः स्वयं हरिर्दृष्टिमुपैतु वा बहिः । तथापि वृन्दावनधूलिधूसरं वपुर्न मेऽन्यत्र कदापि यातु वै ।।" रे मन ! वृन्दाविपिन निहार । यद्यपि मिलहिं कोटि चिन्तामणि, तदपि न हाथ पसार ।। विपिनराज सीमा के बाहर, हरि हू को न निहार । जै श्रीभट्ट धूलि धूसर तनु, यह आशा उर धार ।।३।।

अनादिः सादिर्वा पटुरतिमृदुर्वा प्रतिपद-
प्रमीलत्-कारुण्यः प्रगुणकरुणाहीन इति वा ।
महावैकुण्ठेशाधिक इह नरो वा व्रजपते-
रयं सूनुर्गोष्ठे प्रतिजनि ममास्तां प्रभुवरः ॥५॥

अनादृत्योद्गीतामपि मुनिगणैर्वैणिकमुखैः
प्रवीणां गान्धर्वामपि च निगमैस्तत्प्रियतमाम् ।
य एकं गोविन्दं भजति कपटी दांभिकतया
तदभ्यर्णे शीर्णे क्षणमपि न यामि व्रतमिदम् ॥६॥

यदि कहो कि, श्रीकृष्ण के द्वारा स्वयं बुलानेपर भी, यदि तुम द्वारका में नहीं जाते हो, तो इस में तुम्हारा आलस्य ही प्रतीत होता है। ना, ना। मेरी प्राणेश्वरी स्वामिनी राधिका का संबंध वहाँपर नहीं है; अतः वहाँपर जाने की इच्छा नहीं है; किन्तु मेरी स्वामिनी राधिका का संबंध जहाँपर भी होगा, मैं वहींपर सहर्ष जाऊँगा, इस भाव को व्यक्त करते हुए कहते हैं कि—

"श्रीराधिका अतिशय अनुरागमय उन्माद के वशीभूत होकर, द्वारका में जा कर, श्रीकृष्ण के हृदय से मिलकर, स्पष्ट ही स्फूर्ति पा रही है," इस प्रकार के वृत्तान्त को यदि मैं अपने कर्णप्रान्त में श्रवण करूँ, तो मन से भी अधिक वेगवाले, गरुड से भी अधिक वेग से, व्रजपुर से उड़ कर, उद्धतबुद्धि से द्वारका में ही गिर पड़ूँगा ।।४।।

यदि कहो कि, श्रीकृष्ण तो गोपराज श्रीनन्द के पुत्र हैं, उनकी सेवा से क्या लाभ ? अतः परमेश्वर का भजन करो। इसके उत्तर में कहते हैं कि—

व्रजराज श्रीनन्दमहाराज के पुत्र, ये श्रीकृष्ण अनादि हों अथवा सादि हों, परम चतुर हों अथवा अचतुर हों, प्रतिक्षण उत्पन्न होनेवाली दया से युक्त हों अथवा अतिशय दयाहीन हों, एवं महावैकुण्ठाधिपति श्रीमन्नारायण से अधिक हों अथवा साधारणजन हों—इन बातों से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है; किन्तु इस व्रज में प्रत्येक जन्म में, व्रजराजकुमार वे श्रीकृष्ण ही, मेरे स्वामिश्रेष्ठ होते रहें, मेरी तो यही दृढ धारणा है; क्योंकि गुणों को देखकर जो प्रीति होती है, वह स्थायी प्रीति नहीं कहलाती है, कारण वह गुणों के अभाव में टूट भी जाती है ।।५।।

यदि कहो कि, तुम अनादि-सादि इत्यादि कहकर, तत्त्व-विचार में क्यों कुण्ठित हो रहे हो ? किसी तत्त्ववादी के निकट जा कर पूछो,

अजाण्डे राधेतिस्फुरदभिधया सिक्त-जनया-
ऽनया साकं कृष्णं भजति य इह प्रेम-नमितः ।
परं प्रक्षाल्यैतच्चरणकमले तज्जलमहो
मुदा पीत्वा शश्वच्छिरसि च वहामि प्रतिदिनम् ॥७॥

परित्यक्तः प्रेयोजन-समुदयैर्बाढमसुधी-
र्दुरन्धो नीरन्ध्रं कदनभरवार्धौ निपतितः ।
तृणं दन्तैर्दष्ट्वा चटुभिरभियाचेऽद्य कृपया
स्वयं श्रीगान्धर्वा स्वपदनलिनान्तं नयतु माम् ॥८॥

तुम्हारे इष्ट श्रीकृष्ण का ही सर्वावतारित्व सिद्ध हो जायगा। इसके उत्तर में कहते हैं कि—

जो कपटी-व्यक्ति, श्रीनारदादि मुनिगणों के द्वारा, एवं वेदों के द्वारा, विशेषरूप से गायी गई, परमप्रवीणा कृष्णप्रेयसी श्रीमती राधिका का अनादर करके, दंभपूर्वक केवल श्रीकृष्ण का भजन करता है; अतः नष्ट-भ्रष्ट प्राय उस कपटी-व्यक्ति के निकट, मैं एकक्षण भी नहीं जाऊँगा, यह मेरा दृढ व्रत है। अतः सम्मोहनतंत्र में कहा है—

गौरतेजो विना यस्तु श्यामतेजः समर्चयेत् ।
जपेद् वा ध्यायते वापि स भवेत् पातकी शिवे ! ॥६॥

इस ब्रह्माण्ड में जो व्यक्ति "राधा" इस नाम से स्फूर्ति पानेवाली, एवं भक्तजनों को स्नेह से सींचनेवाली, श्रीमती राधिका के सहित श्रीकृष्ण का भजन करता है, अहह ! मैं तो प्रेम से विनम्र होकर, केवल उसी व्यक्ति के दोनों चरणकमलों को धो कर, उस चरणोदक को हर्षपूर्वक पी कर, प्रतिदिन निरन्तर मस्तकपर धारण करता रहूँ, मेरी यही अभिलाषा है ॥७॥

अहह ! अव तो मैं, इस लोक से अन्तर्हित हुए, श्रीरूप-सनातन आदि अतिशय प्रियजन-समुदाय के द्वारा, असहायरूप से छोड़ दिया गया हूँ। यदि कहो कि, उनके अन्तर्धान के समय ही, अनशन आदि के द्वारा, अपने प्राण छोड़कर, उनके सङ्गी क्यों नहीं बन गये ? इसके उत्तर में कहते हैं कि—मैं, उस समय अपने प्राणधारण करने की चेष्टावाला होकर, दुर्बुद्धि बन गया था, एवं सदसद् विचार से शून्य होने के कारण, प्राय अन्धा हो गया था; अतः निरन्तर परमदुःखमय-समुद्र में गिर पड़ा हूँ। इसलिए आज तो, अपने दाँतों से तृण को दवा

व्रजोत्पन्नक्षीराशन–वसन–पात्रादिभिरहं
पदार्थैर्निर्वाह्य व्यवहृतिमदंभं सनियमः ।
वसामीशाकुण्डे गिरिकुलवरे चैव समये
मरिष्ये तु प्रेष्ठे सरसि खलु जीवादि–पुरतः ॥९॥

स्फुरल्लक्ष्मीलक्ष्मीव्रजविजयिलक्ष्मीभरलसद्-
वपुः–श्रीगान्धर्वा–स्मरनिकरदीव्यद्गिरिभृतोः ।
विधास्ये कुंजादौ विविध–वरिवस्याः सरभसं
रहः श्रीरूपाख्य–प्रियतम–जनस्यैव चरमः ॥१०॥

कृतं केनाप्येतन्निजनियमशंसि–स्तवमिमं
पठेद् यो विश्रब्धः प्रिययुगलरूपेऽर्पितमनाः ।
दृढं गोष्ठे हृष्टो वसति–वसतिं प्राप्य समये
मुदा राधाकृष्णौ भजति स हि तेनैव सहितः ॥११॥

इति श्रीमद्रघुनाथदासगोस्वामिविरचित–स्तवावल्यां
श्रीस्वनियमदशकं संपूर्णम् ।

—※—

कर, कातरवाणियों से प्रार्थना करता हूँ कि, श्रीमती राधिका ही, कृपापूर्वक मुझ को, अपने चरणकमलों के निकट स्वयं ही पहुँचा दे ॥८॥

किन्तु अब तो मैं, व्रज में उत्पन्न होनेवाले दुग्ध-दधि-मट्ठा-भोजन-वस्त्र एवं पात्रादि पदार्थों के द्वारा, व्यवहार का निर्वाह करके, दंभरहित होकर, नियम धारणपूर्वक श्रीराधाकुण्ड में, एवं श्रीगोवर्द्धन में ही निवास करता हूँ; एवं देहावसान के समय तो, अपने अतिशय प्यारे श्रीराधाकुण्ड के तटपर, श्रीजीव गोस्वामी प्रभृति महात्माओं के सामने ही प्राणों को छोडूंगा, यह निश्चित विचार है; क्योंकि महात्माओं के सामने प्राण छोड़ना परम श्रेयस्कर है ॥९॥

और मैं, श्रीरूप-नामक प्रियतम जन का अनुगामी होकर, निकुञ्ज आदि एकान्तस्थल में विराजमान, श्रीराधाकृष्ण की अनेक प्रकार की सेवाओं को हर्षपूर्वक किया करूँगा; क्योंकि श्रीमती राधिका तो प्रकाशमान कान्ति से युक्त, लक्ष्मीवृन्द को जीतनेवाली कान्ति की अधिकता से शोभायमान श्रीविग्रहवाली हैं, एवं श्रीकृष्ण कन्दर्पवृन्द से भी अधिक शोभायमान श्रीविग्रहवाले हैं ॥१०॥

श्रीकृष्णनाम्ने नमः।

श्रीकृष्णनामाष्टकम्।

निखिलश्रुतिमौलिरत्नमाला, –द्युतिनीराजितपादपङ्कजान्त!।
अपि मुक्तकुलैरुपास्यमानं, परितस्त्वां हरिनाम! संश्रयामि ॥१॥

जय नामधेय! मुनिवृन्दगेय!, जनरञ्जनाय परमक्षराकृते!।
त्वमनादरादपि मनागुदीरितं, निखिलोग्रतापपटलीं विलुम्पसि ॥२॥

अपने पारमार्थिक नियमों को बतलानेवाला यह स्तोत्र, श्रीरघुनाथदास–नामक किसी व्यक्तिविशेष ने बनाया है; अतः प्रियतम श्रीराधाकृष्ण के रूप में मन को लगानेवाला जो कोई व्यक्ति, श्रद्धा से युक्त होकर, इस स्तोत्र का पाठ करेगा; वह व्यक्ति, व्रज के भवन में अर्थात् श्रीनन्दभवन में निवास को प्राप्तकर, सेवा के समय अनुभव में लाये हुए श्रीरूप गोस्वामी के सहित, हर्ष से युक्त होकर, दृढतापूर्वक श्रीराधाकृष्ण का भजन (सेवन) करता है। इस 'स्वनियमदशक' में "शिखरिणी"-नामक छन्द हैं ॥११॥

—※—

नामाभासेनापि ते योगिमृग्या मुक्तिः स्यादित्याहुराम्नायवाचः।
तद्व्याख्यात्रे मह्यमीश प्रदद्याः स्वस्मिन् भक्तिं नाधिकं त्वत्प्रयाचे ॥

हे हरिनाम! मैं, आपका सर्वतोभाव से आश्रय ग्रहण करता हूँ, क्योंकि आपका महत्त्व विचित्र है। देखो, समस्त श्रुतियों की मुकुटमणिरूप उपनिषद्स्वरूप रत्नों की माला की चमचमाती हुई कान्ति के द्वारा, आपके चरणकमलों के अन्तभाग की, अर्थात् नखों की आरती उतारी जाती है, और मुक्तमुनिगण भी आपकी उपासना करते रहते हैं। तात्पर्य–सर्वोपनिषदों के पुरुषार्थरूप से प्रतिपाद्य एवं मुक्तमुनिकुलसेव्य आप ही हैं। श्रुतिस्मृति प्रमाणं यथा—"सर्वे वेदा यत् पदमामनन्ति", "एतत् साम गायन्नास्ते", "निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात्", "एतन्निर्विद्यमानानामिच्छतामकुतोभयम्। योगिनां नृप! निर्णीतं हरेर्नामानुकीर्तनम् ॥" इत्यादि। योगिनां—भगवद् - योगभाजां मुक्तानामित्यर्थः ॥१॥

यदि कहें कि, पापों से आक्रान्त तेरे जैसे को अपना आश्रय कैसे दे दूंगा? तब कहते हैं—

यदाभासोऽप्युद्यन्कवलितभवध्वान्तविभवो
दृशं तत्त्वान्धानामपि दिशति भक्तिप्रणयिनीम् ।
जनस्तस्योदात्तं जगति भगवन्नामतरणे !
कृती ते निर्वक्तुं क इह महिमानं प्रभवति ? ॥३॥

हे मुनिगणों के द्वारा गायन करने योग्य, एवं भक्तों के अनुरञ्जन के लिये ही, अक्षरों की आकृति धारण करनेवाले हरिनाम ! आपकी जय हो, अर्थात् आपका उत्कर्ष सदैव विद्यमान रहे, अथवा अपने उत्कर्ष को प्रकट करें। प्रभो ! वह उत्कर्ष यह है कि, आप तो अनादरपूर्वक, अर्थात् सांकेत्य परिहासादि के रूप से, किंचित् उच्चारित होनेपर भी, लिङ्गदेहपर्यन्त समस्त भयङ्कर पापसमूह को समूल नष्ट कर देते हैं। अतः मुझे भी अपनी शरणागति अवश्य प्रदान करेंगे, तथा अपने प्रभाव का स्मरण करके, मुझ को भी पवित्र कर दीजिये; क्योंकि मैं, आपके यश का प्रचारक हूँ, यह भावार्थ है। श्रुतिस्मृति प्रमाणं यथा—हृ. भ. वि. ११।५१२ तमु स्तोतारः पूर्व्यं यथाविद ऋतस्य गर्भं जनुषा पिपर्तन। आस्य जानन्तो नाम चिद्विवक्तन महस्ते विष्णो सुमतिं भजामहे ॥" भा० ६।२।१४ "सांकेत्यं पारिहास्यं वा स्तोभं हेलनमेव वा। वैकुण्ठनामग्रहणमशेषाघहरं विदुः।" हृ.भ.वि. ११।३९३ परिहासोपहासाद्यै-र्विष्णोर्नाम गृणन्ति ये। कृतार्थास्तेऽपि मनुजास्तेभ्योऽपीह नमो नमः॥" हृ. भ. वि. ११।३२४ प्रमादादपि संस्पृष्टो यथाऽनलकणोदहेत्। तथौष्ठपुटसंस्पृष्टं हरिनाम दहेदघम्॥" "सकल - निगमवल्ली - सत्फलं चित्स्वरूपम् इति स्मरणाच्च चिदात्मकाक्षराकारं नाम। यथा नामिनः कृष्णस्य चिद्रूपस्य हंसशूकरादिवपुश्चिद्रूपमेव तद्वत्" ॥२॥

नामाभास, केवल पापों को ही जलाकर निवृत्त नहीं होता; अपितु, अपने वाच्य श्रीकृष्ण आदि स्वरूप में भक्ति को भी प्रकाशित करता है, यह कहते हैं—

हे भगवन्नामरूप सूर्य ! इस संसार में, कौन प्रवीण पण्डितजन, आपकी असमोर्ध्व महिमा को, यथार्थरूपेण कहने में समर्थ है ? अर्थात् कोई भी नहीं। क्योंकि आपका आभासमात्र भी प्रकट होकर, संसार के अज्ञानरूप अन्धकार के वैभव को, कवलित (ग्रास) कर लेता है, और तत्त्वदृष्टि से विहीन जनों के लिये, श्रीहरिभक्ति देनेवाली दृष्टि प्रदान करता है ॥३॥

यद्ब्रह्मसाक्षात्कृतिनिष्ठयापि, विनाशमायाति विना न भोगैः ।
अपैति नाम ! स्फुरणेन तत्ते, प्रारब्धकर्मेति विरौति वेदः ।।४।।

अघदमनयशोदानन्दनौ ! नन्दसूनो !
कमलनयन-गोपीचन्द्र-वृन्दावनेन्द्राः ! ।
प्रणतकरुण-कृष्णावित्यनेकस्वरूपे
त्वयि मम रतिरुच्चैर्वर्धतां नामधेय ! ।।५।।

अब निष्ठापूर्वक जपा हुआ नाम—भोग के द्वारा ही, विनाश्य प्रारब्धकर्म को, भोग के विना ही, नष्ट कर देता है। इस भाव को कहतें हैं—

हे नाम भगवन् ! जो प्रारब्धकर्म, भोगों के बिना, ब्रह्म की अविच्छिन्न तैलधारावत् की गयी साक्षात्कार की निष्ठा के द्वारा भी, विनष्ट नहीं हो पाता; वह प्रारब्धकर्म, आपके स्फूर्तिमात्र से, अर्थात् भक्तों की जिह्वापर स्फुरण होनेमात्र से दूर भाग जाता है, इस बात को वेद उच्चस्वर से कहता है, अर्थात् ब्रह्मविद्या के साक्षात्कार से, संचित एवं क्रियमाण कर्मों का नाश तो हो जाता है; किन्तु फल देने के लिये, प्रवृत्त पुण्य-पापरूप प्रारब्धकर्म का नाश तो, भोग से ही होता है, ब्रह्मविद्या से नहीं। परन्तु वह प्रारब्धकर्म भी, नामोच्चारणमात्र से विनष्ट हो जाता है, इस में वेद प्रमाण है। यथा—"स एव सर्वेभ्यः पाप्मभ्य उदितः, उदेति ह वै सर्वपाप्मभ्यो य एवं वेद उदिति तस्य नाम" वह सब पापों से छूट गया, और वह जन ही, सब पापों से छुटकारा पाता है, जो भगवान् के 'उत्' ऐसे नाम को जानता है। "भगवन्नामोपासनया सर्वं पापापगमोक्तेः प्रारब्धस्याप्यगमः स्पष्टः। इत्थमभिप्रेत्य शाट्यायनिनः पठन्ति—"तस्य पुत्रादायमुपयन्ति सुहृदः साधुकृत्यां द्विषन्तः पापकृत्याम् इति कौषीतकिनश्च। तत्सुकृत-दुष्कृते विधुनुते, तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपयन्त्यप्रिया दुष्कृतम् इति।" एवमाह भगवान् सूत्रकारः—"अतोन्यापि ह्येकेषामुभयोः इति। अस्यार्थः एकेषां नामैकान्तिनां परमानुरागिणां विनैव भोगात् प्रारब्धयोः सुकृत-दुष्कृतयोरश्लेषो भवतीति स्वीकार्यम्। हि यस्मात्तस्य तावदेव चिरमित्यादिकायाः प्रारब्धं भोगेन नाश्यमिति वदन्त्याः श्रुतेरन्या तस्य पुत्रादायमित्यादिका तदर्थिका श्रुतिरस्ति इति" ।।४।।

अब भक्तों को विचित्र आनन्द देने के लिये, अनेक रूप से प्रकट होने के कारण, यह नाम-भगवान् विशेष दयालु है, इस भाव से कहते हैं—

वाच्यं वाचकमित्युदेति भवतो नाम ! स्वरूपद्वयं
पूर्वस्मात् परमेव हन्त करुणं तत्रापि जानीमहे ।
यस्तस्मिन् विहितापराधनिवहः प्राणी समन्ताद्भवे-
दास्येनेदमुपास्य सोऽपि हि सदानन्दाम्बुधौ मज्जति ॥६॥

सूदिताश्रितजनार्तिराशये, रम्यचिद्घन-सुखस्वरूपिणे ।
नाम ! गोकुलमहोत्सवाय ते, कृष्ण ! पूर्णवपुषे नमो नमः ॥७॥

"हे नाम भगवन् ! पूर्वोक्त रूप से अतर्क्य महिमावाले; आप में मेरी प्रीति दिन दूनी, रात चौगुनी बढ़ती रहे। आपके अनेक स्वरूप इस प्रकार के हैं—"हे अघदमन ! हे यशोदानन्दन ! हे नन्दसूनो ! हे कमलनयन ! हे गोपीचन्द्र ! हे वृन्दावनेन्द्र ! हे प्रणतकरुण ! हे कृष्ण ! इत्यादि" ॥५॥

आपकी अतिशय दयालुता प्रसिद्ध है; अतः आपका ही आश्रय लेता हूँ, इस भाव से कहते हैं—

हे नाम ! आपके वाच्य एवं वाचकरूप से दो स्वरूप, संसार में प्रकट होते हैं, अर्थात् 'वाच्य' शब्द से सच्चिदानन्द-विग्रहवाले परमात्मा लिये जाते हैं, और 'वाचक' शब्द से श्रीकृष्ण, गोविन्द इत्यादि वर्णसमूहरूप नाम कहलाते हैं। इन दोनों के मध्य में पहले वाच्य की अपेक्षा, दूसरे वाचक श्रीकृष्ण आदि नाम-स्वरूपवाले आपको हम अधिक दयालु जानते हैं; क्योंकि जो प्राणी, आपके वाच्य-स्वरूप के प्रति अनेक अपराध कर चुका है, वह भी, वाचक-स्वरूप आपकी जिह्वा के स्पर्शमात्र से, उपासना करके, सदैव आनन्दसमुद्र में गोता लगाता रहता है। अत्र विषये स्मृति प्रमाणं यथा—ह. भ. वि. ११।३७५ "मम नामानि लोकेस्मिन् श्रद्धया यस्तु कीर्तयेत् । तस्यापराधकोटीस्तु क्षमाम्येव न संशयः ॥ नामनामिनोरभेदस्तु— ह.भ.वि.११।५०३ नाम चिन्तामणिः कृष्णश्चैतन्यरसविग्रहः । पूर्णः शुद्धो नित्युमुक्तोऽभिन्नत्वानामनामिनोः, इत्यत्र प्रतिपादितः" ॥६॥

बत्तीस प्रकार के सेवापराध तो, नाम के द्वारा नष्ट हो सकते हैं, पर साधुनिन्दा आदि दश-नामापराध, किस से नष्ट होंगे ? इस के उत्तर में, वे भी नाम के द्वारा ही नष्ट होंगे, इस भाव से कहते हैं—

"हे आश्रितजनों के पीडासमूह को नष्ट करनेवाले, रमणीय सच्चिदानन्द स्वरूपवाले, गोकुल के महोत्सवस्वरूप, एवं व्यापक

नारदवीणोज्जीवन !, सुधोर्मि-निर्यास-माधुरीपूर ! ।
त्वं कृष्णनाम ! कामं, स्फुर मे रसने रसेन सदा ॥८॥

इति श्रीमद्रूपगोस्वामिविरचित-स्तवमालायां
श्रीकृष्णनामाष्टकं संपूर्णम् ।

—:*:—

स्वरूपवाले हे कृष्णनाम ! पूर्वोक्त गुणविशिष्ट आपके प्रति मेरा बारंवार नमस्कार है।" यहाँपर पीडासमूह से सभी अपराधों का ग्रहण है, अर्थात् नामापराधी की नामापराधरूप सब पीडाओं को नाम ही नष्ट करता है। अत्र विषये स्मृति प्रमाणं यथा—ह. भ. वि. ११।५२५-५२६ "जाते नामापराधे तु प्रमादेन कथंचन। सदा संकीर्तयन् नाम तदेक-शरणो भवेत् ॥ नामापराधयुक्तानां नामान्येव हरन्त्यघम् । अविश्रान्तप्रयुक्तानि तान्यैवार्थकराणि यत् ॥ अपराधविमुक्तो हि नाम्नि यत्नं समाचरेत्" इति ॥७॥

हे नारद की वीणा को सचेत करनेवाले, हे अमृतमय तरङ्गों के सार के समान मधुरता के समूह ! हे कृष्णनाम ! आप मेरी जिह्वापर स्वेच्छापूर्वक रसयुक्त होकर, सदैव स्फूर्ति पाते रहें। इस प्रकार की प्रार्थना श्रीमद्भागवत के पञ्चम स्कन्ध में भी है। नाम की कृपा के बिना, जिह्वा नाम लेने में समर्थ नहीं है, यही तात्पयार्थ है। मुख्यतया श्रीकृष्णनाम स्फुरणे प्रार्थना प्रमाणं यथा—ह.भ.वि.११।४९८ "नाम्नां मुख्यतमं नाम कृष्णाख्यं मे परंतप !" इति ॥८॥

श्रीरूपगोस्वामिविनिर्मितेऽस्मिन्, नामाष्टके श्रीवनमालिदासः ।
टीकामिमां व्यातनुते स्म भव्यां, भूनेत्रशून्याक्षिमिते हि वर्षे ॥

—:*:—

श्रीमते महामंत्राय नमः ।

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

'महामंत्र' के अनेक विस्तृत भाष्य—

श्रीहरिनामसंकीर्तन ही कलियुग का मुख्यधर्म है। उसके अतिरिक्त कलियुग के जीवों के लिये नित्यमङ्गल की प्राप्ति का कोई भी उपाय नहीं है। भगवान् का 'नाम' साक्षात् भगवत्स्वरूप ही है; क्योंकि स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ही जीवों का उद्धार करने के लिये, अपनी अहैतुकी कृपा से, 'नाम' रूप में अवतीर्ण हुए हैं; अतएव भाग्यशाली जन, श्रीहरिनाम के प्रचारक सद्गुरुजनों के द्वारा, श्रीहरिनाम की दीक्षा ले कर, उसीके संकीर्तन का आश्रय ले कर, कृतकृत्य हो जाते हैं; क्योंकि कलिकाल में श्रीहरिनामसंकीर्तन ही समस्त साधनों का शिरोमणि है, अतएव श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने भी, सदैव श्रीहरिनामसंकीर्तन करने का उपदेश दिया है—"कीर्तनीयः सदा हरिः।" कलिपावनावतारी श्रीचैतन्यमहाप्रभु की शिक्षा, अपना मङ्गल चाहनेवाले जीवमात्र के लिये आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य है।

षोडशनामात्मक 'महामंत्र' का लेख वेद-पुराण आदि अनेक शास्त्रों में विद्यमान है, अतः श्रीहरिनाम के रसिक अनेक विद्वान् महात्माओं ने, 'महामंत्र' की अनेक प्रकार की रसमयी व्याख्याएँ लिखी हैं, जो नामनिर्देशपूर्वक आगे लिखी जायँगी। अब तो कलियुग के सर्वसाधारण मानवमात्र के संकीर्तन करने योग्य, 'महामंत्र' का स्वरूप सप्रमाण निर्देश करते हैं—

ज्ञानामृतसार में कहा है कि—

"शिष्यस्योदङ्मुखस्थस्य हरेर्नामानि षोडश ।
संश्राव्यैव ततो दद्यान्मंत्रं त्रैलोक्यमङ्गलम् ॥"

उत्तर की ओर मुख करके बैठे हुए, शिष्य के दक्षिण कान में, श्रीहरि के 'हरे कृष्ण' इत्यादि, सोलह नामों को सुनाकर ही, गुरुदेव को शिष्य के लिये, त्रैलोक्य-मङ्गलकारक 'गोपालमंत्र' की दीक्षा देनी चाहिये।

ब्रह्मयामल-नामक ग्रन्थ में शिवजी के वाक्य में, 'महामंत्र' का स्वरूप इस प्रकार लिखा है—

"हरिं विना नास्ति किञ्चित् पापनिस्तारकं कलौ ।
तस्माल्लोकोद्धारणार्थं हरिनाम प्रकाशयेत् ।
सर्वत्र मुच्यते लोको महापापात् कलौ युगे ॥
हरेकृष्णपदद्वन्द्वं कृष्णेति च पदद्वयम् ।
तथा हरेपदद्वन्द्वं हरेराम इति द्वयम् ॥
तदन्ते च महादेवि ! राम राम द्वयं वदेत् ।
हरे हरे ततो ब्रूयाद् हरिनाम समुद्धरेत् ॥
महामंत्रं च कृष्णस्य सर्वपापप्रणाशकमिति ॥"

हे महादेवि ! देखो, कलियुग में श्रीहरिनाम के बिना कोई भी साधन, सरलता से पापनिस्तारक नहीं है, अतः सर्वसाधारण लोगों का उद्धार करने के लिये, श्रीहरिनाम को ही प्रकाशित कर देना चाहिये । कलियुग में 'महामंत्र' का संकीर्तन करने से सभीजन, सभी जगह विमुक्त हो सकते हैं । 'महामंत्र' में पहले 'हरे कृष्ण' 'हरे कृष्ण' ये दो पद बोलने चाहियें । उसके बाद 'कृष्ण' 'कृष्ण' ये दो पद, तथा 'हरे' 'हरे' ये दो पद बोलने चाहियें । उसके बाद 'हरे राम' 'हरे राम' ये दो पद बोलकर, तथा 'राम' 'राम' ये दो पद बोलकर, 'हरे' 'हरे' इन दो शब्दों को बोलकर, सर्वपापविनाशक श्रीकृष्ण के 'महामंत्र' का समुद्धरण करना चाहिये ।

राधातंत्र में भक्त बोला कि—

"शृणु मातर्महामाये ! विश्वबीजस्वरूपिणि ! ।
हरिनाम्नो महामाये ! क्रमं वद सुरेश्वरि ! ॥"

हे विश्ववीजस्वरूपिणि ! सुरेश्वरि ! महामाये ! मातः ! मेरी प्रार्थना सुनिये, और श्रीहरिनाम के 'महामंत्र' का क्रम मेरे प्रति कह दीजिये ।

उसके बाद देवी बोली कि—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
द्वात्रिंशदक्षराण्येव कलौ नामानि सर्वदम् ।
एतन्मंत्रं सुतश्रेष्ठ ! प्रथमं शृणुयान्नरः ॥"

हे पुत्रश्रेष्ठ! सर्वसिद्धिप्रद 'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' इत्यादि प्रकारवाले, बत्तीस अक्षर ही, कलियुग में 'महामंत्र' के नाम से कहे जाते हैं, अतः अपना कल्याण चाहनेवाले मनुष्य को, श्रीगुरुदेव के द्वारा, पहले उन्हीं का श्रवण करना चाहिये।

उसी राधातंत्र में त्रिपुरादेवी का वाक्य भी, इस प्रकार का है कि—

"हरिनाम्ना विना पुत्र! दीक्षा च विफला भवेत्।
गुरुदेवमुखाच्छ्रुत्वा हरिनाम पराक्षरम्॥
ब्राह्मण-क्षत्र-विट्-शूद्राः श्रुत्वा नाम पराक्षरम्।
दीक्षां कुर्युः सुतश्रेष्ठ! महाविद्यासु सुन्दर!॥"

हे पुत्रश्रेष्ठ! तुम महाविद्याओं के ज्ञान में मनोहर हो! देखो, 'हरे कृष्ण' इत्यादि हरिनामात्मक 'महामंत्र' के बिना, श्रीगोपालमंत्र आदि की दीक्षा, निष्फल हो जाती है; अतः ब्राह्मण-क्षत्रिय आदि चारों वर्णों के व्यक्तियों को, श्रीगुरुदेव के मुख से 'महामंत्र' को सुनकर ही, श्रीगोपालमंत्र आदि मंत्रों की दीक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

पद्मपुराण में भी कहा है कि—

"द्वात्रिंशदक्षरं मंत्रं नामषोडशकान्वितम्।
प्रजपन् वैष्णवो नित्यं राधाकृष्णस्थलं लभेत्॥"

सोलह नामों से युक्त बत्तीस अक्षरवाले 'हरे कृष्ण' इत्यादि 'महामंत्र को, नित्य जाप करनेवाला वैष्णव, श्रीराधाकृष्ण के गोलोकधाम को प्राप्त कर लेता है।

देखो ब्रह्माण्डपुराण में राधाहृदयखण्ड में, वेदव्यासजी के प्रति, रोमहर्षण का प्रश्नवाक्य इस प्रकार है—

"यत्त्वया कीर्तितं नाथ! हरिनामेति संज्ञितम्।
मंत्रं ब्रह्मपदं सिद्धिकरं तद् वद नो विभो!॥"

हे विभो! हे स्वामिन्! आपने श्रीहरिनामक ब्रह्मस्वरूप एवं सिद्धिप्रद जो मंत्र कहा है, उसका स्वरूप हमारे प्रति कह दीजिये।

इसके उत्तर में वेदव्यासजी बोले कि—

"ग्रहणाद् यस्य मंत्रस्य देही ब्रह्ममयो भवेत्।
सद्यः पूतः सुरापोऽपि सर्वसिद्धियुतो भवेत्।
तदहं तेऽभिधास्यामि महाभागवतो ह्यसि॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
इति षोडशकं नाम्नां त्रिकालकल्मषापहम् ।
नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु विद्यते ॥"

देखो, पुत्र ! जिस मंत्र के ग्रहण से, देहधारी प्राणी ब्रह्ममय हो जाता है, एवं मद्य पान करनेवाला व्यक्ति भी, तत्काल पवित्र होकर, सब सिद्धियों से युक्त हो जाता है, उस मंत्र को मैं तुम्हारे प्रति अवश्य कहूँगा; क्योंकि तुम विशिष्ट भगवद्भक्त हो । देखो, 'हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नामोंवाला 'महामंत्र', त्रैकालिक--पापों को विनष्ट करनेवाला है । चारों वेदों में इस 'महामंत्र' से परे, संसार से पार होने का, कोई भी श्रेष्ठ उपाय नहीं बताया है ।

अनन्तसंहिता में भी कहा है कि—

"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
षोडशैतानि नामानि द्वात्रिंशद्वर्णकानि हि ।
कलौ युगे महामंत्रः सम्मतो जीवतारणे ॥
उत्सृज्यैतन्महामंत्रं ये त्वन्यत् कल्पितं पदम् ।
महानामेति गायन्ति ते शास्त्रगुरुलङ्घिनः ॥"

'हरे कृष्ण हरे कृष्ण' इत्यादि बत्तीस वर्णोंवाले सोलह नाम ही, कलियुग में जीवों के उद्धार के लिये, सर्वलोकशास्त्रसम्मत 'महामंत्र' के नाम से विख्यात हैं । अतः जो व्यक्ति, इस 'महामंत्र' को छोड़कर, अपने द्वारा कल्पित, किसी दूसरे पद को, महामंत्र के नाम से गाते हैं; वे व्यक्ति, शास्त्र एवं गुरुजनों का उल्लङ्घन करनेवाले हैं । यदि कोई पूछे कि 'हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नामोंवाले मंत्र को ही 'महामंत्र' क्यों कहते हैं ? इसका उत्तर यह है कि, भगवान् श्रीकृष्ण के समस्त नामों के बीच में 'राम'-नाम के समान मुक्तिदाता एवं 'कृष्ण'-नाम के समान प्रेमदाता दूसरा नाम नहीं है, इस मंत्र में दोनों नामों का समावेश है, एवं श्रीहरिनाम को छोड़कर दूसरे नमः, ॐ, क्लीँ, स्वाहा आदि दूसरे शब्दों का समावेश भी इसमें नहीं है, इसी कारण इसको 'महामंत्र' कहते हैं ।

सनत्कुमारसंहिता भी कहती है कि—

"हरे कृष्णौ द्विरावृत्तौ कृष्ण तादृक् तथा हरे।
हरे राम तथा राम तथा तादृग् हरे पुनः॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

देखो यजुर्वेदीय-कलिसन्तरणोपनिषद् में भी 'महामंत्र' का माहात्म्य स्वरूप-निर्देशपूर्वक इस प्रकार है—

"हरिः ॐ॥ द्वापरान्ते नारदो ब्रह्माणं जगाम, कथं भगवन्! गां पर्यटन् कलिं सन्तरेयमिति। स होवाच ब्रह्मा साधु पृष्टोऽस्मि सर्वश्रुतिरहस्यं गोप्यं तच्छ्रणु येन कलिसंसारं तरिष्यसि। भगवत आदिपुरुषस्य नारायणस्य नामोच्चारणमात्रेण निर्धूतकलिर्भवति। नारदः पुनः पप्रच्छ। तन्नाम किमिति? स होवाच हिरण्यगर्भः—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥" इति षोडशकं नाम्नां कलिकल्मषनाशनम्। नातः परतरोपायः सर्ववेदेषु दृश्यते॥ इति षोडशकलावृतस्य जीवस्य आवरणविनाशनम्। ततः प्रकाशते परंब्रह्म मेघापाये रविरश्मिमण्डलीवेति। पुनर्नारदः पप्रच्छ। भगवन्! कोऽस्य विधिरिति? स होवाच नास्य विधिरिति। सर्वदा शुचिरशुचिर्वा पठन् ब्रह्मणः सलोकतां समीपतां सरूपतां सायुज्यतामेति।

द्वापर के अन्त में नारदजी ब्रह्मा के निकट गये, और प्रणाम करके बोले कि, भगवन्! भूतलपर घूमता हुआ मैं, कलिकाल को किस प्रकार पार कर सकूँगा? ब्रह्मा बोले—हे पुत्र! बहुत अच्छा प्रश्न किया। सभी वेदों का गोपनीय जो रहस्य है उसको सुनो, जिसके द्वारा कलिरूप-संसार से अनायास तर जाओगे। देखो, आदिपुरुष भगवान् श्रीमन्नारायण (कृष्ण) के नामोच्चारणमात्र से ही, कलियुग विशेष कंपित हो जाता है। नारदजी ने पुनः पूछा कि, वह नाम कौनसा है? उसका स्वरूप क्या है? इसके उत्तर में ब्रह्मा बोले कि—"हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे। हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥ इस प्रकार सोलह नामोंवाला यह जो 'महामंत्र' है, वह कलि के कल्मषों को विनष्ट करनेवाला है। सभी वेदों में इससे श्रेष्ठ और कोई भी उपाय नहीं दीखता है। यह मंत्र षोडशकलाओं से आवृत अर्थात् पञ्चभूत एवं ग्यारह इन्द्रियों के आवरण से युक्त, जीव के आवरण को विनष्ट करनेवाला है। उसके बाद तो जीव के सामने,

परब्रह्म उस प्रकार से प्रकाशित हो जाता है कि, वादलों के विनष्ट होनेपर, जिस प्रकार सूर्य की किरणों का समुदाय। नारद ने पुनः पूछा कि, भगवन्! इस 'महामंत्र' के जाप की विधि कौनसी है? ब्रह्मा बोले—इसकी कोई विधि नहीं है। सर्वदा पवित्र अथवा अपवित्र अवस्थावाला व्यक्ति, इस 'महामंत्र' का स्पष्ट उच्चारण करता हुआ, ब्रह्म की सलोकता-समीपता-सरूपता एवं सायुज्यता को आनुषंगिकरूप से प्राप्त हो जाता है। केवल इतना ही नहीं; किन्तु मुख्यरूप से तो पञ्चमपुरुषार्थं श्रीकृष्णप्रेमपर्यन्त प्राप्त कर लेता है (चै० च० आ० ७।८३-८६; म० २५।१४७, १६२; अ० ३।१७७; अ० ७।१०४; अ० २०।११)।

श्रीभक्तिचन्द्रिका के सप्तम पटल में कहा है कि—

अथ मंत्रवरं वक्ष्ये द्वात्रिंशदक्षराऽन्वितम्।
सर्वपापप्रशमनं सर्वदुर्वासनाऽनलम्॥
चतुर्वर्गप्रदं सौम्यं भक्तिदं प्रेमपूर्वकम्।
दुर्बुद्धिहरणं शुद्धसत्त्वबुद्धिप्रदायकम्॥
सर्वाराध्यं सर्वसेव्यं सर्वेषां कामपूरकम्।
सर्वाधिकारसंयुक्तं सर्वलोकैकबान्धवम्॥
सर्वाकर्षणसंयुक्तं दुष्टव्याधिविनाशनम्।
दीक्षाविधिविहीनं च कालाकालविवर्जितम्।
वाङ्मात्रेणार्चितं बाह्यपूजाविध्यनपेक्षकम्।
जिह्वास्पर्शनमात्रेण सर्वेषां फलदायकम्।
देशकालाऽनियमितं सर्ववादिसुसम्मतम्॥१॥

यह 'महामंत्र' बत्तीस अक्षरों से युक्त है; समस्त पापों का नाशक है, सभी प्रकार की दुर्वासनाओं को जलाने के लिये अग्निस्वरूप है, धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष को देनेवाला है, सुन्दर स्वरूपवाला है, प्रेमलक्षणाभक्ति को देनेवाला है, दुर्बुद्धि को हरनेवाला है, शुद्धसत्त्वरूप भगवद्वृत्तिवाली बुद्धि को देनेवाला है, सभी का आराधनीय सेवनीय है; सभी की कामनाओं को पूरी करनेवाला है, सभी के अधिकार से युक्त है, अर्थात् 'महामंत्र' के संकीर्तन में सभी का अधिकार है; यह मंत्र, सभी का मुख्यबान्धव है, सभी के आकर्षण की शक्ति से युक्त है, दुष्टव्याधियों का विनाशक है, दीक्षा विधि आदि की अपेक्षा से रहित है, समय के प्रतिबन्ध से रहित है, वाणीमात्र से पूजित

करने योग्य है, वाह्य पूजा विधि की अपेक्षा नहीं करता है, सभी को केवल जिह्वा के स्पर्शमात्र से फलदायक है, देश काल आदि के नियम से विमुक्त है; अतः सर्ववादीजन के द्वारा सुसम्मत है ।।१।।

और देखो, अथर्ववेद की पिप्पलादशाखा में कहा है कि—
स्वनाम-मूलमंत्रेण सर्वं ह्लादयति विभुः स एव मूलमंत्रं जपति हरिरिति कृष्ण इति राम इति ।

सर्वावतारी प्रभु श्रीकृष्ण अपने नामरूप-मूलमंत्र के द्वारा, सब को आह्लादित करते रहते हैं, एवं वे ही श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु के रूप से, 'हरे कृष्ण' इत्यादि स्वरूपवाले मूलमंत्र को स्पष्ट उच्चारण करते रहते हैं । उस विषय में यह माहात्म्य उत्पन्न होता है कि—

मंत्रो गुह्यः परमो भक्तिवेद्यः, नामान्यष्टावष्ट च शोभनानि ।
तानि नित्यं ये जपन्ति धीरा,—स्ते वै मायामतितरन्ति नान्ये ॥
परमं मंत्रं परमरहस्यं नित्यमावर्तयति ।

'महामंत्र' परमगुह्य है एवं भक्ति के द्वारा ही जाना जा सकता है । उसमें 'हरे कृष्ण' इत्यादि एवं 'हरे राम' इत्यादि परम मनोहर आठ आठ नाम हैं, अतः जो बुद्धिमान् व्यक्ति उन नामों का नित्य जाप करते हैं; वे व्यक्ति ही, माया से तर जाते हैं, दूसरे व्यक्ति नहीं । इस प्रकार के 'महामंत्र' की एवं परमरहस्य की नित्य आवृत्ति करते रहते हैं ।

ब्रह्माण्डपुराण उत्तरखण्ड के छठवें अध्याय में, वृषभानुराजा ने क्रतुमुनि से प्रार्थना की कि, हे भगवन् ! यदि मेरे ऊपर आपका अनुग्रह है, तो मेरे लिये हरिनामों का दान कीजिये । उस समय महात्मा क्रतुमुनि ने 'हरे कृष्ण' इत्यादि सोलह नामों का दान कर दिया । अतः बुद्धिमान् व्यक्ति को, इसी 'महामंत्र' का संकीर्तन, सदा सर्वदा करते रहना चाहिये "नामसंकीर्तनं तस्मात् सदा कार्यं विपश्चिता ।"

श्रीहरिनामसंकीर्तन के प्रवर्तक श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने भी, भक्तों के प्रति 'महामंत्र' के संकीर्तन का ही, उपदेश दिया है। श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य ने भी कहा है कि—

विषण्णचित्तान् कलिघोरभीतान्, संवीक्ष्य गौरो हरिनाममंत्रम् ।
स्वयं ददौ भक्तजनान् समादिशत्, संकीर्तयध्वं ननु नृत्यवाद्यैः ॥

श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने कलिकाल से विशेष भयभीत, एवं दु:खीचित्तवाले जीवों को देखकर, कृपापूर्वक स्वयं 'महामंत्र' का दान कर दिया, एवं भक्तजनों के प्रति आदेश दिया कि, हे भक्तो ! तुम सब मिलकर, नृत्य-वाद्य आदि के सहित, संकीर्तन करते रहो।

श्रीवासुदेवसार्वभौम भट्टाचार्य ने और भी कहा है कि—

"हरेर्नामप्रसादेन निस्तरेत् पातकी जनः।
उपदेष्टा स्वयं कृष्णचैतन्यो जगदीश्वरः॥
कृष्णचैतन्यदेवेन हरिनाम प्रकाशितम्।
येन केनापि तत्प्राप्तं धन्योऽसौ लोकपावनः॥"

श्रीहरिनाम की कृपा से, पापीजन का भी उद्धार हो सकता है; क्योंकि श्रीहरिनाम के उपदेशक जगदीश्वर स्वयं श्रीकृष्णचैतन्यमहाप्रभु हैं। अत: श्रीकृष्णचैतन्यदेव के द्वारा प्रकाशित हरिनाम, जिस किसी व्यक्ति को प्राप्त हो गया, वही व्यक्ति धन्य है, एवं लोगों को पवित्र करनेवाला है।

श्रीचैतन्यचरितमहाकाव्य ११ सर्ग, ५४ श्लोक में महाकवि श्रीकर्णपूर ने कहा है कि—

"ततः श्रीगौराङ्गः समवददतीव प्रमुदितो
हरेकृष्णेत्युच्चैर्वद मुहुरिति श्रीमयतनुः।
ततोऽसौ तत् प्रोच्य प्रतिवलितरोमाञ्चललितो
रुदंस्तत्तत् कर्मारभत बहुदुःखैर्विदलितः॥"

श्रीचैतन्यमहाप्रभु के संन्यासग्रहण के समय, नापित हाथ में उस्तुरा ले कर भी शोकाकुल होकर, जब श्रीचैतन्यमहाप्रभु के कुञ्चित केशों का मुण्डन नहीं करता है, तब श्रीराधाभाव-विभावित-विग्रहवाले श्रीचैतन्यमहाप्रभु अत्यन्त प्रसन्न होकर बोले कि, हे नापित ! तुम उच्चस्वर से बारंवार 'हरे कृष्ण' इत्यादि 'महामंत्र' को ही बोलते रहो। उसके वाद उस 'महामंत्र' को बोलकर, उस नापित ने उत्पन्न हुए रोमाञ्च से मनोहर होकर, एवं महान् दु:ख से विदीर्ण होकर भी, रोते-रोते मुण्डन करना आरंभ कर दिया।

श्रीगोविन्दद्दास के कड़चा में भी लिखा है कि—

"बाहु प्रसारिया प्रभु ब्राह्मणे तुलिला।
तार घरे भक्तिभरे गान आरंभिला॥

ब्राह्मणेर घर येन हैल वृन्दावन।
हरिनाम शुनिबारे आइसे सर्वजन॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥"

श्रीचैतन्यमङ्गल ग्रन्थ में भी देखा जाता है कि—

" 'हरे कृष्ण' नाम प्रभु बले निरन्तर'।
प्रसन्न श्रीमुखे हरे कृष्ण कृष्ण बलि।
विजय हइला गौरचन्द्र कुतूहली॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण बलि' प्रेमसुखे।
प्रत्यक्ष हैला आसि' अद्वैत-सम्मुखे॥ "

श्रीचैतन्यभागवत में भी देखो—

"जय जय 'हरे कृष्ण'-मंत्रेर प्रकाश।
जय जय निजभक्तिग्रहण-विलास॥"

म० ६।११७

"प्रभु बले,—"कृष्णभक्ति हउक सबार।
कृष्णनाम-गुण बइ ना बलिह आर॥
आपने सबारे प्रभु करे उपदेशे।
"कृष्णनाम महामंत्र शुनह हरिषे॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥
प्रभु बले, "कहिलाङ एइ महामंत्र।
इहा जप' गिया सबे करिया निर्बन्ध॥
इहा हैते सर्वसिद्धि हइबे सबार।
सर्वक्षण बल इथे विधि नाहि आर॥"

म० २३।७४-७८

"कि शयने कि भोजने किबा जागरणे।
अहर्निश चिन्त कृष्ण बलह वदने॥"

म० २८।२८

"सर्वदा श्रीमुखे 'हरे कृष्ण हरे हरे'।
बलिते आनन्दधारा निरवधि झरे॥"

अ० १।१९९

"कलियुग-धर्म हय नामसंकीर्तन ।
चारियुगे चारि-धर्म जीवेर कारण ॥
चै० भा० आ० १४।१३७

अतएव कलियुगे नामयज्ञ सार ।
आर कोन धर्म कैले नाहि हय पार ॥
रात्रिदिन नाम लय खाइते शुइते ।
ताँहार महिमा वेदे नाहि पारे दिते ॥
शुन मिश्र, कलियुगे नाहि तप यज्ञ ।
येइ जन भजे कृष्ण, ताँर महाभाग्य ॥
अतएव गृहे तुमि कृष्ण भज गिया ।
कुटिनाटि परिहरि एकान्त हइया ॥
साध्य-साधनतत्त्व ये किछु सकल ।
हरिनामसंकीर्तने मिलिबे सकल ॥
आ० १४।१३९-१४३

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
एइ श्लोक नाम बलि' लय महामंत्र ।
षोल-नाम बत्रिश-अक्षर एइ तंत्र ॥
साधिते साधिते यबे प्रेमांकुर हबे ।
साध्य - साधनतत्त्व जानिबा से तबे ॥
आ० १४।१४५-१४७

श्रीचैतन्यचरितामृत में भी देखो—

"कृष्णनाम—महामंत्रेर एइ त' स्वभाव ।
येइ जपे, तार कृष्णे उपजये भाव ॥
कृष्णविषयक प्रेमा – परम पुरुषार्थ ।
यार आगे तृणतुल्य चारि पुरुषार्थ ॥
पञ्चम पुरुषार्थ – प्रेमानन्दामृतसिन्धु ।
ब्रह्मादि आनन्द यार नहे एक बिन्दु ॥
कृष्णनामेर फल—'प्रेमा', सर्वशास्त्रे कय ।"
आ० ७।८३–८६

"कलिकाले नामरूपे कृष्ण-अवतार ।
नाम हैते हय सर्वजगत्-निस्तार ॥"
आ० १७।२२

"कलिकाले धर्म – कृष्णनामसंकीर्तन ॥
संकीर्तनयज्ञे ताँरे करे आराधन।
सेइ त' सुमेधा आर – कलिहतजन ॥"
चै० च० म० ११।९८-९९

"निरन्तर कर कृष्णनामसंकीर्तन।
हेलाय 'मुक्ति' पाबे, पाबे प्रेमधन ॥"
म० २५।१४७

"एक 'नामाभासे' तोमार पाप-दोष याबे।
आर 'नाम' लइते कृष्णचरण पाइबे ॥"
म० २५।१९२

"नामेर फले कृष्णपदे प्रेम उपजय ॥"
अ० ३।१७७
अ० ७।१०४

"कलिकालेर धर्म – कृष्णनामसंकीर्तन।"
अ० ७।११

"हर्षे प्रभु कहेन,—शुन स्वरूप-रामराय।
नामसंकीर्तन – कलौ परम उपाय ॥
संकीर्तनयज्ञे कलौ कृष्ण - आराधन।
सेइ त' सुमेधा पाय कृष्णेर चरण ॥"
अ० २०।८-९

"नामसंकीर्तने हय सर्वानर्थ-नाश।
सर्वशुभोदय कृष्णे प्रेमेर उल्लास ॥"
अ० २०।११

"खाइते शुइते यथा तथा नाम लय।
काल, देश, नियम नाहि, सर्वसिद्धि हय ॥"
अ० २०।१८

"एइमत हञा येइ कृष्णनाम लय।
श्रीकृष्णचरणे ताँर प्रेम उपजय ॥"
अ० २०।२६

"एकदा कृष्णविरहाद् ध्यायन्ती प्रियसङ्गमम्।
मनोवाष्पनिरासार्थं जल्पतीदं मुहुर्मुहुः ॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

यानि नामानि विरहे जजाप वार्षभानवी ।
तान्येव तद्भावयुक्तो गौरचन्द्रो जजाप ह ।।
श्रीचैतन्यमुखोद्गीर्णा हरे कृष्णेति वर्णकाः ।
मज्जयन्तो जगत् प्रेम्णि विजयन्तां तदाह्वयाः ।।"

एक समय, श्रीकृष्ण के विरह से व्याकुल हुई श्रीराधिका, अपने प्यारे श्यामसुन्दर के मिलन का ध्यान करती हुई, अपने मानसिक-क्लेश को दूर करने के लिये, "हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।।" इस 'महामंत्र' को ही जपती रहती हैं । श्रीकृष्ण के विरह में श्रीमती राधिका ने, श्रीकृष्ण के जिन नामों का जाप किया था, श्रीराधाभाव-विभावित श्रीचैतन्यमहाप्रभु ने भी, उन्हीं नामों का जाप किया था । अतः श्रीचैतन्यमहाप्रभु कें श्रीमुख से निकले हुए 'हरे कृष्ण' इत्यादि श्रीकृष्ण के ही, सोलह नामोंवाले वत्तीस वर्ण, संसारभर को प्रभु के प्रेम में निमग्न करते हुए, सर्वोपरि विराजमान रहें, अर्थात् उनकी जय हो ।

महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

ब्रह्माण्डपुराण, उत्तरखण्ड, ६।५५
चै० भा० आ० १४।१४५
चै० भा० म० २३।७६

'हरिः' 'कृष्णः' 'राम' इलि नामत्रयात्मको 'महामंत्रः' । तस्मिन् संबोधनात्मकानि त्रीणि नामानि सन्ति । तत्र त्रयाणाम्—

माधुर्यमयी व्याख्या—

विज्ञाप्य भगवत्तत्त्वं चिद्घनानन्दविग्रहम् ।
हरत्यविद्यां तत्कार्यमतो हरिरिति स्मृतः ॥
आनन्दैकसुखः श्रीमान् श्यामः कमललोचनः ।
गोकुलानन्दनो नन्दनन्दनः कृष्ण ईर्यते ॥
वैदग्धीसारसर्वस्वं मूर्तलीलाधिदैवतम् ।
श्रीराधां रमयन् नित्यं राम इत्यभिधीयते ॥

हरि, कृष्ण, राम—इन तीन नामों से युक्त 'महामंत्र' है । उसमें संबोधनात्मक तीन नाम हैं । उन तीनों नामों की माधुर्यमयी व्याख्या इस प्रकार है—

सच्चिदानन्द-विग्रहवाले भगवान् अपने तत्त्व को भलीभाँति समझा कर, जीव की अविद्या को एवं उसके कार्य अज्ञान को हरते रहते हैं; अतः हरिनाम से स्मरण किये जाते हैं । एकमात्र आनन्दरसविग्रह, गोकुल के आनन्दप्रद कमललोचन, नन्दनन्दन श्रीश्यामसुन्दर ही, 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं । लीला के मूर्तिमान्विग्रह या अधिष्ठातृदेव रसिकचूडामणि चतुरशिरोमणि श्रीकृष्ण, श्रीमती राधिका को निरन्तर रमण कराते रहते हैं, अर्थात् आनन्दित करते रहते हैं । वे इसी कारण से 'राम'-नाम से कहे जाते हैं ।

ऐश्वर्यमयी व्याख्या—

हरति त्रिविधं तापं जन्मकोटिशतोद्भवम् ।
पापं च स्मरतां यस्मात्तस्माद्धरिरिति स्मृतः ॥
कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः ।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥
रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि ।
इति रामपदेनासौ परब्रह्माऽभिधीयते ॥

श्रीकृष्ण भगवान् अपना स्मरण करनेवाले भक्तों के, करोड़ों जन्मों में उत्पन्न होनेवाले त्रिविध-ताप, एवं कायिक-वाचिक-मानसिकरूप तीनों प्रकार के पापों को हर लेते हैं, अतएव वे 'हरि'-नाम से कहे जाते हैं । 'कृष्'-धातु आकर्षक सत्तावाचक है, और 'ण'-शब्द निर्वृति अर्थात् आनन्दवाचक है । इन दोनों की एकतामय आनन्द-स्वरूप आकर्षक परब्रह्म ही, 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं । नित्य आनन्द-स्वरूप एवं चिन्मय स्वरूपवाले जिन श्रीकृष्ण में, योगीलोग रमण करते हैं, अर्थात् क्रीडा करते हैं, तात्पर्य—उनके ध्यान से आनन्द प्राप्त करते हैं, अतः परब्रह्मस्वरूप वे श्रीकृष्ण ही, 'राम'-नाम से कहे जाते हैं ।

युगलस्मरणमयी व्याख्या—

मनो हरति कृष्णस्य कृष्णाह्लादस्वरूपिणी ।
ततो हरा श्रीराधैव तस्याः संबोधनं हरे ॥

अपगृह्य त्रपां धर्मं धैर्यं मानं व्रजस्त्रियः।
वेणुना कर्षति गृहात् तेन कृष्णोऽभिधीयते॥
रमयत्यनिशं रूप-लावण्यैर्व्रजयोषिताम्।
मनः पंचेन्द्रियाणीह रामस्तस्मात् प्रकीर्तितः॥

श्रीकृष्ण की आह्लादस्वरूपिणी (ह्लादिनीशक्ति) श्रीराधा, श्रीकृष्ण के चित्त को हर लेती हैं, अतः श्रीराधा ही 'हरा'-नाम से कही जाती हैं। 'हरा'-शब्द का संबोधन में 'हरे' ऐसा रूप बनता है। व्रजराजकुमार व्रजाङ्गनाओं की लज्जा-धर्म-धैर्य एवं मान को हर कर, अपनी वंशी के द्वारा, उनको अपने-अपने घर से, अपनी ओर आकर्षित कर लेते हैं; अतएव वे 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं। वे ही श्रीकृष्ण अपने रूप-लावण्य आदि से, व्रजाङ्गनाओं के मन एवं इन्द्रियों को, निरन्तर आनन्दित करते रहते हैं, इसी कारण वे 'राम'-नाम से कहे जाते हैं।

श्रीजीवगोस्वामिकृता 'महामंत्र'-व्याख्या—

सर्वचेतोहरः कृष्णस्तस्य चित्तं हरत्यसौ।
वैदग्धीसारविस्तारैरन्तो राधा हरा मता॥१॥

कर्षति स्वीयलावण्यमुरलीकलनिःस्वनैः।
श्रीराधां मोहनगुणाऽलंकृतः कृष्ण ईर्यते॥२॥

श्रूयते नीयते रासे हरिणा हरिणेक्षणा।
एकाकिनी रहःकुंजे हरेयं तेन कथ्यते॥३॥

अङ्गश्यामलिमस्तोमैः श्यामलीकतकाञ्चनः।
रमते राधया सार्धमतः कृष्णो निगद्यते॥४॥

कृत्वारण्ये सरः श्रेष्ठं कान्तयानुमतस्तया।
आकृष्य सर्वतीर्थानि तज्ज्ञानात् कृष्ण ईर्यते॥५॥

कृष्यते राधया प्रेम्णा यमुनातटकाननम्।
लीलया ललितश्चापि धीरैः कृष्ण उदाहृतः॥६॥

हतवान् गोकुले तिष्ठन्नरिष्टं पुष्टपुङ्गवम्।
श्रीहरिस्तं रसादुच्चै रायतीति हरा मता॥७॥

ह्यस्फुटं रायति प्रीतिभरेण हरिचेष्टितम्।
गायतीति मता धीरैर्हरा रसविचक्षणैः॥८॥

रसावेशपरित्रस्तां जहार मुरलीं हरेः।
हरेति कीर्तिता देवी विपिने केलिलंपटा ॥९॥

गोवर्धनदरीकुंजे परिरंभविचक्षणः।
श्रीराधां रमयामास रामस्तेन मतो हरिः ॥१०॥

हन्ति दुःखानि भक्तानां राति सौख्यानि चान्वहम्।
हरा देवी निगदिता महाकारुण्यशालिनी ॥११॥

रमते भजतो चेतः परमानन्दवारिधौ।
अत्रेति कथितो रामः श्यामसुन्दरविग्रहः ॥१२॥

रमयत्यच्युतं प्रेम्णा निकुञ्जवनमन्दिरे।
रामा निगदिता राधा रामो युक्तस्तया पुनः ॥१३॥

रोदनैर्गोकुले दावानलमाशयति ह्यसौ।
विशोषयति तेनोक्तो रामो भक्तसुखावहः ॥१४॥

निहन्तुमसुरान् यातो मथुरापुरमित्यसौ।
तदागमग्रहःकामो यस्याः सासौ हरेति च ॥१५॥

आगत्य दुःखहर्ता यो सर्वेषां व्रजवासिनाम्।
श्रीराधाहारिचरितो हरिः श्रीनन्दनन्दनः ॥१६॥

श्रीकृष्णचन्द्र अपने लोकोत्तर सौन्दर्य से, सभी के चित्त को हरनेवाले हैं; किन्तु श्रीमती राधिका अपने श्रेष्ठ चातुर्य के विस्तार से, श्रीकृष्ण के चित्त को भी हर लेती हैं, अतः श्रीराधिका 'हरा' मानी जाती हैं। 'हरा'-शब्द का संबोधन के एकवचन में 'हरे'-रूप बनता है ॥१॥

भुवनमोहनगुणों से अलंकृत श्रीहरि, अपने लावण्य (सौन्दर्य) एवं मुरली की मधुरध्वनियों के द्वारा, श्रीराधिका को अपनी ओर आकर्षित करते रहते हैं, अतः 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं ॥२॥

महापुरुषों के मुख से सुना जाता है कि, मृगलोचना श्रीमती राधिका, श्रीकृष्ण के द्वारा रासमण्डल में विद्यमान एकान्तनिकुञ्ज में, अकेली ही अपहरण की जाती हैं; अतः राधिका ही 'हरा'-नाम से कही जाती हैं, जिसका संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ॥३॥

अपने श्रीअङ्ग की श्यामकान्ति के समुदाय के द्वारा, जो सुवर्ण को भी श्यामवर्ण का बना देते हैं, अतः वे ही श्रीराधारमण श्यामसुन्दर 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं ॥४॥

अपनी कान्ता श्रीराधिका की इच्छा के अनुसार श्रीहरि ने, गोवर्धन के निकट व्रज के वन में, श्यामकुण्ड-नामक श्रेष्ठ सरोवर को बनाकर, उसमें सब तीर्थों को आर्कषित किया था, इस वात को जानकर ही, विज्ञजन उनको 'कृष्ण'-नाम से कहते हैं ॥५॥

अपनी भुवनमोहिनीलीला के द्वारा, सर्वमोहन श्रीहरि भी, श्रीराधिका के द्वारा, अपने लोकोत्तर प्रेम से, यमुनातटवर्ती श्रीवृन्दावन में आर्कषित किये जाते हैं, इसीलिए बुद्धिमान् जन उनको 'कृष्ण'-नाम से कहते हैं ॥६॥

व्रज में निवास करते समय श्रीकृष्ण ने, वृषरूपधारी वलिष्ठ अरिष्टासुर का प्राणपर्यन्त अपहरण किया था। उस समय श्रीराधिका ने उनको आनन्दपूर्वक उच्चस्वर से 'हरि-हरि' कहकर पुकारा था, अतः राधा 'हरा'-नाम से मानी जाती हैं। 'हरा'-शब्द का संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ॥७॥

श्रीराधिका, श्रीकृष्ण की लीलाओं को कभी अस्पष्टस्वर में गाती हैं, तो कभी प्रीति की अधिकता से उच्चस्वर से गाती हैं, अतएव रसविवेचन में चतुरपंडितों के द्वारा, वे 'हरा'-नाम से मानी जाती हैं, जिसका संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ॥८॥

वृन्दावन में क्रीडापरायण श्रीमती राधिका ने, रस के आवेश में श्रीकृष्ण के हाथ से गिरी हुई मुरली का अपहरण किया था, इसीलिए राधिकादेवी 'हरा'-नाम से कही जाती हैं, जिसके संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ॥९॥

आलिङ्गन करने में चतुरशिरोमणि श्रीकृष्ण ने, गोवर्धन की गुफारूप-निकुञ्ज में, श्रीराधिका के साथ रमण अर्थात् क्रीडा की थी, अतः वे 'राम'-नाम से माने जाते हैं ॥१०॥

महाकारुण्यशालिनी देवी राधिका, भक्तों के समस्त दुःखों को हर लेती हैं, एवं प्रतिदिन सुखों का प्रदान करती हैं, अतएव 'हरा'-नाम से कही जाती हैं, जिसका संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ॥११॥

भजन करनेवाले भक्तों का मन, परमानन्दसिन्धु-श्रीकृष्ण में रमण करता है, इस कारण से श्यामसुन्दर विग्रहवाले श्रीकृष्ण ही, यहाँपर 'राम'-नाम से कहे जाते हैं ॥१२॥

श्रीमती राधिका निकुञ्जवन में श्रीहरि को प्रेमपूर्वक आनन्द प्रदान करती हैं, अतएव "रमयति—आनन्दयति" इस व्यूत्पत्ति के अनुसार उन्हीं का नाम 'रामा' है। रामा अर्थात् श्रीराधा के साथ सम्मिलित होने के कारण, श्रीकृष्ण ही 'राम'-नाम से कहे जाते हैं ।।१३।।

व्रजवासियों के रोदन से परिपूर्ण व्रज में, भक्तजन-सुखदायी श्रीकृष्ण ने, दावानल का पान किया था एवं उसको सूखा दिया था; अतः भक्तों को रमण करानेवाले वे श्रीकृष्ण ही, 'राम'-नाम से कहे जाते हैं ।।१४।।

श्रीकृष्ण, कंस आदि असुरों को मारने के लिये मथुरापुरी में चले गये थे, पश्चात् श्रीराधिका से एकान्त में मिलने की इच्छा से पुनः व्रज में आ गये; अतः मथुरा आदि धाम से, व्रज की ओर श्रीकृष्ण का अपहरण करने के कारण, श्रीराधिका ही 'हरा'-नाम से कही जाती हैं, जिसका संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ।।१५।।

जिन्होंने मथुरा एवं द्वारका से आ कर, समस्त व्रजवासियों का दुःख हर लिया था; अतः श्रीमती राधिका के मन को हरनेवाली लीलाओं से युक्त, श्रीनन्दनन्दन ही 'हरि'-नाम से कहे जाते हैं। 'हरि'-शब्द का संबोधन में 'हरे' ऐसा रूप बनता है ।।१६।।

इति श्रीजीवगोस्वामिविरचिता 'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता ।

श्रीगोपालगुरुगोस्वामिकृता 'महामंत्र'-व्याख्या—

अज्ञानतत्कार्यविनाशहेतोः, सुखात्मनः श्यामकिशोरमूर्तेः ।
श्रीराधिकाया रमणस्य पुंसः, स्मरन्ति नित्यं महतां महान्तः ॥१॥

विलोक्य तस्मिन् रसिकं कृतज्ञं, जितेन्द्रियं शान्तमनन्यचित्तम् ।
कृतार्थयन्ते कृपया सुशिष्यं, प्रदाय नामत्रययुक्तपद्यम् ॥२॥

हरिर्हरति पापानि दुष्टचित्तैरपि स्मृतः ।
अनिच्छयापि संस्पृष्टो दहत्येव हि पावकः ॥३॥

विज्ञाप्य भगवत्तत्त्वं चिद्घनानन्दविग्रहम् ।
हरत्यविद्यां तत्कार्यमतो हरिरिति स्मृतः ॥४॥

अथवा सर्वेषां स्थावरजङ्गमादीनां तापत्रयं हरतीति हरिः। यद्वा दिव्यसद्‌गुणश्रवणकथनद्वारा सर्वेषां विश्वादीनां मनो हरतीति। यद्वा स्वमाधुर्येण कोटिकन्दर्पलावण्येन सर्वेषामवतारादीनां मनो हरतीति हरिः। हरिशब्दस्य संबोधने 'हे हरे' ॥५॥

रासादिप्रेमसौख्यार्थे हरेर्हरति या मनः।
हरा सा गीयते सद्भिर्वृषभानुसुता परा ॥६॥

स्वरूपप्रेमवात्सल्यैर्हरेर्हरति या मनः।
हरा सा कथ्यते सद्भिः श्रीराधा वृषभानुजा ॥७॥

हरति श्रीकृष्णमनः कृष्णाह्लादस्वरूपिणी।
अतो हरेत्यनेनैव श्रीराधा परिगीयते।
इत्यादिना श्रीराधावाचक-हरा-शब्दस्य संबोधने हरे॥८॥

कृषिर्भूवाचकः शब्दो णश्च निर्वृतिवाचकः।
तयोरैक्यं परं ब्रह्म कृष्ण इत्यभिधीयते ॥९॥

ईश्वरः परमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् ॥१०॥

आनन्दैकसुखः श्रीमान् श्यामः कमललोचनः।
गोकुलानन्दनो नन्दनन्दनः कृष्ण ईर्यते।
कृष्णशब्दस्य संबोधने कृष्ण ॥११॥

राशब्दोच्चारणाद्देवि! बहिर्निर्यान्ति पातकाः।
पुनः प्रवेशकाले तु मकारश्च कपाटवत् ॥१२॥

रमन्ते योगिनोऽनन्ते सत्यानन्दे चिदात्मनि।
इति रामपदेनादः परब्रह्माऽभिधीयते ॥१३॥

वैदग्धीसारसर्वस्वं मूर्तलीलाधिदैवतम्।
श्रीराधां रमयन् नित्यं राम इत्यभिधीयते ॥१४॥

श्रीराधायाश्चित्तमाकृष्य रमते क्रीडतीति रामः।
रामशब्दस्य संबोधने राम ॥

तथा हि क्रमदीपिकायां चन्द्रं प्रति श्रीकृष्णः—

मम नामशतेनैव राधानाम सदुत्तमम्।
यः स्मरेत्तु सदा राधां न जाने तस्य किं फलम् ॥१५॥

अज्ञान और उसके द्वारा उत्पन्न संसाररूप-व्याधि को विनष्ट करनेवाले, आनन्दस्वरूप श्यामकिशोरमूर्ति श्रीराधारमण को, महाभागवतगण नित्य स्मरण करते हैं ।।१।।

वे ही महाभागवतगण अपने योग्य-शिष्य को, उन्हीं श्रीराधारमण में अनुरागी रसिक देखकर, एवं उस शिष्य को कृतज्ञ-जितेन्द्रिय-शान्त तथा अनन्यचित्तवाला समझ कर, कृपा करके 'हरे कृष्ण' इत्यादि तीन नामों से युक्त पद को, अर्थात् 'महामंत्र' को दे कर, कृतार्थ कर देते हैं ।।२।।

बिना इच्छा के स्पर्श किया हुआ अग्नि भी, जिस प्रकार जला ही देता है, उसी प्रकार दुष्टचित्तवाले मनुष्यों के द्वारा, किसी भी प्रकार से स्मरण किये हुए प्रभु, समस्त पापों को हर लेते हैं; अतः उनका नाम 'हरि' है ।।३।।

अथवा सच्चिदानन्दविग्रह-स्वरूप भगवान् के तत्त्व को समझा कर, अविद्या को एवं उसके कार्य अज्ञान को हर लेते हैं; अतः वे ही प्रभु 'हरि'-नाम से स्मरण किये जाते हैं ।।४।।

अथवा स्थावर-जङ्गम आदि सभी प्राणियों के तीनों प्रकार के तापों को हर लेते हैं, इसी कारण 'हरि' कहाते हैं, अथवा अपने अप्राकृत सद्गुणों के श्रवण-कीर्तन के द्वारा, सभी संसारी प्राणियों के मन को हर लेते हैं; अतएव उनका नाम 'हरि' है, अथवा करोड़ों कामदेवों से भी अधिक, अपने स्वाभाविक सौन्दर्य माधुर्य के द्वारा, सब अवतारों के मन को हर लेते हैं; अतः व्रजराजकुमार वे श्रीकृष्ण ही 'हरि'-नाम से कहे जाते हैं। 'हरि'-शब्द के संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ।।५।।

अथवा रास आदि के प्रेममय सुख को संपादन करने के लिये, जो अपने स्वरूप-गुण-प्रेम-वात्सल्य आदि के द्वारा, श्रीकृष्ण के मन को भी हर लेती हैं, अतः श्रीकृष्ण की ह्लादिनीशक्ति वृषभानुनन्दिनी वे श्रीराधा ही, सज्जनों के द्वारा 'हरा'-नाम से कही जाती हैं, एवं गायी जाती हैं। इस प्रकार राधा-वाचक 'हरा'-शब्द का संबोधन में 'हरे'-रूप बनता है ।।६-८।।

'कृष्'-धातु आकर्षक, सत्तावाचक और 'ण'-शब्द निर्वृति अर्थात् आनन्दवाचक है। इन दोनों की एकतामय आनन्दस्वरूप सर्वाकर्षक परब्रह्म ही, 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं ।।९।।

स्वयं अनादि तथा सब के आदि, और सब कारणों के कारण, सच्चिदानन्द-विग्रहवाले परमेश्वर गोविन्द ही, 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं ।।१०।।

एकमात्र आनन्दरसविग्रह एवं गोकुल को आनन्द देनेवाले, कमललोचन नन्दनन्दन श्रीमान् श्यामसुन्दर ही, 'कृष्ण'-नाम से कहे जाते हैं । 'कृष्ण'-शब्द के संबोधन में 'कृष्ण' ऐसा रूप बनता है ।।११।।

शंकरजी पार्वती के प्रति बोले कि, हे देवि ! 'राम'-शब्द के पहले अक्षर 'रा'-शब्द के उच्चारण से, समस्त पाप शरीर से बाहर निकल जाते हैं, पुनः प्रवेश करने के समय तो 'म'-कार, मुख के ऊपर किवाड़ की तरह लग जाता है, अतः पाप पुनः प्रवेश नहीं कर पाते ।।१२।।

योगिजन चिन्मय-अनन्त-सत्य और आनन्दस्वरूप जिस परतत्त्व में रमण करते हैं, वह परतत्त्व परंब्रह्म ही 'राम'-नाम से कहा जाता है ।।१३।।

रसमयी लीला के मूर्तिमान् अधिष्ठातृदेव चतुरशिरोमणि रसिकशेखर श्रीकृष्ण, श्रीमती राधिका को नित्य रमण कराते रहते हैं, अतः वे ही 'राम'-नाम से कहे जाते हैं ।।१४।।

अथवा श्रीराधिका के चित्त को, अपनी ओर आकर्षित करके, उनके साथ रमण करते हैं अर्थात् क्रीडा करते हैं, अतः वे श्रीकृष्ण ही, 'राम'-नाम से कहे जाते हैं । 'राम'-शब्द के संबोधन में 'राम' ऐसा रूप बनता है । देखो, 'क्रमदीपिका' में चन्द्रमा के प्रति श्रीकृष्ण ने कहा है कि, "मेरे सैंकड़ों नामों की अपेक्षा 'राधा'-नाम श्रेष्ठ है । जो व्यक्ति, सदा सर्वदा श्रीराधा का स्मरण-कीर्तन करता है, उसको क्या फल मिलता है ? इस को मैं भी नहीं जानता" ।।१५।।

हरे—कृष्णस्य मनो हरतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे । राधिका श्रीकृष्ण के मन को हर लेती हैं, अतः वे ही 'हरा'-नाम से कही जाती हैं । उसके संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है ।

कृष्ण—राधाया मनः कर्षतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण । जो श्रीराधा के मन को आकर्षित करते हैं, वे हैं श्रीकृष्ण । 'कृष्ण'-शब्द के संबोधन में 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता हैं ।

हरे—कृष्णस्य लोकलज्जाधैर्यादि सर्वं हरतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीराधिका, श्रीकृष्ण के लोकलज्जा-धैर्य आदि सब को हर लेती हैं। इस कारण वे 'हरा' कहलाती हैं। 'हरा'-शब्द का संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—राधाया लोकलज्जाधैर्यादि सर्वं कर्षतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। श्रीकृष्ण, राधिका के लोकलज्जा-धैर्यादि सभी को आकर्षित कर लेते हैं। इसी कारण वे 'कृष्ण' कहाते हैं। 'कृष्ण'-शब्द का संबोधन में 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—यत्र यत्र राधा तिष्ठति गच्छति वा तत्र तत्र सा पश्यति कृष्णो मां स्पृशति, बलात् कञ्चुकादिकं सर्वं कर्षति हरतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। श्रीराधिका जहाँ-जहाँ बैठती हैं अथवा जाती हैं, वे वहीं-वहींपर देखती हैं कि, श्रीकृष्ण मेरा स्पर्श कर रहे हैं, तथा वलपूर्वक मेरी कंचुकी आदि सब को खींच रहे हैं। इसी कारण वे 'कृष्ण' कहे जाते हैं। 'कृष्ण'-शब्द के संबोधन में 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।

कृष्ण—पुनर्हर्षतां गमयति वनं कर्षतीति कृष्णः, तस्य संबोधने हे कृष्ण। वे श्रीराधा को हर्षित करते हैं, एवं वंशी बजाकर वृन्दावन की ओर आकर्षित करते हैं। इसीलिए 'कृष्ण' कहलाते हैं। 'कृष्ण'-शब्द के संबोधन में 'हे कृष्ण' ऐसा रूप बनता है।

हरे—यत्र कृष्णो गच्छति तिष्ठति वा तत्र तत्र पश्यति राधा ममाग्रे पार्श्वे सर्वत्र तिष्ठति विहरति इति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीकृष्ण जिस स्थान में जाते हैं या बैठते हैं, वे उस उस स्थानपर देखते हैं कि, श्रीराधा मेरे सामने मेरी बगल में बैठी हैं, एवं विहार करती रहती हैं। अतएव वे 'हरा' कहलाती हैं। 'हरा'-शब्द के संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

हरे—पुनस्तं कृष्णं हरति स्वस्थानमभिसारयतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। वे ही पुनः श्रीकृष्ण को हरती हैं, अर्थात् अपने संकेत-स्थान की ओर श्रीकृष्ण का अभिसार कराती हैं; अतः श्रीराधा ही 'हरा'-नाम से कही जाती हैं। जिसके संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है।

हरे—कृष्णं वनं हरति वनमागमयतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे। श्रीकृष्ण को वन की ओर हरती हैं, अर्थात् वृन्दावन

की ओर लाती हैं; अतः श्रीराधा ही 'हरा' कहाती हैं । जिसके संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है ।

राम—रमयति तां नर्मनिरीक्षणादिनेति रामः, तस्य संबोधने हे राम । श्रीकृष्ण अपने हास-परिहास, दर्शन आदि से श्रीराधिका को रमित कराते हैं, अर्थात् आनन्दित करते हैं; अतः उनका ही नाम 'राम' है । जिसके संबोधन में 'हे राम' ऐसा रूप बनता है ।

हरे—तात्कालिकं धैर्यावलंबनादिकं कृष्णस्य हरतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे । श्रीकृष्ण के तात्कालिक धैर्य-अवलंबन आदि को हरण कर लेती हैं, अतः श्रीराधा ही 'हरा' हैं । जिसके संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है ।

राम—चुम्बन-स्तनकर्षणालिङ्गनादिभिः रमते इति रामः, तस्य संबोधने हे राम । श्रीकृष्ण चुम्बन-स्तन आकर्षण एवं आलिङ्गन आदि के द्वारा, श्रीराधिका के साथ रमण अर्थात् क्रीडा करते हैं, अतः वे ही 'राम'-नाम से कहे जाते हैं । जिसके संबोधन में 'हे राम' ऐसा रूप बनता है ।

राम—पुनस्तां पुरुषोचितां कृत्वा रमयतीति रामः, तस्य संबोधने हे राम । श्रीकृष्ण, राधिका को पुरुषाकार बनाकर उसके साथ पुनः रमण करते हैं, अतएव वे 'राम'-नाम से कहे जाते हैं । जिसके संबोधन में 'हे राम' ऐसा रूप बनता है ।

राम—पुनस्तत्र रमते इति रामः, तस्य संबोधने हे राम । वहाँपर पुनः पुनः उसी प्रकार रमण करते हैं, इसी कारण वे 'राम'-नाम से कहे जाते हैं । जिसके संबोधन में 'हे राम' ऐसा रूप बनता है ।

हरे—पुना रासान्ते कृष्णस्य मनो हृत्वा गच्छतीति हरा राधा, तस्याः संबोधने हे हरे । रासलीला के अन्त में, पुनः श्रीकृष्ण के मन को हर कर चली जाती हैं, अतः राधा ही 'हरा'-नाम से कही जाती हैं । जिसके संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है ।

हरे—राधाया मनो हृत्वा गच्छतीति हरिः कृष्णः, तस्य संबोधने हे हरे । श्रीकृष्ण भी रासलीला के अन्त में, राधिका के मन को हर कर चले जाते हैं, अतः वे ही 'हरि' कहाते हैं । जिसके संबोधन में 'हे हरे' ऐसा रूप बनता है ।

इति श्रीगोपालगुरुगोस्वामिविरचिता 'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता ।

श्रीरघुनाथदासगोस्वामिकृता 'महामंत्र'-व्याख्या--

एकदा कृष्णविरहाद् ध्यायन्ती प्रियसङ्गमम् ।
मनोवाष्पनिरासार्थं जल्पतीदं मुहुर्मुहुः ॥

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

हे हरे--स्वनामश्रवणमात्रेण स्वमाधुर्येण च मच्चेतो हरसि ।

तत्र हेतुः हे कृष्ण इति । कृष् शब्दस्य सर्वार्थः णश्च आनन्दस्वरूप इति स्वार्थे णः । सच्चिदानन्दस्वरूपक इति स्वीयेन सार्वदिकपरमानन्देन सर्वाधिकपरमानन्देन वा प्रलोभ्य इति भावः ।

ततश्च हे हरे—वंशीवादनेन मम धैर्यलज्जागुरुभयादिकमपि हरसि ।

ततश्च हे कृष्ण—स्वाङ्गसौरभेण मां स्वगृहेभ्यो वृन्दावनं प्रत्याकर्षसि ।

ततश्च हे कृष्ण—वनं प्रविष्टाया मे कंचुकीं सहसैवागत्य कर्षसि ।

ततश्च हे कृष्ण—स्वाङ्गलावण्येन सर्वाधिकानन्देन च मां प्रलोभ्य मत् कुचौ कर्षसि (नखैराकर्षसि) ।

ततश्च हे हरे--स्वबाहुनिबद्धां मां पुष्पशय्यां प्रति हरसि ।

ततश्च हे हरे—तत्र निवेशिताया मे अन्तरीयमपि बलाद् हरसि ।

हे हरे--अन्तरीयवसनहरणमिषेणात्मविरहपीडां सर्वामेव हरसि ।

ततश्च हे राम--स्वच्छन्दं मयि रमसे ।

ततश्च हे हरे—यदवशिष्टं मे किञ्चिद् वाम्यमासीत्तदपि हरसि ।

ततश्च हे राम—मां रमयसि स्वस्मिन् पुरुषायितामपि करोषि ।

ततश्च हे राम—रमणीयचूडामणे ! तव नवीनवक्त्रमाधुर्यमपि निःशंकं तदात्मानं तव रामणीयकं मन्नयनाभ्यां द्वाभ्यामेवाऽऽस्वाद्यते इति भावः ।

ततश्च हे राम—रमणं रमः, रमस्य भावः रामः; हे राम ! तदा त्वं साक्षाद् रमणाधिदेवभावरूपोऽप्राकृतकन्दर्प एव भवसि, अथवा न केवलं रमणरूपेणापि रमणकर्तृ रमणप्रयोजकः किन्तु तद्भावरूपा रतिमूर्त्तिरिव त्वं भवसीति भावः ।

ततश्च हे हरे—मच्चेतनामृगीमपि हरसि, मामानन्दमूर्च्छितां करोषीति भावः ।

यतो हे हरे—सिंहस्वरूप ! तदापि त्वं रतिकर्मणि सिंह इव महाप्रागल्भ्यं प्रकटयसीति भावः ।

एवंभूतेन त्वया प्रेयसा वियुक्ताऽहं क्षणमपि कल्पकोटिमिव यापयितुं कथं प्रभवामीति स्वयमेव विचारय इति नाम षोडशकस्याऽभिप्रायः । ततश्च नामभिश्चुम्बकैरिव कृष्णः कृष्णया सहैवाऽऽकृष्टो मिलितपरमानन्द एव । तस्याः स्वसखीनां तत्परिवारवर्गस्य तद्भावसाधकानामर्वाचीनानामपि श्रीराधाकृष्णौ मानसं संपूरयतः ।

इति श्रीरघुनाथदासगोस्वामिविरचिता 'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता ।

श्रीसच्चिदानन्दभक्तिविनोदठक्कुरकृता 'महामंत्र'-व्याख्या—

हे हरे—मच्चित्तं हृत्वा भवबन्धनान्मोचय । हे हरे ! मेरे चित्त को हर कर, मुझे भवबन्धन से विमुक्त कर दीजिये ।

हे कृष्ण—मच्चित्तमाकर्ष । हे कृष्ण ! मेरे चञ्चल चित्त को अपनी ओर आकर्षित कर लीजिये ।

हे हरे—स्वमाधुर्येण मच्चित्तं हर । हे हरे ! अपने स्वाभाविक माधुर्य से मेरा चित्त हर लीजिये ।

हे कृष्ण—स्वभक्तद्वारा भजनज्ञानदानेन मच्चित्तं शोधय । हे कृष्ण ! भक्तितत्त्ववेत्ता अपने भक्त के द्वारा अपने भजन का ज्ञान दे कर, मेरे चित्त को शुद्ध बनाइये ।

हे कृष्ण—नामरूपगुणलीलादिषु मन्निष्ठां कुरु । हे कृष्ण ! अपने नाम-रूप-गुण-लीला आदिकों में मेरी निष्ठा बना दीजिये ।

हे कृष्ण—रुचिर्भवतु मे । हे कृष्ण ! आपके नाम-रूप-गुण-लीला आदि में मेरी रुचि उत्पन्न हो जाय ।

हे हरे—निजसेवायोग्यं मां कुरु । हे हरे ! मुझे आप अपनी सेवा के योग्य बना लीजिये ।

हे हरे—**स्वसेवामादेशय**। हे हरे ! मुझे सेवा के योग्य बनाकर अपनी सेवा का आदेश दीजिये।

हे हरे—**स्वप्रेष्ठेन सह स्वाभीष्टलीलां श्रावय**। हे हरे ! अपने प्रियतम भक्तों के सहित मुझे अपनी अभीष्ट लीला का श्रवण कराइये।

हे राम—**प्रेष्ठया सह स्वाभीष्टलीलां मां श्रावय**। हे राम ! अर्थात् हे राधिकारमण ! आप अपनी प्रियतमा श्रीराधिका के सहित, गोलोक में श्रीराधिका की सभा में, मधुकण्ठ एवं स्निग्धकण्ठ के द्वारा, मुझे अपनी अभीष्ट लीला का श्रवण कराइये।

हे हरे—**स्वप्रेष्ठेन सह स्वाभीष्टलीलां मां दर्शय**। हे हरे ! अर्थात् हे श्रीमती राधिके ! आप अपने प्रियतम श्रीकृष्ण के साथ, अपनी अभीष्ट लीलाओं का दर्शन कराइये।

हे राम—**प्रेष्ठया सह स्वाभीष्टलीलां मां दर्शय**। हे राम ! अर्थात् हे राधिकारमण ! आप अपनी प्रियतमा के साथ, अपनी अभीष्ट लीलाओं का दर्शन कराइये।

हे राम—**नामरूपगुणलीलास्मरणादिषु मां योजय**। हे राम ! अर्थात् अन्तरङ्गभक्तों के साथ क्रीडा करनेवाले कृष्ण ! आप मुझे कृपया अपने नाम-रूप-गुण-लीला एवं स्मरण आदि में लगा लीजिये।

हे राम—**तत्र मां निजसेवायोग्यं कुरु**। हे राम ! अर्थात् अन्तरङ्ग-भक्तों को सुख देनेवाले श्याम ! आप मुझे अपने नाम-रूप-गुण-लीला-स्मरण आदि में, समयानुसार अपनी सेवा के योग्य बना लीजिये।

हे हरे—**मां स्वाङ्गीकृत्य रमस्व**। हे हरे ! मुझ दीन-हीन-मलिनजन को अंगीकार करके, मेरे साथ भी यथायोग्य क्रीडा कीजिये।

हे हरे—**मया सह रमस्व**। हे हरे ! मेरे साथ विशुद्ध क्रीडा कीजिये। आपके श्रीचरणों में मेरी यही विनम्र प्रार्थना है।

इति श्रीसच्चिदानन्दभक्तिविनोदठक्कुरविरचितश्रीचैतन्यशिक्षामृतादुद्धृता

'महामंत्र'-व्याख्या समाप्ता।

नर हरिनाम अन्तरे अछु भावह
हबे भवसागरे पार।
धर रे श्रवणे नर हरिनाम सादरे
चिन्तामणि उह सार॥

यदि कृत-पापि आदरे कभु मंत्रक-
राज श्रवणे करे पान।
श्रीकृष्णचैतन्य बले हय तछु दुर्गम
पाप ताप सह त्राण॥

करह गौर - गुरु - वैष्णव - आश्रय
लह नर हरिनाम-हार।
संसारे नाम लइ सुकृति हइया तरे
आपामर दुराचार॥

इथे कृत-विषय-तृष्ण पहुँ-नाम-हारा
यो धारणे श्रम-भार।
कुतृष्ण जगदानन्द कृत-कल्मष
कुमति रहल कारागार॥

(पदकल्पतरु। गौरपदतरङ्गिणी तरङ्ग १, उच्छ्वास २, पद ५९, पृष्ठ १५)

१ ३

नर ह रि-नाम अन्त रे अछु भावह ह वे भवसाग रे पार ।
धर रे श्रवणे नर ह रि-नाम साद रे चिन्तामणि उ ह सार ॥
यदि कृ त-पापि आद रे कभु मंत्रक- रा ज श्रवणे क रे पान ।
श्रीकृ ष्ण चैतन्य बले ह य तछु दुर्ग म पाप ताप स ह त्राण ॥
कर ह गौर-गुरु- वै ष्ण व आश्रय ल ह नर हरिना म हार ।
संसा रे नाम लइ सु कृ ति हइया त रे आपामर दु रा चार ॥
इथे कृ त-विषय- तृ ष्ण पहुँ - नाम - हा रा यो धारणे श्र म भार ।
कुतृ ष्ण जगदानन्द कृ त-कल्मष कु म ति रहल का रा गार ॥

२ ४

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥

—*—

श्रीराधाकृष्णाभ्यां नमः ।

गीतम्

[वसन्तरागेण गीयते]

वन्दे वृन्दा-विपिनममन्दम् ।

प्रेम–महारस–वेग–विजृंभित–मदन-महोत्सव–कन्दम् ॥ध्रु०॥

अद्भुत–सुरभि–समय–सहजोदय –मधुर–लता–तरु–जालम् ।
नवमकरन्द–महाद्भुत–परिमल –मत्त–विचलदलिमालम् ॥
विकसदशोक–बकुल–कुलचंपक –माधविकाभिरनूनम् ।
सह–निज–वल्लभया व्रजनागर –लून–विचित्र–विसूनम् ॥
ललित–कलिन्दसुता–लहरीकृत –मृदु–मृदु–शीकर–वर्षम् ।
तुमुल–रति–श्रमितालस–तनुवर –रसिक–मिथुन–कृत–हर्षम् ॥
अद्भुत–रस–सरसी–लसदुपदल –मुकुलित–कनक–सरोजम् ।
प्राणसमा–कुचलोचन–संस्मृति –कृत–हरि–तीव्र–मनोजम् ॥
आस्तृत–कुसुम–घटित–मधुभाजन –मंजुलकुञ्ज–कुटीरम् ।
राधा–माधव–नवरति–लीला –गानमदाकुल–कीरम् ॥
कुसुमित–सुफलित–कल्पलतावृत –सुरतरु–कृतपरभागम् ।
विविध–मणीवृत–भूतल–निपतित –नव–कर्पूर–परागम् ॥
शिखिकुल–नटन–मृगीचकितेक्षण –पिकपञ्चम–कृत–शोभम् ।
प्रेमसुधांबुधि–दोलित–खग–पशु –सङ्ग–महामुनि–लोभम् ॥
नील–तमाल–वनान्तर–निलयन –कौतुकि–पिच्छवतंसम् ।
परिमल–हर–मृदु–मलयानिल –भर–कृतराधापथशंसम् ॥
ललित–कदंबतले धृत –भङ्गिम–मोहन–वादित–वंशम् ।
निरवधि–निजसुखसार–रसोन्मद –हरिकृत–परमप्रशंसम् ॥
प्रियरसमत्त–सरस्वति–वर्णित –वृन्दावन–महिमानम् ।
पिबत बुधाः श्रवणेन सुधारससार–मुदाकर–गानम् ॥

—*—

[मङ्गल-गुर्जरीरागेण गीयते]

जय जय प्राणसखे ! ॥ध्रु॥

प्रणत-सकल-सुखदायक !, व्रज-नायक हे, बल्लवराज-कुमार ! ।
स्फुट-सरसीरुह-लोचन !, भय-मोचन हे, पालितनिज-परिवार ! ॥
व्रज-तरुणी-नवनागर !, रस-सागर हे, रचित-महारतिरङ्ग ! ।
रसिक–युवति–परिहासक !, कृत–रासक हे, ललितानङ्ग–तरङ्ग ! ॥

मणिमय–वेणु–लसन्मुख !, नत–सम्मुख हे, मृदु–मृदु–हास–विलास ! ।
कुल–वनिताव्रत–भञ्जन !, रिपु–गञ्जन हे, नवरति–केलि–निवास ! ॥
मधुर–मधुर–रस–नूतन !, हत–पूतन हे, नवघन–नील–शरीर ! ।
तपन–सुता–तट–सन्नट !, रति–लंपट हे, धृत–वरमणिगण–हीर ! ॥
स्फुरदरुणाधरपल्लव !, व्रजवल्लभ हे, राधा–मानस–हंस ! ।
श्रील–सरस्वति–गीतकं, हरि–भावदं, मङ्गलमिह विदधातु ॥

—*—

[वसन्तरागेण गीयते]

वसतु मनो मम मदनगोपाले ।
नव–रतिकेलि–विलास–परावधि–राधा–सुरत–रसाले ॥ध्रु०॥
मदशिखिपिच्छ–मुकुट–परिलांछित –कुञ्चित–कच–निकुरंबे ।
मुखरित–वेणु–हृतत्रप–धावित –नव–नव–युवति–कदंबे ॥
कलित–कलिन्दसुता–पुलिनोज्ज्वल –कल्पमहीरुह–मूले ।
किंकिणि–कलरव–रञ्जित–कटितट –कोमल–पीत–दुकूले ॥
मुरली–मनोहर–मधुरतराधर –घनरुचिचौर–किशोरे ।
श्रीवृषभानुकुमारी–मोहन –रुचि–मुखचन्द्र–चकोरे ॥
गुञ्जाहार–मकरमणि–कुण्डल –कङ्कण–नूपुर–शोभे ।
मृदु–मधुर–स्मित–चारु–विलोकन –रसिक–वधूकृत–लोभे ॥
मत्त–मधुव्रत–गुञ्जित–रञ्जित –गलदोलित–वनमाले ।
गन्धोद्वर्तित–सुवलित–सुन्दर –पुलकित–बाहु–विशाले ॥
उज्ज्वल–रत्नतिलक–ललितालिक –सकनक–मौक्तिक–नासे ।
शारद–कोटि–सुधाकिरणोज्ज्वल –श्रीमुखकमल–विलासे ॥
ग्रीवाकटिपदभंगि–मनोहर –नव–सुकुमार–शरीरे ।
वृन्दावन–नवकुञ्ज–गृहान्तर –रतिरणरङ्ग–सुधीरे ॥
परिमलसार–सकेशर –चन्दनचर्चित–तर–लसदंगे ।
परमानन्दरसैक–घनाकृति –प्रवहदनङ्ग–तरंगे ॥
पदनखचन्द्र–मणिच्छवि–लज्जित –मनसिजकोटि–समाजे ।
अद्भुत–केलिविलास–विशारद –व्रजपुर–नव–युवराजे ॥
सरस–सरस्वति–वर्णित–माधव –रूपसुधारससारे ।
रमयत साधु बुधा निजहृदयं भ्रमथ मुधा किमसारे ? ॥

—*—

[वसन्तरागेण गीयते]

स्मरतु मनो मम निरवधि राधाम् ।
मधुपतिरूपगुण–श्रवणोदित –सहजमनोभव–बाधाम् ॥ध्रु०॥
वर–सीमन्तरसामृत–सरणी –धृत–सिन्दूर–सुरेखाम् ।
श्रीवृषभानु–कुलांबुधि–संभव –सुभगसुधाकर–लेखाम् ॥
सुरुचिर–कबरि–विराजित–कोमल–परिमल–मल्लिसुमालाम् ।
मदचल–खञ्जन–खेलन –गञ्जन–लोचन–कमलविशालाम् ॥
मद–करिराज–विराजदनुत्तम –चलित–ललित–गतिभङ्गीम् ।
अतिसुकुमार–कनक–नवचंपक –गौर–मधुर–मधुराङ्गीम् ॥
मणि–केयूरललित–वलयावलि –मण्डित–मृदुभुजवल्लीम् ।
प्रदिपदमद्भुत–रूप–चमत्कृति –मोहन–युवति–मतल्लीम् ॥
मृदु–मृदु–हास–ललित–मुखमण्डल –कृतशशिबिंबविडंबाम् ।
किङ्किणिजाल–खचित–पृथुसुन्दर –नवरसराशि-नितंबाम् ॥
चित्रित–कंचुलिका–स्थगितोद्भट –कुचहाटक–घटशोभाम् ।
स्फुरदरुणाधर–स्वादुसुधारस–कृतहरि –मानस–लोभाम् ॥
सुन्दर–चिबुक–विराजित–मोहन –मेचकबिन्दु–विलासाम् ।
सकनक–रत्नखचित–पृथुमौक्तिकरुचि–रुचिरोज्ज्वल–नासाम्॥
उज्ज्वलरागरसामृतसागर –सार–तनुं सुखरूपाम् ।
निपतित–माधवमुग्धमनोमृग –नाभि–सुधारस–कूपाम् ॥
नूपुर–हार–मनोहर–कुण्डल –कृतरुचिमरुण–दुकूलाम् ।
पथि पथि मदनमदाकुल–गोकुलचन्द्रकलित–पदमूलाम् ॥
रसिक–सरस्वति–गीत –महाद्भुत–राधारूप–रहस्यम् ।
वृन्दावनरस–लालस –मनसामिदमुपगेयमवश्यम् ॥

—*—

[रामकिरी - रागेण गीयते]

वन्दे भवतीमतुल–रसराशिम् ।
वृन्दारण्य-निकुञ्ज-विलासिनि! कुरु मां निजपद-दासीम् ॥ध्रु०॥
शिक्षय मामनुपम-निज-कल्पित-सङ्गीतक-बहुभङ्गीम् ।
हरिमुपगायय यथा भवतीमहमीक्षे घनपुलकाङ्गीम् ॥
कारय निज-नागर-चरणद्वय-परिचरणं सुखसारम् ।
परिचारय हरिणाक्षि ! नवं नवमभिनवकुञ्जमुदारम् ॥

विरचित-कुसुम-शयनमनुकारय मधुर-मुखेन निदेशम् ।
संवाहय ललिताङ्गि ! मया निज-पदमवबन्धय केशम् ॥
नव-तांबूल-सुचर्वितमभिमत -श्रीमुखचन्द्र-निगीर्णम् ।
सृक्कणिगलितमहं स्पृहये तव कृपया किमपि वितीर्णम् ॥
तव प्रियश्याम-किशोर-रसोत्सवमनिशमनन्तमपारम् ।
अनुभवितास्मि भवत्पदपङ्कज-किङ्करिकै रससारम् ॥
मम कलयात्मचरण-महिमोदित-बहुचतुरायित-रीतिम् ।
मेलयितास्मि कदा निशि वा हरिणा भवतीं गतभीतिम् ॥
अयि नव–रसिकयुवतिकुलमण्डन–पदनखचन्द्र–विलासे ! ।
आर्तजने मयि न हि विमुखी भव निजपददास्य–धृताशे ॥
इति वृषभानुसुताचरणांबुज–निपतित–वरतनुगीतम् ।
तद्रस–लुब्ध–सरस्वति–वर्णितमतिसुखदं श्रुतिपीतम् ॥

—*—

[सौराष्ट्री-पाहाडीरागेण गीयते]

माधव ! रसमय-परमानन्द ! ।
निजदयिता-पददास्यरसे मामभिषेचय सुखकन्द ! ॥ध्रु०॥
वृन्दारण्य-पुरन्दर-सुन्दर -कुन्दकली-द्विजवृन्द ! ।
मन्दहसित-भुवनैक-मनोहर -वदनविकसदरविन्द ! ॥
राधावदनसरोरुह-संभृत -सीधु-रसोन्मदभृङ्ग ! ।
प्रतिपदमुच्छलितातिरसार्णव -समुदित-केलितरङ्ग ! ॥
राधा-पीनपयोधर -गिरिवरयुग्मनियंत्रित-चित्त ! ।
प्रति-मृदुवाक्यभरोदित-दुर्धर -मदन-महामदमत्त ! ॥
राधा-केलिकुरङ्ग-तदुज्ज्वल -गुणजालक-कृतबन्ध ! ।
इन्दिरयापि सुदुर्लभलोभन-पदमकरन्द-सुगन्ध ! ॥
राधा-प्राण-सखीगण-सौहृद -मुदित-मनोहर-वेष ! ।
तन्मुख-मोहनचन्द्र-विलोकन -कौतुक-निकृत-निमेष ! ॥
राधा-जीवन-भूषण-वैभव-तनु -धन-बान्धव-मित्र ! ।
निरवधि-रतिरण-खेलन-रञ्जित -बहुविधचिह्न-सुचित्र ! ॥
राधामान-गरल-परिखण्डन -वेणु-रवामृत-कण्ठ ! ।
राधा-महित-ललितगीतश्रुति -प्रेमविकुण्ठित-कण्ठ ! ॥
अयि कुतुकेन सरस्वति - विरचित-गीतमिदं बुधवृन्द ! ।
श्रुतिचषकेण निपीय महासुखमिह नु चिरादनुविन्द ॥

—*—

[ललित-रागेण गीयते]

प्रिय गानरसे तव वेणुना ॥ध्रु०॥

न वहति सरिदपि सहज-जवेन । स्थगति शशी दिवि निज-विभवेन ॥
द्रवमयवपुरिह धृतमुपलेन । जनयति विस्मयमतिकठिनेन ॥
सकलभुवनमिदममृत-भरेण । भवति भरितमिव मधुरतरेण ॥
तव पद-सरसिज-कृत-भवनेन । चलति गृहं नहि युवति-जनेन ॥
धृततृण-कवल-मुकुल-नयनेन । लसति वनं तव सुरभिगणेन ॥
विसृजति कलकलमतुलरसेन । प्रमदखगावलिरलमलसेन ॥
स्थिरचरमिह भवति कलनेन । परमसुखामृतहृदि मिलनेन ॥
परपदरत-मुनिरनुतपनेन । भवति कृती तव पद-नयनेन ॥
मुदित-सरस्वति-गीत-मुखेन । विशत महिम्नि हरेः स्वसुखेन ॥

—*—

[श्रीरागेण गीयते]

गायत राधामाधव-लीलाम् । कुरुत मतिं रसरञ्जित-शीलाम् ॥ध्रु०॥
वृन्दारण्य-चराचरवृन्दम् । श्रयत महारस-वैभवकन्दम् ॥
पश्यत राधा-केलि-निकुञ्जम् । प्रकट-महाद्भुत-रतिरसपुञ्जम् ॥
चरत विकुण्ठादपि रमणीये । व्रजवलये शिव-विधि-कमनीये ॥
पुलिने पुलिने तपन-सुतायाः । भ्रमत न यत्र प्रसरति माया ॥
परमानन्द-रसांबुधि-सारे । नयत मनो व्रजराज-कुमारे ॥
मुञ्चत विषम-विषय-रस-गन्धम् । घटयत हरिचरणे रतिबन्धम् ॥
श्रीयुत - राधापदरसभाजम् । परिचिनुतोन्मद - नवरसराजम् ॥
इति हितसार-सरस्वति-गीतम् । जनयतु कञ्चनभावमधीतम् ॥

इति श्रीकृष्णचैतन्याऽनन्यकृपयालब्धभक्तिचमत्कारेण तच्चरणारविन्दनिष्ठासारेण
लब्धवृन्दावनाऽऽगारेण श्रीराधाभक्तिरसावतारेण तुङ्गविद्यावतारेण
श्रीवृन्दावनवासनिष्ठासारेण श्रीराधानामभजनोपासना-
प्रकर्षस्थापकेन श्रीप्रबोधानन्दसरस्वतीपादेन
विनिर्मितानि सङ्गीतमाधवतः
समुद्धृतानि कतिपयगीतानि
समाप्तानि ।

—*—

श्रीश्रीगुरुगौराङ्गौ जयतः।

श्रीगुरु-तत्त्व

श्रीगुरुवन्दना

श्रीगुरुचरणपद्म, केवल-भकतिसद्म, वन्दों मुञि सावधान मने।
याँहार प्रसादे भाइ, ए भव तरिया याइ, कृष्णप्राप्ति हय याहा ह'ने ।।१।।
गुरुमुखपद्मवाक्य, हृदि करि महाशक्य, आर ना करिह मने आशा।
श्रीगुरुचरणे रति, एइ से' उत्तम-गति, ये प्रसादे पूरे सर्व आशा ।।२।।
चक्षुदान दिला येइ, जन्मे जन्मे प्रभु सेइ, दिव्यज्ञान हृदे प्रकाशित।
प्रेमभक्ति याहा हैते, अविद्या विनाश याते, वेदे गाय याँहार चरित ।।३।।
श्रीगुरु करुणासिन्धु, अधम जनार बन्धु, लोकनाथ लोकेर जीवन।
हा हा! प्रभो! कर दया, देह मोरे पदछाया, ए अधम लइल शरण ।।४।।

—※—

श्रीनित्यानन्द-निष्ठा

दैन्य बोधिका

निताइ-पद-कमल, कोटिचन्द्र-सुशीतल, ये छायाय जगत् जुड़ाय।
हेन निताइ बिने भाइ,राधाकृष्ण पाइते नाइ,दृढ़ करि धर निताइर पाय।।
से संबंध नाहि यार, वृथा जन्म गेल तार, सेइ पशु बड़ दुराचार।
निताइ ना बलिल मुखे, मजिल संसारसुखे, विद्याकुले कि करिबे तार।।
अहंकारे मत्त हैञा, निताइ-पद पासरिया, असत्येरे सत्य करि' मानि।
निताइयेर करुणा हबे,व्रजे राधाकृष्ण पाबे,धर निताइयेर चरण दु'खानि।।
निताइयेर चरण सत्य, ताँहार सेवक नित्य, निताइ-पद सदा कर आश।
नरोत्तम बड़ दुःखी, निताइ मोरे कर सुखी, राख राङ्गा चरणेर पाश।।

—※—

[विहागडा]

यङ् कलि रूप शरीर ना धरत।
तङ् व्रजप्रेम-, महानिधि-कुठरिक, कोन् कपाट उघारत ।।१।।
नीर क्षीर हंसन–, पान विधायन, कोन् पृथक् करि पायत।
को सब त्यजि', भजि' वृन्दावन, को सब ग्रन्थ विरचित ।।२।।
यब् पितु वनफुल, फलत नानाविध, मनोराजि अरविन्द।
सो मधुकर बिनु, पान कोन् जानत, विद्यमान करि बन्द ।।३।।

को जानत, मथुरा वृन्दावन, को जानत व्रज-नीत ।
को जानत, राधामाधव-रति, को जानत सोइ प्रीत ॥४॥
याकर चरग- प्रसादे सकल जन, गाइ' गावाइ' सुख पावत ।
चरण-कमले, शरणागत माधो, तब महिमा उर लागत ॥५॥

—*—

पुनः स्वाभीष्ट-लालसा

[पाहिड़ा]

श्रीरूपमञ्जरी-पद, सेइ मोर संपद, सेइ मोर भजन-पूजन ।
सेइ मोर प्राण-धन, सेइ मोर आभरण, सेइ मोर जीवनेर जीवन ॥
सेइ मोर रसनिधि, सेइ मोर वाञ्छासिद्धि, सेइ मोर वेदेर धरम ।
सेइ व्रत, सेइ तप, सेइ मोर मंत्र जप, सेइ मोर धरम करम ॥
अनुकूल हबे विधि, से-पदे हइबे सिद्धि, निरखिब ए दुइ नयने ।
से रूपमाधुरीराशि, प्राण-कुवलय-शशी, प्रफुल्लित हबे निशिदिने ॥
तुया-अदर्शन-अहि, गरले जारल देहि, चिरदिन तापित जीवन ।
हा हा प्रभु! कर दया, देह मोरे पदछाया, नरोत्तम लइल शरण ॥

—*—

संप्रार्थनात्मिका

श्रीगुरुपदे विज्ञप्ति

हा हा प्रभु लोकनाथ ! राख पद-द्वन्द्वे ।
कृपादृष्टे चाह यदि हइया आनन्दे ॥१॥
मनोवांछा-सिद्धि तबे हङ पूर्णतृष्ण ।
हेथाय चैतन्य मिले, सेथा राधाकृष्ण ॥२॥
तुमि ना करिले दया के करिबे आर ।
मनेर वासना पूर्ण कर एइ बार ॥३॥
ए तिन संसारे मोर आर केह नाइ ।
कृपा करि' निज पदतले देह' ठाञि ॥४॥
राधाकृष्ण-लीला-गुण गाङ रात्रिदिने ।
नरोत्तम-वांछा पूर्ण नहे तुया बिने ॥५॥

—*—

गुरु - चरणकमल भज मन
गुरुकृपा बिना नहीं कोई साधन-बल
भज मन भज अनुक्षण। गुरु०
मिलता नहीं ऐसा दुर्लभ जनम
भ्रमत ही चौदह भुवन
किसी को मिलते हैं अहो भाग्य से
हरिभक्तों के दर्शन। गुरु०
कृष्णकृपा की आनन्दमूर्ति
दीनन करुणानिधान
ज्ञान - भक्ति - प्रेम तीन प्रकाशत
श्रीगुरु पतितपावन। गुरु०
श्रुति - स्मृति और पुराण माँहि
कीन्हों स्पष्ट प्रमाण
तन - मन - जीवन गुरु पदे अर्पण
श्रीहरिनाम रटन, सदा श्रीहरिनाम रटन। गुरु०

—※—

वैष्णव-तत्त्व

वैष्णवे विज्ञप्ति

[धानशी]

एइवार करुणा कर वैष्णव गोसाञि।
पतितपावन तोमा बिने केह नाइ॥१॥
काहार निकटे गेले पाप दूरे याय।
एमन दयाल प्रभु केबा कोथा पाय?॥२॥
गङ्गार परश हैले पश्चाते पावन।
दर्शने पवित्र कर - एइ तोमार गुण॥३॥
हरिस्थाने अपराध तारे' हरिनाम।
तोमा स्थाने अपराधे नाहिक एडान॥४॥
तोमार हृदये सदा गोविन्द - विश्राम।
गोविन्द कहेन - मम वैष्णव पराण॥५॥
प्रति जन्मे करि आशा चरणेर धूलि।
नरोत्तमे कर दया आपवार बलि॥६॥

—※—

भजन-लालसा

ओहे ! वैष्णव ठाकुर, दयार सागर, ए दासे करुणा करि' ।
दिया पदछाया, शोध हे आमाय, तोमार चरण धरि ।।१।।
छय वेग दमि', छय दोष शोधि', छय गुण देह दासे ।
छय सत्संग, देह हे आमारे, बसेछि संगेर आशे ।।२।।
एकाकी आमार, नाहि पाय बल, हरिनाम—संकीर्तने ।
तुमि कृपा करि', श्रद्धाबिन्दु दिया, देह कृष्ण-नाम-धने ।।३।।
कृष्ण से तोमार, कृष्ण दिते पार, तोमार शकति आछे ।
आमि त' काङ्गाल, कृष्ण कृष्ण बलि', धाइ तव पाछे पाछे ।।४।।

—*—

सपार्षद-भगवद्विरहजनित-विलापः

ये आनिल प्रेमधन करुणा प्रचुर ।
हेन प्रभु कोथा गेला आचार्य ठाकुर ? ।।१।।
काँहा मोर स्वरूप रूप, काँहा सनातन ? ।
काँहा दास-रघुनाथ पतितपावन ? ।।२।।
काँहा मोर भट्टयुग, काँहा कविराज ? ।
एककाले कोथा गेला गोरा नटराज ? ।।३।।
पाषाणे कुटिव माथा अनले पशिव ।
गौराङ्ग गुणेर निधि कोथा गेले पाव ? ।।४।।
से सब संगीर संगे ये कैल विलास ।
से-संग ना पाञा कान्दे नरोत्तमदास ।।५।।

—*—

वैष्णव-वन्दना

वृन्दावनवासी यत वैष्णवेर गण ।
प्रथमे वन्दना करि सबार चरण ।।१।।
नीलाचलवासी यत महाप्रभुर गण ।
भूमिते पड़िया वन्दों सबार चरण ।।२।।
नवद्वीपवासी यत महाप्रभुर भक्त ।
सबार चरण वन्दों हञा अनुरक्त ।।३।।
महाप्रभुर भक्त यत गौड़देशे स्थिति ।
सबार चरण वन्दों करिया प्रणति ।।४।।

ये देशे ये देशे बैसे गौरांगेर गण।
ऊर्ध्वबाहु करि' वन्दों सबार चरण ॥५॥
हैयाछेन हबेन प्रभुर यत दास।
सबार चरण वन्दों दन्ते करि' घास ॥६॥
ब्रह्माण्ड तारिते शक्ति धरे जने जने।
ए वेद-पुराणे गुण गाय येवा शुने ॥७॥
महाप्रभुर गण सब पतितपावन।
ताइ लोभे मुञि पापी लइनु शरण ॥८॥
वन्दना करिते मुञि कत शक्ति धरि।
तमो-बुद्धिदोषे मुञि दंभ मात्र करि ॥९॥
तथापि मूकेर भाग्य मनेर उल्लास।
दोष क्षमि' मो-अधमे कर निज दास ॥१०॥
सर्ववांछासिद्धि हय यमवंध छुटे।
जगते दुर्लभ हञा प्रेमधन लुटे ॥११॥
मनेर वासना पूर्ण अचिराते हय।
देवकीनन्दनदास एइ लोभे कय ॥१२॥

—❀—

आनुकूल्य-संकल्प

शुद्ध भकत —चरण - रेणु, भजन अनुकूल।
भकत - सेवा, परम - सिद्धि, प्रेमलतिकार मूल ॥१॥
माधव - तिथि, भक्ति - जननी, यतने पालन करि।
कृष्णवसति, वसति बलि', परम आदरे बरि ॥२॥
गौर आमार, ये - सब स्थाने, करल भ्रमण रंगे।
से - सब स्थान, हेरिब आमि, प्रणयि - भकत संगे ॥३॥
मृदङ्ग - वाद्य, शुनिते मन, अवसर सदा याचे।
गौर - विहित, कीर्तन शुनि', आनन्दे हृदय नाचे ॥४॥
युगल - मूर्ति, देखिया मोर, परम आनन्द हय।
प्रसाद - सेवा, करिते हय, सकल प्रपञ्च जय ॥५॥
ये दिन गृहे, भजन देखि, गृहेते गोलोक भाय।
चरण - सीधु, देखिया गङ्गा, सुख ना सीमा पाय ॥६॥
तुलसी देखि', जुड़ाय प्राण, माधवतोषणी जानि'।
गौर - प्रिय, शाक - सेवने, जीवन सार्थक मानि ॥७॥

भकतिविनोद, कृष्णभजने, अनुकूल पाय याहा ।
प्रति दिवसे, परम सुखे, स्वीकार करये ताहा ।।८।।

—*—

अरुणोदय-कीर्तन
[भैरवी]

उदिल अरुण पूरवभागे, द्विजमणि गोरा अमनि जागे,
भकतसमूह लइया साथे, गेला नगर-व्राजे ।
'ताथइ ताथइ' बाजल खोल, घन घन ताहे झाँजेर रोल,
प्रेमे ढलढल सोनार अङ्ग, चरणे नूपुर वाजे ।।१।।
मुकुन्द माधव यादव हरि, वलेन वलरे वदन भरि',
मिछे निदवशे गेलरे राति, दिवस शरीर साजे ।
एमन दुर्लभ मानव-देह, पाइया कि कर, भाव ना केह,
एबे ना भजिले यशोदा-सुत, चरमे पड़िबे लाजे ।।२।।
उदित तपन हइले अस्त, दिन गेल वलि' हइबे व्यस्त,
तबे केन एबे अलस हइ', ना भज हृदयराजे ।
जीवन अनित्य जानह सार, ताहे नानाविध विपदभार,
नामाश्रय करि' यतने तुमि, थाकह आपन काजे ।।३।।
कृष्णनाम-सुधा करिया पान, जुड़ाओ भकतिविनोद-प्राण,
नाम विना किछु नाहिक आर, चौद्दभुवन-माझे ।
जीवेर कल्याणसाधन-काम, जगते आसि' ए मधुर नाम,
अविद्या-तिमिर-तपनरूपे हृद्गगने विराजे ।।४।।

—*—

श्रीगौर-तत्त्व
[यथा राग]

ए मन ! 'गौराङ्ग' विने आर ।
हेन अवतार, हबे कि ह'येछे, हेन प्रेम-परचार ।।
दुरमति अति, पतित पाषण्डी, प्राणे ना मारिल कारे ।
हरिनाम दिया, हृदय शोधिल, याचि गिया घरे घरे ।।
भव--विरिञ्चिर, वांछित ये प्रेम, जगते फेलिल ढालि ।
काङ्गाले पाइये, खाइल नाचिये, बाजाइये करतालि ।।
हासिये काँदिये, प्रेमे गड़ागड़ि, पुलके व्यापिल अङ्ग ।
चण्डाले ब्राह्मणे, करे कोलाकुलि, कबे वा छिल ए रङ्ग ।।

डाकिये हाँकिये, खोल - करताले, गाइये धाइये फिरे।
देखिया शमन, तरास पाइये, कपाट हानिल द्वारे॥
ए तिन भुवन, आनन्दे भरिल, उठिल मङ्गल - लोर।
कहे प्रेमानन्द, एमन गौरांगे, रति ना जन्मिल मोर॥

—※—

ओहे! प्रेमेर ठाकुर गोरा!
प्राणेर यातना किवा कब नाथ!
ह'येछि आपन हारा॥
कि आर बलिब ये काजेर तरे,
एनेछिले नाथ! जगते आमारे,
एत दिन परे कहिते से कथा,
खेदे दुःखे हइ सारा।
तोमार भजने ना जन्मिल रति,
जड़ मोहे मत्त सदा दुरमति,
विषयीर काछे थेके थेके आमि,
हइनु विषयी पारा॥
के आमि केन ये एसेछि एखाने,
से कथा कखनो नाहि भाबि मने,
कखनो भोगेर कखनो त्यागेर,
छलनाय मन नाचे।
कि गति हइबे कखनो भाबि ना,
हरि - भकतेर काछेओ याइ ना,
हरि - विमुखेर कु - लक्षण यत,
आमातेइ सब आछे॥
श्रीगुरु - कृपाय भेंगेछे स्वपन,
बुझेछि एखन तुमिइ आपन,
तब निज - जन परम बान्धव,
संसार - कारागारे।
आर ना भजिब भक्त - पद बिनु,
(ऐ) रातुल चरणे शरण लइनु,
उद्धार' हे नाथ! मायाजाल ह'ते,
ए दासेरे केशे धरे'॥

पातकीरे तुमि कृपा कर नाकि ?
जगाइ माधाइ छिलओ पातकी,
ताहाते जेनेछि प्रेमेर ठाकुर !
पापीकेओ ता'र तुमि ।
आमि भक्तिहीन दीन अकिञ्चन,
(एइ) अपराधि-शिरे दाओ दु'चरण,
तोमार अभय श्रीचरणे चिर,
शरण लइनु आमि ।।

—*—

[सुहइ]

कलि घोर तिमिरे, गरासल जगजन, धरम करम रहु दूर ।
असाधने चिन्तामणि, विधि मिलाओल आनि, गोरा वड़ दयार ठाकुर ।।
भाइ रे भाइ, गोरा - गुण कहने ना · याय ।
कत शत-आनन, कत चतुरानन, वरणिया ओर नाहि पाय ।।
चारि वेद षड़,-दरशन पड़ि, से यदि गौराङ्ग नाहि भजे ।
वृथा तार अध्ययन, लोचन-विहीन जन, दरपणे अन्धे किबा काजे ।।
वेद विद्या दुइ, किछुइ ना जानत, से यदि गौराङ्ग जाने सार ।
नयनानन्द भणे, सेइ त' सकलि जाने, सर्वसिद्धि करतले तार ।।

—*—

[विभाष]

* गौराङ्ग नहित, केमन हइत, केमने धरित दे ? ।
राधार महिमा, प्रेमरस - सीमा, जगते जानात' के ? ।।१।।
मधुर वृन्दा, -विपिन माधुरी, -प्रवेश चातुरी-सार ।
वरज - युवती, भावेर भकति, शकति हइत कार ? ।।२।।
गाओ पुनः पुनः, गौरांगेर गुण, सरल हइया मन ।
ए भव - सागरे, एमन दयाल, ना देखिये एकजन ।।३।।
गौर वलिया, ना गेल गलिया, केमन पाइल सिधि ।
वासुर हिया, पाषाण दिया, गढियाछे कोन विधि ।।४।।

—*—

* प्रेमा नामाद्भुतार्थः श्रवणपथगतः कस्य नाम्नां महिम्नः
को वेत्ता कस्य वृन्दावनविपिन-महामाधुरीषु प्रवेशः ।
को वा जानाति राधां परमरसचमत्कारमाधुर्यसीमा--
मेकश्चैतन्यचन्द्रः परमकरुणया सर्वमाविश्चकार ।।

सावरण-श्रीगौरमहिमा

दैन्य बोधिका [धानशी]

गौरांगेर दुटी पद, यार धन संपद, से जाने भकतिरस सार।
गौरांगेर मधुर लीला, यार कर्णे प्रवेशिला, हृदय निर्मल भेल तार॥
ये गौरांगेर नाम लय, तार हय प्रेमोदय, तारे मुञि याइ बलिहारि।
गौरांग-गुणेते झुरे, नित्यलीला तारे स्फुरे, से जन भकति-अधिकारी॥
गौरांगेर संगिगणे, नित्यसिद्ध करि' माने, से याय व्रजेन्द्रसुत पाश।
श्रीगौडमण्डल-भूमि, येवा जाने चिन्तामणि,-तार हय व्रजभूमे वास॥
गौर-प्रेमरसार्णवे, से तरंगे येवा डुबे, से राधामाधव - अन्तरङ्ग।
गृहे वा वनेते थाके, 'हा गौरांग' ब'ले डाके, नरोत्तम मागे तार सङ्ग॥

—*—

श्रीगौर-आरती

जय जय गोराचाँदेर आरति की शोभा।
जाह्नवी—तटवने जगमन - लोभा ॥१॥
दक्षिणे निताइचाँद, वामे गदाधर।
निकटे अद्वैत श्रीनिवास छत्रधर ॥२॥
बसियाछे गोराचाँद रत्नसिंहासने।
आरति करेन ब्रह्मा - आदि देवगणे ॥३॥
नरहरि - आदि करि चामर ढुलाय।
सञ्जय - मुकुन्द - वासुघोष - आदि गाय ॥४॥
शङ्ख बाजे घण्टा बाजे बाजे करताल।
मधुर मृदङ्ग बाजे परम रसाल ॥५॥
बहु कोटि चन्द्र जिनि' वदन उज्ज्वल।
गलदेशे वनमाला करे झलमल ॥६॥
शिव - शुक - नारद प्रेमे गद्गद।
भकतिविनोद देखे गोरार संपद ॥७॥

—*—

श्रीयुगल-आरती

जय जय राधाकृष्ण युगल - मिलन।
आरति करये ललितादि सखिगण ॥१॥
मदनमोहन रूप त्रिभङ्ग सुन्दर।
पीतांबर शिखिपुच्छ - चूडा मनोहर ॥२॥

ललितमाधव - वामे वृषभानु - कन्या ।
सुनीलवसना गौरी रूपे गुणे धन्या ॥३॥
नानाविध अलंकार करे झलमल ।
हरिमनोविमोहन वदन उज्ज्वल ॥४॥
विशाखादि सखीगण नाना रागे गाय ।
प्रियनर्म - सखी यत चामर ढुलाय ॥५॥
श्रीराधामाधव - पद - सरसिज आशे ।
भकतिविनोद सखीपदे सुखे भासे ॥६॥

—*—

सावरण—श्रीगौर महिमा

जय जय नित्यानन्दाद्वैत गौराङ्ग ।
निताइ गौराङ्ग जय जय निताइ गौराङ्ग ॥१॥
(जय) यशोदानन्दन शचीसुत गौरचन्द्र ।
(जय) रोहिणीनन्दन बलराम नित्यानन्द ॥२॥
(जय) महाविष्णुर अवतार श्रीअद्वैतचन्द्र ।
(जय) गदाधर श्रीवासादि गौरभक्तवृन्द ॥३॥
(जय) स्वरूप रूप सनातन राय रामानन्द ।
(जय) खण्डवासी नरहरि मुरारि मुकुन्द ॥४॥
(जय) पंचपुत्र संगे नाचे राय भवानन्द ।
(जय) तिनपुत्र संगे नाचे सेन शिवानन्द ॥५॥
(जय) द्वादश गोपाल आर चौषट्टि महान्त ।
(तोमरा) कृपा करि देह' गौरचरणारविन्द ॥६॥

—*—

अरुणोदय-कीर्तन

[विभाष]

जीव जाग, जीव जाग, गोराचाँद वले ।
कत निद्रा याओ माया-पिशाचीर कोले ॥१॥
भजिब बलिया एसे' संसार-भितरे ।
भुलिया रहिले तुमि अविद्यार भरे ॥२॥
तोमारे लइते आमि हैनु अवतार ।
आमि विना बन्धु आर के आछे तोमार ॥३॥

एनेछि औषधि माया नाशिवार लागि' ।
हरिनाम-महामंत्र लओ तुमि मागि' ॥४॥
भकतिविनोद प्रभु-चरणे पड़िया ।
सेइ हरिनाम-मंत्र लइल मागिया ॥५॥

—❀—

श्रीभोग-आरती

भज भकतवत्सल श्रीगौरहरि ।
श्रीगौरहरि सोहि गोष्ठविहारी, नन्दयशोमती-चित्तहारी ॥१॥
वेला ह'लो, दामोदर, आइस एखन ।
भोगमन्दिरे वसि' करह भोजन ॥२॥
नन्देर निदेशे वैसे गिरिवरधारी ।
वलदेव - सह सखा बैसे सारि सारि ॥३॥
शुकता-शाकादि भाजि नालिता कुष्माण्ड ।
डालि डाल्ना दुग्धतुंवी दधि मोचाखण्ड ॥४॥
मुद्गवड़ा माषवड़ा रोटिका घृतान्न ।
शष्कुली पिष्टक क्षीर पुलि पायसान्न ॥५॥
कर्पूर अमृतकेलि रंभा क्षीरसार ।
अमृत रसाला अम्ल द्वादश प्रकार ॥६॥
लुचि चिनि सरपुरी लाड्डु रसावली ।
भोजन करेन कृष्ण ह'ये कुतूहली ॥७॥
राधिकार पक्व अन्न विविध व्यञ्जन ।
परम आनन्दे कृष्ण करेन भोजन ॥८॥
छलेबले लाड्डु खाय श्रीमधुमङ्गल ।
बगल बाजाय आर देय हरिबोल ॥९॥
राधिकादि गणे हेरि' नयनेर कोणे ।
तृप्त ह'ये खाय कृष्ण यशोदा - भवने ॥१०॥
भोजनान्ते पिये कृष्ण सुवासित वारि ।
सबे मुख प्रक्षालय ह'ये सारि सारि ॥११॥
हस्त मुख प्रक्षालिया यत सखागणे ।
आनन्दे विश्राम करे बलदेव - सने ॥१२॥
जांबुल रसाल आने तांबूल - मुसाला ।
ताहा खे'ये कृष्णचन्द्र सुखे निद्रा गेला ॥१३॥

विशालाक्ष शिखि - पुच्छ - चामर ढुलाय ।
अपूर्व शय्याय कृष्ण सुखे निद्रा याय ॥१४॥
यशोमति - आज्ञा पे'ये धनिष्ठा - आनित ।
श्रीकृष्णप्रसाद राधा भुंजे ह'ये प्रीत ॥१५॥
ललितादि सखीगण अवशेष पाय ।
मने मने सुखे राधाकृष्ण गुण गाय ॥१६॥
हरि - लीला एकमात्र याहार प्रमोद ।
भोगारति गाय सेइ भकतिविनोद ॥१७॥

—*—

भाइरे ! भज गोराचाँदेर चरण ।
ए तिन भुवने आर, दयार ठाकुर नाइ, गोरा बड़ पतितपावन ॥१॥
हेन अवतारे यार', नहिल भकति लेश, बल तार कि हवे उपाय ? ।
रविर किरणे यार, आँखि परसन्न नैल, विधाता वञ्चित कैल ताय ॥२॥
हेम - जलधर काय, प्रेमधारा बरिषय, करुणामय अवतार ।
गोरा हेन प्रभु पेये, ये जन शीतल नैल, कि जानि केमन मन तार?॥३॥
कलि-भवसागरे, निज नाम करि भेला, आपने गौराङ्ग करे पार ।
तबे ये डुबिया मरे, के तारे उद्धार करे, ए प्रेमानन्देर परिहार ॥४॥

—*—

भुवनमङ्गल अवतार श्रीगौराङ्ग आमार ।
कलियुग वारण, मद विनिवारण, हरिध्वनि जगत विथार ॥१॥
पुलके बलित अति, ललित हेमतनु, अनुक्षण नटन विभोर ।
कत अनुभाव, अवधि ना पाइये, प्रेमसिन्धु नयन हिलोर ॥२॥
निज रसे भासे, हासे क्षणे रोवत, आकुल गदगद बोल ।
प्रेम भरे गरगर, ना चिने आपन पर, पतित जनेरे देय कोल ॥३॥
प्रेमसुधा सायरे, मगन सुरासुर, दिन रजनी नाहि जान ।
गोविन्ददास सिन्धु, -बिन्दु मागि रोवइ, श्रीवल्लभ परमान ॥४॥

—*—

[धानशी]

शयने गौर, स्वपने गौर, गौर नयन तारा ।
जीवने गौर, मरणे गौर, गौर गलार हारा ॥१॥
कहना गौर कथा, ओ सइ !, कहना गौर कथा ।
गौर - नाम, अमिया - धाम, पिरिति-मुरति दाता ॥२॥

गौर विहीने, ना बाँचि पराणे, गौर करिलाम सार।
गौर बलिते, जनम जाउक, किछु ना चाहिये आर ।।३।।
गौर भकति, गौर मुकति, गौर वेदेर सार।
गौर भजह, गौर साधह, गौर करिबे पार ।।४।।
गौर - गठन, गौर - गमन, गौर मुखेर हाँसि।
गौर - वचन, अमिया - सिञ्चन, मरमे रहल पशि ।।५।।
गौर - शवद, गौर - संपद, याहार हृदये जागे।
नरहरि - दास, अनुगत भाष, चरणे शरण मागे ।।६।।

—:#:—

सावरण श्रीगौरपादपद्मे प्रार्थना

श्रीकृष्णचैतन्य प्रभु दया कर मोरे।
तोमा बिना के दयालु जगत् संसारे ।।१।।
पतित - पावन - हेतु तव अवतार।
मो - सम पतित प्रभु ना पाइबे आर ।।२।।
हा हा प्रभु नित्यानन्द प्रेमानन्द सुखी।
कृपावलोकन कर आमि बड़ दुःखी ।।३।।
दया कर सीतापति अद्वैत गोसाञि।
तव कृपा - बले पाइ चैतन्य निताइ ।।४।।
हा हा स्वरूप सनातन रूप रघुनाथ।
भट्टयुग श्रीजीव हा प्रभु लोकनाथ ।।५।।
दया कर श्रीआचार्य प्रभु श्रीनिवास।
रामचन्द्र - संग मागे नरोत्तमदास ।।६।।

—:#:—

श्रीकृष्ण-तत्त्व

आत्मनिवेदन

आत्मनिवेदन , तुया पदे करि', हइनु परम सुखी।
दुःख दूरे गेल, चिन्ता ना रहिल, चौदिके आनन्द देखि ।।१
अशोक - अभय, अमृत - आधार, तोमार चरणद्वय।
ताहाते एखन, विश्राम लभिया, छाड़िनु भवेर भय ।।२
तोमार संसारे, करिब सेवन, नहिब फलेर भागी।
तव सुख याहे, करिब यतन, ह'ये पदे अनुरागी ।।३

तोमार सेवाय, दुःख हय यत, सेओ त' परम सुख।
सेवा-सुख-दुःख, परम संपद, नाशये अविद्या-दुःख ॥४
पूर्व इतिहास, भुलिनु सकल, सेवा-सुख पे'ये मने।
आमि त' तोमार, तुमि त' आमार, कि काज अपर धने ॥५
भकतिविनोद, आनन्दे डुबिया, तोमार सेवार तरे।
सब चेष्टा करे, तब इच्छा-मत, थाकिया तोमार घरे ॥६

—※—

प्रार्थना लालसामयी

कबे ह'बे हेन दशा मोर।
त्यजि' जड़ आशा, विविध बन्धन, छाड़िव संसार घोर ॥१॥
वृन्दावनाभेदे, नवद्वीप-धामे, बाँधिब कुटीरखानि।
शचीर नन्दन-चरण-आश्रय, करिव संबन्ध मानि' ॥२॥
जाह्नवी-पुलिने, चिन्मय-कानने, बसिया विजन-स्थले।
कृष्णनामामृत, निरन्तर पिव, डाकिब 'गौराङ्ग' ब'ले ॥३॥
हा गौर-निताइ, तोरा दुटी भाइ, पतितजनेर बन्धु।
अधम पतित, आमि हे दुर्जन, हओ मोरे कृपासिन्धु ॥४॥
काँदिते काँदिते, षोलक्रोश-धाम, जाह्नवी-उभय कूले।
भ्रमिते भ्रमिते, कभु भाग्यफले, देखि किछु तरुमूले ॥५॥
हा हा मनोहर, कि देखिनु आमि, बलिया मूर्च्छित ह'ब।
संवित् पाइया, काँदिब गोपने, स्मरि दुँहु कृपालव ॥६॥

—※—

कृष्ण जिनका नाम है, गोकुल जिनका धाम है,
ऐसे श्रीभगवान्‌को बारंबार प्रणाम है ॥१॥
यशोदा जिनकी मैया है, नन्दजी बपैया है,
ऐसे श्रीगोपालको बारंबार प्रणाम है ॥२॥
राधा जिनकी जाया है, अद्भुत जिनकी माया है,
ऐसे श्रीघनश्यामको बारंबार प्रणाम है ॥३॥
लूट लूट दधि माखन खायो, ग्वालबाल सँग धेनु चरायो,
ऐसे लीलाधामको बारंबार प्रणाम है ॥४॥
द्रुपदसुताको लाज बचायो, ग्राहसे गजको फन्द छुड़ायो,
ऐसे कृपाधामको बारंबार प्रणाम है ॥५॥

कुरु-पाण्डवको युद्ध मचायो, अर्जुनको उपदेश सुनायो,
ऐसे दीनानाथको बारंबार प्रणाम है ।।६।।

—*—

श्रीकृष्णलीला-कीर्तन

जय माधव मदनमुरारी राधेश्याम श्यामाश्याम।
जय केशव कलिमलहारी राधेश्याम श्यामाश्याम।।
सुन्दर कुण्डल नैन विशाला, गल सोहे वैजन्तीमाला।
या छवि की बलिहारी।।राधेश्याम०
कबहूँ लूट लूट दधि खायो, कबहूँ मधुबन रास रचायो।
नाचत विपिनविहारी।।राधेश्याम०
ग्वालबाल संग धेनु चराई, वन वन भ्रमत फिरे यदुराई।
काँधे कामर कारी।।राधेश्याम०
चुरा चुरा नवनीत जो खायो, व्रज-वनितन पै नाम धरायो।
माखनचोर मुरारि।।राधेश्याम०
एकदिन मान इन्द्र को मार्‍यो, नख ऊपर गोवर्धन धार्‍यो।
नाम पड्यो गिरिधारी।।राधेश्याम०
दुर्योधन को भोग न भायो, रूखो साग विदुर घर खायो।
ऐसे प्रेम-पुजारी।।राधेश्याम०
करुणा कर द्रौपदी पुकारी, पट में लिपट गये वनवारी।
निरख रहे नर नारी।।राधेश्याम०
भक्त-भक्त सब तुमने तारे, विना भक्ति हम ठाड़े द्वारे।
लीजो खबर हमारी।।राधेश्याम०
अर्जुन के रथ हाँकन हारे, गीता के उपदेश तुम्हारे।
चक्र - सुदर्शनधारी।।राधेश्याम०

—*—

गोप्तृत्व-वरण

तुमि सर्वेश्वरेश्वर, व्रजेन्द्रकुमार!।
तोमार इच्छाय विश्वे सृजन संहार।।१।।
तब इच्छामत ब्रह्मा करेन सृजन।
तब इच्छामत विष्णु करेन पालन।।२।।
तब इच्छामते शिव करेन संहार।
तब इच्छामते माया सृजे कारागार।।३।।

तब इच्छामते जीवेर जनम-मरण ।
समृद्धि - निपात - दुःख - सुख - संघटन ॥४॥
मिछे मायाबद्ध जीव आशापाशे फिरे' ।
तब इच्छा बिना किछु करिते ना पारे ॥५॥
तुमि त' रक्षक आर पालक आमार ।
तोमार चरण बिना आशा नाहि आर ॥६॥
निज - बल - चेष्टा - प्रति भरसा छाड़िया ।
तोमार इच्छाय आछि निर्भर करिया ॥७॥
भकतिविनोद अति दीन अकिञ्चन ।
तोमार इच्छाय ता'र जीवन-मरण ॥८॥

—*—

भावसम्मिलन

बँधु तुमि से आमार प्राण ।
देह मन आदि, तोहारे सँपेछि, कुल शील जाति मान ॥१
अखिलेर नाथ, तुमि हे कालिया, योगीर आराध्य धन ।
गोप गोयालिनी, हाम अति हीना, ना जानि भजन पूजन ॥२
पिरीति रसेते, ढालि तनु मन, दियाछि तोमार पाय ।
तुमि मोर पति, तुमि मोर गति, मन नाहि आन भाय ॥३
कलंकी बलिया, डाके सब लोके, ताहाते नाहिक दुःख ।
तोमार लागिया, कलंकेर हार, गलाय परिते सुख ॥४
सती वा असती, तोमाते विदित, भाल मन्द नाहि जानि ।
कहे चण्डिदास, पाप पुण्य सम, तोहारि चरण खानि ॥५

—*—

* बन्धु संगे यदि तब रङ्ग परिहास, थाके अभिलाष ।
(थाके अभिलाष)
तबे मोर कथा राख, येयो नाको येयो नाको,
वृन्दावने केशीतीर्थ घाटेर सकाश ॥१॥

—*—

* स्मेरां भंगीत्रयपरिचितां साचिविस्तीर्णदृष्टिं
वंशीन्यस्ताधरकिशलयामुज्ज्वलां चन्द्रकेण ।
गोविन्दाख्यां हरितनुमितः केशितीर्थोपकण्ठे
मा प्रेक्षिष्ठास्तव यदि सखे! बन्धुसंगेऽस्ति रङ्गः ॥
(भ० र० सि०, पू० वि० २।२३९)

गोविन्द विग्रह धरि, तथाय आछेन हरि,
नयने वंकिमदृष्टि मुखे मन्दहास ।
किबा त्रिभंगिम ठाम, वर्ण समुज्ज्वल श्याम,
नव किशलय शोभा श्रीअंगे प्रकाश ।।२।।
अधरे वंशीटी तार, अनर्थेर मूलाधार,
शिखिचूडाकेओ भाइ कर ना विश्वास ।
से मूर्ति नयने हेरे, केह नाहि घरे फिरे,
संसारी गृहीर ये गो हय सर्वनाश ।।३।।
(ताइ मोर मने बड़ त्रास)
घटिबे विपद भारी, येयो नाको हे संसारी,
वृन्दावने केशीतीर्थ घाटेर सकाश ।।४।।

—*—

भजन—गीत

भज रे भज रे आमार मन अति मन्द ।
(भजन बिना गति नाइ रे)
(भज) व्रजवने राधाकृष्ण - चरणारविन्द ।।१।।
(ज्ञान - कर्म परिहरि' रे)
(भज) गौर - गदाधराद्वैत गुरु - नित्यानन्द ।
(गौर-कृष्णे अभेद जेने' रे)
(गुरु कृष्णप्रिय जेने' रे)
(स्मर) श्रीनिवास हरिदास मुरारि मुकुन्द ।।२।।
(गौरप्रेमे स्मर स्मर रे)
(स्मर) रूप सनातन जीव रघुनाथद्वन्द्व ।
(यदि भजन करबे रे)
(स्मर) राघव गोपालभट्ट स्वरूप रामानन्द ।।३।।
(कृष्णप्रेम यदि चाओ रे)
(स्मर) गोष्ठिसह कर्णपूर सेन - शिवानन्द ।
(अजस्र स्मर स्मर रे)
(स्मर) रूपानुग साधुजन भजन - आनन्द ।।४।।
(व्रजे वास यदि चाओ रे)

—*—

श्रीनाम-संकीर्तन

[धानशी]

भजहुँ रे मन श्रीनन्दनन्दन, अभय चरणारविन्द रे ।
दुर्लभ मानव जनम सत्संगे, तरह ए भवसिन्धु रे ।।१।।

शीत आतप वात बरिषण, ए दिन यामिनी जागि' रे ।
विफले सेबिनु कृपण दुरजन, चपल सुखलव लागि' रे ।।२।।

ए धन यौवन, पुत्र परिजन, इथे कि आछे परतीति रे ।
कमलदलजल, जीवन टलमल, भजहुँ हरिपद निति रे ।।३।।

श्रवण, कीर्तन, स्मरण, वन्दन, पादसेवन, दास्य रे ।
पूजन, सखीजन, आत्मनिवेदन, गोविन्ददास अभिलाष रे ।।४।।

—❋—

आत्मनिवेदन

मानस, देह, गेह यो किछु मोर ।
अर्पिलुँ तुया पदे नन्दकिशोर ।।१।।

संपदे - विपदे, जीवने - मरणे ।
दाय मम गेल, तुया ओ-पद वरणे ।।२।।

मारबि राखबि यो इच्छा तोहारा ।
नित्य - दास प्रति तुया अधिकारा ।।३।।

जन्माओबि मोए इच्छा यदि तोर ।
भक्तगृहे जनि जन्म हउ मोर ।।४।।

कीटजन्म हउ यथा तुया दास ।
बहिर्मुख ब्रह्मजन्मे नाहि आश ।।५।।

भुक्ति - मुक्तिस्पृहा - विहीन ये भक्त ।
लभइते ताँक सङ्ग अनुरक्त ।।६।।

जनक, जननी, दयित, तनय ।
प्रभु, गुरु, पति - तुँहु सर्वमय ।।७।।

भकतिविनोद कहे शुन कान ! ।
राधानाथ ! तुँहु हामार पराण ।।८।।

—❋—

मोहन प्यारे हो कन्हैया, नाम अनुपम भावे।
नन्द के लाला, यशोदादुलाला, सब कोई जन गावे, कन्हैया (३)॥
राधारमण मदनमोहन प्रभु, यमुना-पुलिनविहारी।
कृष्ण गोविन्द मुरलीमनोहर, गोवर्धन गिरिधारी (३)॥
अघ-बक-पूतना-कंस के नाशक, राधाकुण्डतट वनचारी।
व्रजजनरञ्जन गोपीप्रमोदन, चञ्चल नटनमुरारी (३)॥
मधुर नामअवतार तुम्हारे, दीनजनन आधार।
नाम-रूप में भेद न कोई, कीजे कृपा मुरार (३)॥
ऐसा और नहीं पापीजन, जैसा मैं हूँ नाथ।
निजजन शरण देहो करुणामय, कीजे मो ही सनाथ (३)॥

—*—

ओ मन ! प्रेम से भजो श्यामराय। प्रेम विना जँही कछु नहीं भावे॥प्रे०
मोहन मूरति झलकत जँही। मुरली बजावत गोपी मन मोही।
मोरमुकुट सिर भूषण सोही॥प्रे०
गोवर्धनधारी कुञ्जविहारी। राधावल्लभ व्रज हितकारी।
व्रजवासीन के प्रेमभिखारी॥प्रे०
कौन जानत सो प्रेम की ओर। आप विमोहित राधा मन चोर।
करुणा विना नहीं दीखत ठौर॥प्रे०

—*—

श्रीराधा-तत्त्व

आनुकूल्य संकल्प

राधाकुण्डतट कुञ्जकुटीर। गोवर्धन-पर्वत यामुनतीर॥
कुसुम-सरोवर मानसगङ्गा। कलिन्दनन्दिनी विपुलतरङ्गा॥
वंशीवट गोकुल धीरसमीर। वृन्दावन -तरुलतिका -वानीर॥
खग-मृगकुल मलय-वातास। मयूर भ्रमर मुरली-विलास॥
वेणु शृङ्ग पदचिह्न मेघमाला। वसन्त शशाङ्क शङ्ख करताला॥
युगलविलासे अनुकूल जानि। लीलाविलास उद्दीपक मानि॥
ए सब छोडत काँहा नाहि याँउ। ए सब छोडत पराण हाराँउ॥
भकतिविनोद कहे शुन कान !। तुया उद्दीपक हामारा पराण॥

—*—

नायिकार पूर्वराग
[कामोद]

सइ ! केबा शुनाइले श्याम नाम ? ।
कानेर भितर दिया, मरमे पशिल गो, आकुल करिल मोर प्राण ॥
ना जानि कतेक मधु, श्यामनामे आछेगो, वदन छाडिते नाहि पारे ।
जपिते जपिते नाम, अवश करिल गो, केमने पाइब सइ तारे ॥
नाम-परतापे यार, ऐछन करिल गो, अंगेर परशे किवा हय ।
येखाने वसति तार, नयन देखिया गो, युवती-धरम कैछे रय ॥
पासरिते करि मने, पासरा ना याय गो, कि करिब कि हवे उपाय?।
कहे द्विज चण्डिदासे, कुलवती कुल नाशे, आपनार यौवन याचाय ॥

—*—

गोप्तृत्व-वरण

सर्वस्व तोमार, चरणे सँपिया, पड़ेछि तोमार घरे ।
तुमि त' ठाकुर !, तोमार कुकुर, बलिया जानह मोरे ॥
बाँधिया निकटे, आमारे पालिवे, रहिब तोमार द्वारे ।
प्रतीप - जनेरे, आसिते ना दिब, राखिब गड़ेर पारे ॥
तब निजजन, प्रसाद सेविया, उच्छिष्ट राखिवे याहा ।
आमार भोजन, परम - आनन्दे, प्रतिदिन ह'बे ताहा ॥
बसिया शुइया, तोमार चरण, चिन्तिव सतत आमि ।
नाचिते नाचिते, निकटे याइब, यखन डाकिबे तुमि ॥
निजेर पोषण, कभु ना भाबिब, रहिब भावेर भरे ।
भकतिविनोद , तोमारे पालक, बलिया वरण करे ॥

—*—

अनुराग-सखी संबोधने
[श्रीराग धानशी]

सुखेर लागिया, ए घर बाँधिनु, आगुने पुडिया गेल ।
अमिया - सागरे, सिनान करिते, सकलि गरल भेल ॥
सखि ! कि मोर कपाले लेखि ।
शीतल बलिया, चाँद सेविनु, भानुर किरण देखि ॥
उचल बलिया, अचले चड़िनु, पड़िनु अगाध जले ।
लछमी चाहिते, दारिद्र बेढल, माणिक हारानु हेले ॥

नगर वसालाम, सागर बाँधिलाम, माणिक पावार आशे।
सागर शुकाल, माणिक लुकाल, अभागीर करम दोषे॥
पियास लागिया, जलद सेविनु, बजर पड़िया गेल।
कहे चण्डिदास, श्यामेर पिरीत, मरमे बहल शेल॥

—*—

प्रार्थना

हरि बलव आर मदनमोहन हेरव गो।
एइरूपे व्रजेर पथे चलब गो॥ध्रु०॥
याब गो व्रजेन्द्रपुर हव गो गोपिकार नूपुर
ताँदेर चरणे मधुर मधुर बाजब गो।
विपिने विनोद खेला संगेते राखालेर मेला
ताँदेर चरणेर धूला माखब गो॥
राधाकृष्णेर रूपमाधुरी हेरब दु'नयन भरि
निकुंजेर द्वारे द्वारी हइब गो।
व्रजवासि! तोमरा सबे एइ अभिलाष पूराओ एबे
आर कवे श्रीकृष्णेर बाँशी शुनब गो॥
एइ देह अन्तिम काले राखब श्रीयमुनार जले
जय राधागोविन्द ब'ले भासब गो।
कहे नरोत्तम दास ना पूरिल अभिलाष
आर कबे व्रजवास करब गो॥

—*—

कोथाय गो प्रेममयि राधे राधे। राधे राधे गो जय राधे राधे॥
देखा दिये प्राण राख राधेराधे। तोमार काङ्गाल तोमाय डाके राधेराधे॥
राधे वृन्दावनविलासिनि राधे राधे। राधे कानुमनोमोहिनि राधे राधे॥
राधे अष्टसखीर शिरोमणि राधे राधे। राधे वृषभानुनन्दिनि राधे राधे॥
(गोसाञी) नियम क'रे सदाइ डाके राधे राधे।
(गोसाञी) एकबार डाके केशीघाटे
आबार डाके वंशीवटे राधे राधे।
(गोसाञी) एकबार डाके निधुवने
आबार डाके कुञ्जवने राधे राधे॥

(गोसाञी) एकबार डाके राधाकुण्डे
आबार डाके श्यामकुण्डे राधे राधे ।
(गोसाञी) एकबार डाके कुसुमवने
आबार डाके गोवर्धने राधे राधे ।।
(गोसाञी) एकबार डाके तालवने
आबार डाके तमालवने राधे राधे ।
(गोसाञी) मलिन वसन दिये गाय
व्रजेर धूलाय गड़ागड़ि याय राधे राधे ।।
(गोसाञी) मुखे राधा राधा बले
भासे नयनेर जले राधे राधे ।
(गोसाञी) वृन्दावने कुलि कुलि कँदे वेड़ाय
राधा वलि' राधे राधे ।।
(गोसाञी) छापान्न दण्ड रात्रि दिने
जाने ना राधागोविन्द विने राधे राधे ।
तारपर चारि दण्ड शुति थाके
स्वपने राधागोविन्द देखे राधे राधे ।।

—*—

राधा - भजने यदि मति नाहि भेला ।
कृष्णभजन तब अकारण गेला ।।१।।
आतप - रहित सूरज नाहि जानि ।
राधा - विरहित माधव नाहि मानि ।।२।।
केवल माधव पूजये सो अज्ञानी ।
राधा - अनादर करइ अभिमानी ।।३।।
कबँहि नाहि करबि ताँकर सङ्ग ।
चित्ते इच्छसि यदि व्रजरस - रङ्ग ।।४।।
राधिका - दासी यदि होय अभिमान ।
शीघ्रइ मिलइ तब गोकुल - कान ।।५।।
ब्रह्मा, शिव, नारद, श्रुति, नारायणी ।
राधिका - पदरज पूजये मानि ।।६।।
उमा, रमा, सत्या, शची, चन्द्रा, रुक्मिणी ।
राधा - अवतार सबे, - आम्नाय - वाणी ।।७।।

हेन राधा-परिचर्या याँकर धन।
भकतिविनोद ताँ'र मागये चरण ॥८॥

—*—

श्रीराधाकुण्ड-महिमा

वैकुण्ठ हइते श्रेष्ठा मथुरा नगरी।
जनम लभिला यथा कृष्णचन्द्र हरि ॥
मथुरा हइते श्रेष्ठ वृन्दावन धाम।
यथा साधियाछे हरि रासोत्सव काम ॥
वृन्दावन हइते श्रेष्ठ गोवर्धन शैल।
गिरिधारी गान्धर्विका यथा क्रीडा कैल ॥
गोवर्धन हैते श्रेष्ठ राधाकुण्ड-तट।
प्रेमामृते भासाइल गोकुल-लंपट ॥
गोवर्धन गिरितट राधाकुण्ड छाडि।
अन्यत्र ये करे निज कुञ्ज पुष्पबाडी ॥
निर्बोध ताहार सम केह नाहि आर।
कुण्डतीर सर्वोत्तम स्थान प्रेमाधार ॥

—*—

श्रीतुलसी वन्दना

[गुर्जरी]

नमो नमः तुलसी कृष्णप्रेयसी।
राधाकृष्ण-सेवा पाब एइ अभिलाषी ॥
ये तोमार शरण लय, तार वांछा पूर्ण हय।
कृपा करि कर' तारे वृन्दावनवासी ॥
मोर एइ अभिलाष, विलासकुंजे दिओ वास।
नयने हेरिब सदा युगलरूप-राशि ॥
एइ निवेदन धर, सखीर अनुगत कर'।
सेवा-अधिकार दिये कर निज दासी ॥
दीन कृष्णदासे कय, एइ येन मोर हय।
श्रीराधागोविन्द-प्रेमे सदा येन भासि ॥

—*—

शुकशारीर द्वन्द्व

वृन्दावनविलासिनी राइ आमादेर।
राइ आमादेर, राइ आमादेर,
आमरा राइयेर, राइ आमादेर॥

शुक बले आमार कृष्ण मदनमोहन।
शारी बले आमार राधा वामे यतक्षण, नैले शुधुइ मदन॥
शुक बले आमार कृष्ण गिरि धरेछिल।
शारी बले आमार राधा शक्ति संचारिल, नैले पार्वे केन?॥
शुक बले आमार कृष्णेर माथाय मयूर-पाखा।
शारी बले आमार राधार नामटी ताते लेखा, ऐ ये याय देखा॥
शुक बले आमार कृष्णेर चूडा वामे हेले।
शारी बले आमार राधार चरण पावे ब'ले, चूडा ताइते हेले॥
शुक बले आमार कृष्ण जगत् चिन्तामणि।
शारी बले आमार राधा प्रेम-प्रदायिनी, तोमार कृष्णे जानि॥
शुक बले आमार कृष्णेर बाँशी करे गान।
शारी बले सत्य बटे बले राधार नाम, नैले मिछाइ गान॥
शुक बले आमार कृष्ण जगतेर गुरु।
शारी बले आमार राधा वांछाकल्पतरु, नैले के कार गुरु॥
शुक बले आमार कृष्ण प्रेमर भिखारी।
शारी बले आमार राधा प्रेमेर लहरी, प्रेमेर ढेउ किशोरी॥
शुक बले आमार कृष्णेर कदमतलाय थाना।
शारी बले आमार राधा करे आनागोना, नैले मिछाइ थाना॥
शुक बले आमार कृष्ण जगतर कालो।
शारी बले आमार राधार रूपे जगत् आलो, नैले आँधार कालो॥
शुक बले आमार कृष्णेर श्रीराधिका दासी।
शारी बले सत्य बटे साक्षी आछे बाँशी, नैले ह'तो काशीवासी॥
शुक बले आमार कृष्ण करे वरिषण।
शारी बले आमार राधा स्थगित पवन, से ये स्थिर पवन॥
शुक बले आमार कृष्ण जगतेर जीवन।
शारी बले आमार राधा जीवनेर जीवन, नैले के कार जीवन॥
शुक बले आमार कृष्ण कालिन्दीर जल।
शारी बले आमार राधा ताहे शतदल, नैले शुधुइ ये जल॥

शुक बले आमार कृष्ण वृन्दावनेर चाँद।
शारी बले आमार राधा ऐ चाँद-धरा फाँद, चाँद वँधे रेखेछे ॥
(तखन) शुक बले शारि आर केन कर द्वन्द्व।
राधा कृष्ण दु'जनार केह नहे मन्द, (ओरा) दु'जनाइ ये भाल ॥
शुक शारी दु'जनार द्वन्द्व घुचे गेल।
राधाकृष्णेर प्रीते एकवार हरि हरि वल ॥

—*—

उच्छ्वास-कीर्तन

श्रीनाम-संकीर्तन

कलिकुक्कुर - कदन यदि चाओ (हे)।
कलियुग - पावन, कलिभय - नाशन, श्रीशचीनन्दन गाओ(हे)॥
गदाधर - मादन, निताइर प्राणधन, अद्वैतेर प्रपूजित गोरा।
निमाइ विश्वंभर, श्रीनिवास - ईश्वर, भक्तसमूह - चितचोरा ॥
नदीया - शशधर, मायापुर - ईश्वर, नाम - प्रवर्तन शूर।
गृहि-जन-शिक्षक, न्यासिकुल -नायक, माधव राधाभावपूर ॥
सार्वभौम-शोधन, गजपति - तारण, रामानन्द - पोषण वीर।
रूपानन्द - वर्धन, सनातन - पालन, हरिदास - मोदन धीर ॥
व्रजरस - भावन, दुष्टमत - शातन, कपटी - विघातन काम।
शुद्धभक्त -पालन, शुष्कज्ञान - ताडन, छलभक्ति - दूषण राम ॥

—*—

श्रीनगर-संकीर्तन

गाय गोराचाँद जीवेर तरे – हरे कृष्ण हरे ॥ध्रु॥
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे।
हरे कृष्ण हरे।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥
हरे कृष्ण हरे ॥१॥
एकवार बल् रसना उच्चैःस्वरे।
(बल) नन्देर नन्दन, यशोदा - जीवन,
श्रीराधारमण, प्रेम - भरे ॥२॥
(बल) श्रीमधुसूदन, गोपी - प्राणधन,
मुरलीवदन, नृत्य करे।

(बल) अघ - निसूदन, पूतना - घातन,
ब्रह्मविमोहन, ऊर्ध्वकरे ॥
हरे कृष्ण हरे ॥३॥

—*—

श्रीनगर-संकीर्तन

गाय गोरा मधुर स्वरे ।
हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ॥१
गृहे थाक, वने थाक, सदा 'हरि' बले' डाक,
सुखे दुःखे भुल ना'क, वदने हरिनाम कर रे ॥२
मायाजाले बद्ध ह'ये, आछ मिछे काज ल'ये,
एखनओ चेतन पे'ये; 'राधामाधव'-नाम बल रे ॥३
जीवन हइल शेष, ना भजिले हृषीकेश,
भक्तिविनोद - उपदेश, एकबार नाम-रसे मात रे ॥४

—*—

श्रीकृष्णनाम-महिमा

* जननां सकल कल्याणनो भण्डार हरिनुं नाम छे ।
कलिमलतृणांना गंजमां अंगार हरिनुं नाम छे ॥१॥
पावनतणुं पावन जगतमां श्रेय हरिनुं नाम छे ।
पंथे परम पदने जतां पाथेय हरिनुं नाम छे ॥२॥
कविवरोने वाणीतणो विश्राम हरिनुं नाम छे ।
संतोतणुं जीवन परम सुखधाम हरिनुं नाम छे ॥३॥
सद्धर्मरूपी वृक्षनुं शुभ बीज हरिनुं नाम छे ।
संसारमां संजीवनी मूलीज हरिनुं नाम छे ॥४॥
दुर्लभ मनुष्यदेहकेरो ल्हाव हरिनुं नाम छे ।
भवसिन्धु पार तरी जवा दृढनाव हरिनुं नाम छे ॥५॥

---

* कल्याणानां निधानं कलिमलमथनं पावनं पावनानां
पाथेयं यन्मुमुक्षोः सपदि परपदप्राप्तये प्रोच्यमानम् ।
विश्रामस्थानमेकं कविवरवचसां जीवनं सज्जनानां
बीजं धर्मद्रुमस्य प्रभवतु भवतां भूतये कृष्णनाम ॥
(श्रीपद्यावली १९)

—*—

आ तक्र सम संसारमां नवनीत हरिनुं नाम छे।
हरिदासना हैडातणुं तावीत हरिनुं नाम छे॥६॥

—*—

जय राधे, जय कृष्ण, जय वृन्दावन।
श्रीगोविन्द गोपीनाथ मदनमोहन॥१॥
श्यामकुण्ड राधाकुण्ड गिरि-गोवर्धन।
कालिन्दी यमुना जय जय महावन॥२॥
केशीघाट वंशीवट द्वादश-कानन।
याँहा सब लीला कैल श्रीनन्दनन्दन॥३॥
श्रीनन्द-यशोदा जय जय गोपगण।
श्रीदामादि जय जय धेनुवत्सगण॥४॥
जय वृषभानु जय कीर्तिदा सुन्दरी।
जय पौर्णमासी जय आभीर नागरी॥५॥
जय जय गोपीश्वर वृन्दावन-माझ।
जय जय कृष्णसखा वटु द्विजराज॥६॥
जय रामघाट जय रोहिणीनन्दन।
जय जय वृन्दावनवासी यत जन॥७॥
जय द्विजपत्नी जय नागकन्यागण।
भक्तिते याँहारा पाइल गोविन्दचरण॥८॥
श्रीरासमण्डल जय जय राधाश्याम।
जय जय रासलीला सर्व मनोरम॥९॥
जय जयोज्ज्वल-रस सर्वरस-सार।
परकीयाभावे याहा व्रजेते प्रचार॥१०॥
श्रीजाह्नवा-पादपद्म करिया स्मरण।
दीन कृष्णदास कहे नामसंकीर्तन॥११॥

—*—

यशोमति-नन्दन, व्रजवर नागर, गोकुलरञ्जन कान।
गोपीपराण-धन, मदन-मनोहर, कालीयदमन विधान॥१॥
अमल हरिनाम अमिय विलासा।
विपिन-पुरन्दर, नवीन नागरवर, वंशीवदन सुवासा॥२॥
व्रजजन-पालन, असुरकुल-नाशन, नन्द-गोधन-राखवाला।

गोविन्द माधव, नवनीत-तस्कर, सुन्दर नन्दगोपाला॥३॥

यामुन - तटचर, गोपी वसनहर, रास - रसिक कृपामय ।
श्रीराधावल्लभ, वृन्दावन-नटवर, भकतिविनोद - आश्रय ।।४।।

—*—

विभावरी - शेष, आलोक - प्रवेश, निद्रा छाडि' उठ जीव ।
बल हरि हरि, मुकुन्द मुरारि, राम -कृष्ण - हयग्रीव ।।१।।
नृसिंह, वामन, श्रीमधुसूदन, व्रजेन्द्रनन्दन श्याम ।
पूतना - घातन, कैटभ - शातन, जय दाशरथि - राम ।।२।।
यशोदा - दुलाल, गोविन्द - गोपाल, वृन्दावन - पुरन्दर ।
गोपीप्रिय - जन, राधिका - रमण, भुवन - सुन्दरवर ।।३।।
रावणान्तकर, माखन - तस्कर, गोपीजन - वस्त्रहारी ।
व्रजेर राखाल, गोपवृन्दपाल, चित्तहारी वंशीधारी ।।४।।
योगीन्द्र - वन्दन, श्रीनन्द - नन्दन, व्रजजन - भयहारी ।
नवीन नीरद, -रूप मनोहर, मोहनवंशीविहारी ।।५।।
यशोदा - नन्दन, कंस - निसूदन, निकुञ्जरास - विलासी ।
कदंब - कानन, रासपरायण, वृन्दाविपिन -निवासी ।।६।।
आनन्द - वर्धन, प्रेम - निकेतन, फूलशरयोजक काम ।
गोपाङ्गनागण, चित्त - विनोदन, समस्त गुणगण - धाम ।।७।।
यामुन - जीवन, केलिपरायण, मानसचन्द्र - चकोर ।
नाम - सुधारस, गाओ कृष्ण-यश, राख वचन मन मोर ।।८।।

—*—

व्रज-जन मन सुखकारी ।
राधे - श्याम श्यामा - श्याम ।।
मोर मुकुट मकराकृत कुण्डल, गल वैजयन्ती माल ।
चरणन नूपुर रसाल ।।राधे०।।
सुन्दर वदन कमलदल लोचन, बाँकी चितवनहारी ।
मोहन वंशीविहारी ।।राधे०।।
वृन्दावनमें धेनु चरावे, गोपीजन मनहारी ।
श्रीगोवर्धनधारी ।।राधे०।।
राधा - कृष्ण मिलि अब दोऊ, गौर रूप अवतारी ।
कीर्तन धर्म प्रचारी ।।राधे०।।
तुम बिन मेरे और न कोई, नाम रूप अवतारी ।
चरणनमें बलिहारी ।।राधे०।।

—*—

हरिनाम ! तुया अनेक स्वरूप ।
यशोदानन्दन , आनन्दवर्धन , नन्दतनय रसकूप ।।
पूतना - घातन, तृणावर्त - हन, शकटभञ्जन गोपाल ।
मुरली - वदन, अघ - बक - मर्दन, गोवर्धनधारी राखाल ।।
केशी - मर्दन, ब्रह्म - विमोहन, सुरपति - दर्प - विनाशी ।
अरिष्ट - पातन, गोपी - विमोहन, यामुनपुलिन विलासी ।।
राधिका - रञ्जन, रास - रसायन, राधाकुण्ड - कुञ्जविहारी ।
राम, कृष्ण, हरि, माधव, नरहरि, मत्स्यादिगण - अवतारी ।।
गोविन्द, वामन, श्रीमधुसूदन , यादवचन्द्र, वनमाली ।
कालिय - शातन, गोकुल - रञ्जन, राधाभजन - सुखशाली ।।
इत्यादिक नाम, स्वरूपे प्रकाम, बाडुक मोर रति रागे ।
रूप - स्वरूप - पद, जानि' जिन संपद, भक्तिविनोद धरि' मागे ।।

—*—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः ।।१।।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ।
गिरिधारी गोपीनाथ मदनमोहन ।।२।।
श्रीचैतन्य नित्यानन्द श्रीअद्वैत - सीता ।
हरि गुरु वैष्णव भागवत गीता ।।३।।
श्रीरूप सनातन भट्ट - रघुनाथ ।
श्रीजीव गोपालभट्ट दास - रघुनाथ ।।४।।
एइ छय-गोसाञिर करि चरण-वन्दन ।
याहा हैते विघ्ननाश अभीष्ट-पूरण ।।५।।
एइ छय-गोसाञि यार - मुइ ताँर दास ।
ताँ'-सबार पदरेणु मोर पञ्चग्रास ।।६।।
ताँदेर चरण सेवि भक्तसने वास ।
जनमे जनमे हय एइ अभिलाष ।।७।।
एइ छय-गोसाञि यवे व्रजे कैला वास ।
राधाकृष्ण - नित्यलीला करिला प्रकाश ।।८।।
आनन्दे बलह हरि, भज वृन्दावन ।
श्रीगुरु-वैष्णव-पदे मजाइया मन ।।९।।
श्रीगुरु - वैष्णव - पादपद्म करि आश ।
नामसंकीर्तन कहे नरोत्तमदास ।।१०।।

—*—

हरि हरये नमः कृष्ण यादवाय नमः ।
यादवाय माधवाय केशवाय नमः ।
गोपाल गोविन्द राम श्रीमधुसूदन ॥१॥
राधागोविन्द बल (४ बार)
गोविन्द गोविन्द गोविन्द बल ।
राधागोविन्द बल (४ बार)
गुरुकृपा-जले नाशि' विषय-अनल ॥२॥
राधागोविन्द बल (४ बार)
कृष्णेते अर्पिया देह - गेहादि सकल ।
राधागोविन्द बल (४ बार)
अनन्यभावेते चित्त करिया सरल ॥३॥
राधागोविन्द बल (४ बार)
रूपानुग वैष्णवेर पिया पदजल ।
राधागोविन्द बल (४ बार)
दश अपराध त्यजि' भुक्ति - मुक्ति - फल ॥४॥
राधागोविन्द बल (४ बार)
सखीर चरणरेणु करिया संबल ।
राधागोविन्द बल (४ बार)
स्वरूपेते व्रजवासे हइया शीतल ॥५॥
राधागोविन्द बल (४ बार)

—※—

हरि हे दयाल मोर जय राधानाथ ।
बारवार एइबार लह निज - साथ ॥१॥
बहु योनि भ्रमि नाथ ! लइनु शरण ।
निज - गुणे कृपा कर अधम - तारण ॥२॥
जगत - कारण तुमि जगत - जीवन ।
तोमा छाडा कार नहि हे राधारमण ! ॥३॥
भुवनमंगल तुमि भुवनेर पति ।
तुमि उपेक्षिले नाथ ! कि हइबे गति ॥४॥
भाबिया देखिनु एइ जगत - माझारे ।
तोमा बिना केह नाइ ए दासे उद्धारे ॥५॥

—※—

श्रीनाम-गीत

कलियुगपावन विश्वंभर ।
गौड़चित्तगगन - शशधर ।
कीर्तन - विधाता, परप्रेमदाता,
शचीसुत . पुरटसुन्दर ।।१।।

—*—

कृष्ण गोविन्द हरे ।
गोपीवल्लभ शौरे ।।१।।
श्रीनिवास दामोदर श्रीराम मुरारे ।
नन्दनन्दन माधव नृसिंह कंसारे ।।२।।

—*—

कृष्णचैतन्य अद्वैत प्रभु नित्यानन्द ।
गदाधर श्रीनिवास मुरारि मुकुन्द ।
स्वरूप - रूप - सनातन - पुरी - रामानन्द ।।१।।

—*—

जय गोद्रुमपति गोरा ।
निताइ - जीवन, अद्वैतेर धन,
वृन्दावन - भाव - विभोरा ।
गदाधर - प्राण, श्रीवास-शरण,
कृष्णभक्तमानस - चोरा ।।१।।

—*—

जय यशोदानन्दन कृष्ण गोपाल गोविन्द ।
जय मदनमोहन हरे अनन्त मुकुन्द ।।१।।
जय अच्युत माधव राम वृन्दावनचन्द्र ।
जय मुरलीवदन श्याम गोपीजनानन्द ।।२।।

—*—

राधामाधव कुंजविहारी ।
गोपीजनवल्लभ गिरिवरधारी ।
यशोदानन्दन, व्रजजनरंजन,
यामुनतीर - वनचारी ।।१।।

—*—

राधावल्लभ माधव श्रीपति मुकुन्द ।
गोपीनाथ मदनमोहन रास - रसानन्द ।
अनङ्ग - सुखद - कुंजविहारी गोविन्द ।।१।।

—*—

राधावल्लभ राधाविनोद ।
राधामाधव राधाप्रमोद ।।१।।

राधारमण, राधानाथ,
राधावरणामोद ।
राधारसिक, राधाकान्त,
राधामिलनमोद ।।२।।

—*—

श्रीकृष्ण! गोपाल! हरे! मुकुन्द!, गोविन्द! हे नन्दकिशोर! कृष्ण! ।
हा श्रीयशोदातनय ! प्रसीद, श्रीबल्लवीजीवन ! राधिकेश ! ।।

—*—

श्रीगुरु-गौराङ्ग-गान्धर्वाहृद्-गोविन्ददेव-प्रीतयेऽस्तु ।

हमारे यहाँ से उपलब्ध ग्रन्थरत्न

१. श्रीगोपालचम्पूः (पूर्वार्ध एवं उत्तरार्ध)—श्रीजीवगोस्वामिकृत मूल संस्कृत एवं श्रीवनमालिदासशास्त्री कृत "श्रीकृष्णानन्दिनी" हिन्दीटीका सहित। मूल्य रु. २२.५०। विवेचनात्मक दार्शनिक सुसिद्धान्त की दृष्टि एवं माधुर्य की वृष्टि से परिपूर्ण श्रीकृष्णलीला का रहस्यात्मक विशाल ग्रन्थरत्न। यह केवल श्रीमद्भागवत के दशमस्कन्ध का ही विश्लेषणात्मक भाष्य नहीं है; अपितु, समस्त पुराणों की ही श्रीकृष्ण की अप्राकृत, अलौकिक एवं असमोर्ध्व व्रजलीलाओं का सिद्धान्तमय भाष्य है।

२. श्रीपद्यावली—श्रीरूपगोस्वामी द्वारा प्रणीत एवं श्रीगोपालचम्पूटीकाकार श्रीवनमालिदासशास्त्री कृत "श्रीपद्यावलीप्रकाशिका" हिन्दीटीका सहित। मूल्य रु. २.२५। यह ग्रन्थ भक्ति के सभी विषयों का सरस पोषक है, विशेष करके व्रजप्रेमरस-विषयक अपूर्व वर्णन इस में अतुलनीय है। श्रीकृष्णमहिमा, भजनमाहात्म्य, भगवन्नाम-माहात्म्य, श्रीराधा-कृष्ण की परस्पर उक्ति-प्रत्युक्ति इत्यादि अनेक विषयों से यह परिपूर्ण है एवं १२५ महाकवियों की अनुभवमय उक्तियों से युक्त है।

३. श्रीस्तवकल्पद्रुमः (मूलमात्र संस्कृत में) मूल्य रु. ७.००। इस ग्रन्थ में श्रीचैतन्यमहाप्रभु-श्रीकृष्ण-श्रीराधिका-वृन्दावन-यमुना आदि के संबंध में बहुतसे प्रसिद्ध-प्रसिद्ध स्तोत्रों का समावेश है। इस ग्रन्थ के अन्तर्गत स्तोत्रों के भावपूर्वक पाठ में हृदय विभोर हो जाता है।

4. THE DIVINE NAME—by Svami Shri Raghava Chaitanya Das. Price Rs. 5.00. The most attractive, instructive, comprehensive and authoritative treatise, elucidating the unrivalled and unique power, potency and puissance of chanting the Name of Shri Krishna, teeming with 620 quotations from 112 scriptures.

—*—

प्राप्तिस्थान :—

१. पुरुषोत्तमदास, ११७ गोपीनाथ घेरा, वृन्दावन (मथुरा), उ० प्र०

२. व्रजवासी पुस्तकालय, पुरानाशहर, वृन्दावन (मथुरा), उ० प्र०